

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180535

UNIVERSAL
LIBRARY

UP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/S53vi

Accession No. G.H.2076

Author

श्रीमती, पूरवोनाय

Title

विज्ञान

This book should be returned on or before the date last marked below

सूक्ष्म समालोचनाय

विद्रूप

(रोचक सामाजिक उपन्यास)

लेखक

पृथ्वीनाथ शर्मा

१९५२

आत्माराम एण्ड संस

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक

श्यामकुमार गगे

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस

क्वीन्स रोड, दिल्ली ६

विद्रूप

१

स्नेहलता खिड़की में खड़ी चारों ओर फंली हुई धूप की ओर देख रही थी, जो सघन मेघों को चीरते हुए सूर्यदेव ने बिखराई थी। इतने दिनों की निरन्तर वर्षा के बाद धूप कितनी भली लगती थी ! ऐसी ही धूप में अनेक बार वह अपने पति के साथ कई ऊँची-नीची पहाड़ियों पर घूमी-फिरी थी। पर अब ? जब वे ही नहीं रहे, तो उसके लिए काले-काले मेघों की देन वर्षा ही ठीक थी। आज से एक मास—केवल एक मास—पहले वह इस धूप पर पागल हो उठती। उसने एक दीर्घ निःस्वास लिया और कालीन पर धीरे-धीरे पग रखती हुई एक गद्दीदार कुर्सी पर आ बैठी। इतने में शिवा तथा विपिन ने प्रवेश किया। शिवा उसकी सौतेली बेटा थी और विपिन था सौतेला लड़का। उसने पिछले वर्ष ही एम० ए० किया था और लड़की उस साल बी० ए० की परीक्षा दे रही थी। लता ने उनकी ओर देखा और बैठने का संकेत किया। दोनों बैठ गए, तो माँ ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखा। कुछ देर दोनों चुप रहे, फिर शिवा कहने लगी—“आपसे एक सलाह करने आए हैं।”

“कहो,” लता ने अनुमति दी।

“हम सोच रहे हैं,” इस बार लड़का बोला, “यदि आप तीर्थ-यात्रा कर आयें, तो कैसा रहे ?”

“इससे आपकी उदासी भी दूर हो जायगी और यों भी यह उचित ही है,” लड़की ने कहा।

लता मन-ही-मन मुस्कराई, पर उसके मुख पर गम्भीरता बनी रही—

“यह मन्त्रणा तो ठीक है। मुझे केवल एक ही आपत्ति है।”

“बहु क्या ?” लड़की ने पूछा।

“रोहित।”

रोहित लता का सप्तवर्षीय एक-मात्र पुत्र था, जो देहरादून के प्रसिद्ध स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहा था।

“रोहित की देख-भाल हम कर लेंगे,” विपिन ने कहा।

“धन्यवाद,” माँ बोली।

विपिन कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, “मैं सोच रहा हूँ, यदि उसे यहाँ शिमले में ले आयें, तो कंसा रहे ? एक तो हमारी आँखों के सामने रहेगा और दूसरे...” विपिन रुका।

“और दूसरे,” लता खुलकर मुस्कराई, “उसकी पढ़ाई पर खर्च भी कम उठाना पड़ेगा !”

“हाँ, माँ जी !” विपिन का स्वर मधु से श्रोत-श्रोत था, “पिताजी की मृत्यु के बाद हमसे धन्य की उनकी वाँधी हुई लकीरों पर तो चला नहीं जायगा।”

लता चकित रह गई, पर ऊपर से उठने कुछ भी ज़ाहिर नहीं किया। शान्त स्वर में बोली, “इसके लिए भी धन्यवाद। मैं सोचकर अपना निश्चय बताऊँगी।”

इसके अनन्तर भी वे दोनों भाई-बहन वहीं बंठे रहे। अभी उन्हें कुछ और भी सलाह देनी है—लता भाँप गई, किन्तु बोली कुछ भी नहीं। बात करने का समस्त भार उन्होंने दोनों पर छोड़ दिया। लगभग दो क्षण चुप्पी साधने के बाद आखिर रहस्य खुला।

“माँ जी,” विपिन ने आरम्भ किया, “पिताजी तो चले गए। उनके बंठे तो कोई चिन्ता नहीं थी, पर अब इस सारी जायदाद की देख-भाल तो करनी ही होगी। मैं सोच रहा था...” विपिन रुका।

“कहे जाओ,” लता ने प्रोत्साहन दिया।

“मेरा मतलब था,” विपिन ज़रा रुककर कहता चला गया, “यदि आप

मुझे ज़मीन, कोठियों तथा मकानों आदि के सब कागज़-पत्र दे देनीं, तो मैं धीरे-धीरे काम समझकर प्रबन्ध करने योग्य बन जाता ।”

बुःख की एक लहर माँ के हृदय के आर-पार हो गई । कितने लाड और प्यार से उसने इन दोनों भाई-बहनों को पाला था और अपने पिता के जीते-जी वे सदा यही प्रदर्शित करते रहे, मानो लता उनकी सगी माँ से भी अधिक हो । और आज उनके आँखें सूँदते ही उनके तेवर कैसे बदले हैं ! किन्तु लता के मुख पर इन भावों की छाया भी न आई । सहज-संयत स्वर में उसने कहा, “वे कागज़ तो सब हमारे क्लीक के यहाँ पड़े हैं । उसी से पूछ-ताछ करनी होगी ।”

“मैं उससे पूछ लूँगा,” विपिन ने कहा, “पर उनके बैंक के हिसाब की किताबें, रसीदें आदि तो आपके पास ही होंगी । यदि वे मुझे दे देतीं, तो मैं हिसाब आदि बदलवाने का प्रबन्ध कर लेता ।”

“तो यह कारण था तुम्हें तीर्थ-यात्रा पर भेजने का !” लता मुस्कराई, “लेने को तुम सभी किताबें, रसीदें ले लो, किन्तु उनसे तुम्हें लाभ न होगा ।”

“क्यों ?” इस बार प्रश्न में लड़की ने भी योग दिया ।

“इसलिए,” लता ने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, “कि रसीदें सब मेरे नाम की हैं और बैंक का हिसाब तुम्हारे पिता तथा मेरे दोनों के नाम से है । चूँकि वे अब नहीं रहे, वह रुपया भी मेरी आज्ञा पर ही बैंक से मिल सकता है । जितना तुम्हें चाहिए, मुझसे कहो, मैं मँगवा दूँगी, बेटा !”

बेटा और उसकी बहन दोनों अवाक् रह गए । लड़का आश्चर्य से ज़रा कुछ स्वर में बोला, “तो क्या पिताजी ने अपने नाम से या हमारे नाम से कुछ भी रुपया बैंक में जमा नहीं करवाया था ?”

“मेरे जानते तो नहीं ।”

विपिन उठ खड़ा हुआ । उसे देखकर शिवा भी बंठी न रह सकी । दोनों ने एक-दूसरे की ओर निराश दृष्टि से देखा, फिर माँ को वहाँ छोड़कर लड़-खड़ाते-से कमरे से बाहर चले गए ।

स्नेहलता कुछ देर ज्यों-की-त्यों बंठी रही । फिर उसकी स्मृतियाँ उसे अतीत के कुछ बीते क्षणों की झलक दिखाने लगीं । उसे वह दिन याद आया, जब

अठारह वर्ष की लड़की के रूप में उसने बीस वर्ष पहले उस घर में काँपते हुए प्रवेश किया था। उन दिनों उसके पति श्यामदेव अपनी व्यापारिक सफलता की चोटी को छूने में प्रयत्नशील थे। प्रातः से शाम और शाम से प्रातः वे काम में डूबे रहते थे। इसलिए जिन मस्तियों को लेकर लता ने गार्हस्थ्य जीवन आरम्भ किया था, वे दो-चार दिन में ही छू-मन्तर हो गई। उसके लिए दिन काटने दूभर हो गए। तब उसका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ कि उसकी सौत के दो बच्चे भी हैं। एक तीन वर्षीय लड़का और एक एक वर्ष की लड़की। उसे वह दिन खूब याद था, जिस दिन पहले-पहल उन दोनों को देखने वह उनके कमरे में गई थी। लड़की तो आया की गोद में थी और लड़का कुछ खिलौनों से खेल रहा था। लड़के ने लता को किंचित् डरते हुए उत्सुकता से देखा। उसका भय दूर करने के लिए वह उसे देखती हुई खुलकर मुस्कराई। उसने लड़के को अपनी गोद में ले लिया और स्नेह-सने स्वर में बोली, “नन्हें, तुम मुझे जानते हो?”

“हाँ,” बच्चे ने किंचित् तुतली भाषा में जवाब दिया।

“मैं कौन हूँ?”

“तुम मेरी नई माँ हो।”

नई माँ ! लता के सारे शरीर में बिजली-सी कौंध गई—“हाँ, मैं निःसन्देह तुम्हारी और इस मुन्नी की भी माँ हूँ। तुम मेरे ही बेटे बनोगे न?”

“हाँ,” बच्चे ने कहा। और लता ने झुककर उसका मुख चूम लिया।

उस दिन के बाद लता उन दोनों में रम गई। उनका लालन-पालन अतीव लाड-प्यार से करने लगी। उसके अपने पेट की एक-मात्र सन्तान विवाह से कई वर्ष बाद हुई, पर इस अवधि में उसने एक दिन भी यह अनुभव नहीं किया कि वह सन्तति-रहित है। और अपना बेटा हो जाने पर भी उसने इन दोनों और उसके बीच किंचित् भी भेद-भाव न रखा, यह उसका भगवान् जानता था। यह भी ठीक है कि उन दोनों भाई-बहनों ने भी आज से पहले कभी उस पर यह जाहिर नहीं होने दिया कि वे उसे अपनी माँ से कम दर्जा देते हैं। पर आज उन्होंने यह रूप क्यों धारण कर लिया? क्या कोई उनको उसके विरुद्ध

प्रलयंत्र रचने का प्रोत्साहन तो नहीं दे रहा ? क्या यह व्यवहार उनके लिए उचित है ? उन दोनों की नसों में प्रवाहित होने वाला रुधिर क्या उसके श्वासों द्वारा पोषित नहीं ? वे इस बात को क्यों भूल रहे हैं ? लता को उतनी ही पीड़ा हुई, जितनी उस दिन पति के हृदय की गति बन्द होने से हुई थी । पर वह कर ही क्या सकती थी ? जैसे पति की मृत्यु को उसने सह लिया, वैसे ही इस व्यवहार को भी सहना होगा । और कौन जाने, अभी इससे भी कड़ी बातों और घटनाओं का उसे सामना करना पड़े । इसलिए उसे अपने हृदय को कठोर करना होगा । और किसी भी कारण से चाहे नहीं, पर उस पितृ-विहीन शिशु रोहित के लिए तो उसे ऐसा करना ही होगा । वह उठी और कमरे में एक-दो पग चली । फिर खिड़की में जा खड़ी हुई । धूप अभी तक चारों ओर फैली हुई थी, यद्यपि मेघों के कुछ टुकड़े सूर्य के इर्द-गिर्द मँडरा अवश्य रहे थे । हो सकता है, यह कुछ काल के लिए पुनः सूर्य को ढाँप दें, किन्तु कब तक ? आखिर उसके प्रखर ताप से उन्हें छिन्न-भिन्न होना ही पड़ेगा । इसी भाँति, वह सोचने लगी, सत्य का प्रखर ताप उस पर छाए हुए भ्रम के बावलों को शायद पिघला दे और संसार में बिखती हुई क्षुब्धता उसके मस्तिष्क से धुल जाय । यह सोचती हुई वह बहुत देर तक वहाँ खड़ी रही ।

२

विपिन शिवा को लेकर जब अपने कमरे में पहुँचा, तो दोनों के हृदय बंदे हुए थे । उनकी सौतेली माँ ने जो-कुछ कहा था, एकाएक उस पर उनको विश्वास न होता था । पर अब वकील को पूछे बगैर वे कुछ कार्य-क्रम निश्चित नहीं कर सकते थे ।”

“तुम वकील का नाम और पता जानते हो ?”

“उसका दफ्तर माल पर है और नाम है बी० आर० चेंबर । जहाँ तक मैं समझता हूँ, उसके यहाँ टेलीफोन भी है ।

“तो चलो, उससे पहले टेलीफोन पर बातचीत करें ।”

“चलो ।”

दोनों उठकर टेलीफोन वाले कमरे की ओर चल दिए। डाइरेक्टरी देखने पर पता चला कि श्री चँवर के आफिस में टेलीफोन था। विपिन ने उसका नम्बर देखकर उसे टेलीफोन किया।

“कौन साहब हैं आप ?” वकील ने पूछा।

“मैं श्यामदेव जी का लड़का हूँ। आपसे कुछ सलाह लेना चाहता हूँ।”

“तो पधारिए,” वकील ने कहा।

“क्या अभी आपको फुरसत होगी ?”

“हाँ, आ जाइए,” वकील महोदय ने अनुमति दी और रिसीवर रख दिया।

“मैं अभी जाता हूँ,” विपिन ने बहन से कहा और तेजी से बाहर हो गया।

कोई आध घण्टे के अनन्तर जब विपिन माल रोड पर वकील महोदय के आफिस पहुँचा, तो वह उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। उसने उठकर विपिन का स्वागत किया। उससे हाथ मिलाया और सामने वाली कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए मधु-मिश्रित वाणी में कहने लगा, “मुझे सबसे पहले तो आपसे समवेदना प्रकट करनी है। आपकी महान् क्षति हुई है। श्यामदेव जी न केवल चोटी के व्यापारी ही थे, बल्कि बहुत ही उच्चकोटि के मानव भी थे। साहब, उन्हें खोकर मैंने तो बहुत-कुछ खो दिया। हाँ, आज्ञा कीजिए।”

“मैं आपके पास आया था,” विपिन ने आरम्भ किया, “अपने पिता के कारोबार के विषय में बात करने।”

“कहिए,” वकील ने प्रोत्साहन दिया।

“मुझे मेरी माता से पता चला है कि हमारी समस्त जमीन-जायदाद के आगज-पत्र आपके यहाँ पड़े हुए हैं। मैं उन्हीं के लिए आया था। क्योंकि उनके विना मैं कुछ भी प्रबन्ध न कर सकूँगा।”

“तो क्या उनके लिए अपनी माता जी से पत्र लाए हैं आप ?”

“माता जी से पत्र ? वह क्यों ?”

“इसलिए कि आपके पिता समूची जायदाद उन्हीं के नाम लिख गए हैं,”

वकील ने स्थिर वाणी में जबाब दिया ।

“उनके नाम लिख गए हैं ?” विपिन का चेहरा आश्चर्य तथा क्रोध में लाल हो उठा, स्वर थिरकने लगा, “इसका क्या मतलब ? क्या हम उनके कुछ नहीं थे ? माँ के स्वर में आज जो छिपा व्यंग्य था, वह अब समझा हूँ ।”

“आपकी खीझ को मैं समझता हूँ,” वकील सहानुभूति-सूचक स्वर में बोला, “मैंने भी श्यामदेव जी के इस निश्चय पर सन्देह प्रकट किया था; पर वे कहने लगे कि उनकी पत्नी की दृष्टि में सभी-बच्चे एक बराबर हैं । वह सबके साथ पूर्ण न्याय करेगी ।”

“फिर आपने क्या कहा ?”

“तो भी मैंने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि वे एक बहुत बड़े प्रलोभन में, बहुत बड़ी जिम्मेदारी में, अपनी पत्नी को फँसा रहे हैं ।”

“पर वे आपकी बात माने नहीं ?”

“नहीं साहब । मुस्कराकर बोले, ‘प्रिस्टर चेंबर, तुम उस नारी को जानते नहीं, इसीलिए ऐसा कह रहे हो । वह इस जिम्मेदारी को इस प्रकार निभाहेगी कि तुम्हें कोई भी शिकायत न होगी ।’ इसके अनन्तर मैं चुप हो गया ।”

“आपको चुप नहीं हो जाना चाहिए था,” विपिन उत्तेजित स्वर में बोला, “आपको अन्याय में भाग नहीं लेना चाहिए था ।”

“मुझे ? साहब, यदि मैं इतना भावुक होता तो आप आज मुझे भूखों मरता देखते । न आपको मे बैठने के लिए यह गद्दीदार कुर्सी पेश कर सकता और न ही टेलीफोन की सुविधा द्वारा आपसे परिचय प्राप्त कर सकता । इसका अभिप्राय होता, अपने बच्चों के प्रति अन्याय । हमारे व्यवसाय में न्याय और अन्याय का मूल्य आँकना कठिन है ।”

इस वक्तृता ने विपिन को लगभग निरुत्तर कर दिया । वह निराश स्वर में पूछने लगा. “अब कुछ नहीं हो सकता क्या ?”

“बिलकुल कुछ नहीं,” वकील ने जोर बेकर कहा, “श्यामदेव जी की जायदाद का एक-एक कण उनके अपने हाथों द्वारा पैदा किया हुआ है, इसलिए

उसे स्याह अथवा सफ़ेद करने मे वे पूर्ण रूप से अधिकारी थे ।”

“किन्तु...” विपिन थोड़ा रुका ।

“किन्तु-विन्तु कुछ नहीं, विपिन बाबू !” वकील ने स्पष्ट शब्दों मे कहा, “यदि आप कुछ गड़बड़ करने के विचार में हैं, तो उसे बदल डालिए। आपके किये कुछ न हो सकेगा।”

यह कहकर वकील ने वक्र दृष्टि से विपिन की ओर देखा। विपिन उठ खड़ा हुआ था, फिर बैठ गया, “क्या मैं पिता जी की वसीयत देख सकता हूँ ?”

“अवश्य।” वकील ने मेज पर पड़ी हुई घंटी बजाई, जिसके साथ ही मुंशी ने प्रवेश किया।

“श्यामदेव जी की वसीयत की जो नकल पड़ी है, वह ज़रा ले आना।”

“बहुत अच्छा,” मुंशी ने कहा और नकल लेकर दो ही मिनट में लौट आया।

वकील ने मुंशी के हाथ से दस्तावेज़ लेकर विपिन की ओर बढ़ा दिया, “लीजिए साहब, यह उनकी वसीयत की हू-ब-हू नकल है।”

विपिन ने कागज़ हाथ में ले लिया और उतावली से उसे पढ़ने लगा। कोई लगभग दस मिनट में उसने उसे पढ़ लिया, फिर उसे वकील को लौटाकर उठ खड़ा हुआ।

“चल विए ?” वकील भी उठ खड़ा हुआ और विपिन की ओर हाथ बढ़ाता हुआ कहने लगा, “आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।”

विपिन ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह अन्यमनस्क भाव से हाथ मिलाकर चुपचाप बाहर निकल गया।

शिवा उत्सुकता से अपने कमरे में बैठी उसकी बाट जोह रही थी। उसके कमरे में घुसते ही उसने पूछा, “हो आए ?”

“हाँ,” कुर्सी पर धम-से बैठते हुए उसने जवाब दिया।

“क्या कहता है वकील ?” बहन ने फिर प्रश्न किया।

“क्या पूछती हो,” विपिन निराश स्वर में कहने लगा, “हमारा अपना

कहने को इस संसार में एक तृण भी नहीं। जो-कुछ है, पिता जी सबकुछ अपनी लाडली पत्नी के नाम लिख गए हैं।”

“सच ?”

“बिलकुल। और वकील कहता है कि कानूनी दृष्टिकोण से हमारे किये कुछ न होगा।”

“कुछ न होगा !” शिवा का स्वर न केवल आश्चर्य से ओत-प्रोत था, बल्कि किंचित् टूट भी रहा था।

“पर मैं उस दो कौड़ी के वकील की बात कहाँ सुनने चला हूँ। मैं तब तक चैन नहीं लूँगा, जब तक कि पिता की वसीयत को तुड़वा न दूँगा। इतना घोर अन्याय कैसे चल सकता है। सब-कुछ उस स्त्री को सौंपकर चलते बने ?”

“पिताजी को यह सूझा क्या ? उन्होंने ऐसा क्यों किया ?”

“क्योंकि वे समझते थे कि,” विपिन व्यंग्य-भरे स्वर में बोला, “हमारी यह माँ न्याय की देवी है। उसके हृदय में कोई भेद-भाव नहीं। वह हम तीनों को समदृष्टि से देखती है, समदृष्टि से ! वह दिन-रात हमारी मृत्यु की मनौ-तियाँ मनाती अघाती नहीं होगी !”

विपिन दाँत पीसता हुआ उठकर कमरे में उतावली से घूमने लगा।

“अब हमारा क्या होगा ?” शिवा टूटे हुए स्वर में बोली।

“जीवन युद्ध-स्थल बनेगा, और क्या ? यदि वह स्त्री समझती है कि हमारा सर्वस्व छीनकर वह चैन की नींद सो सकेगी, तो वह भूल में है,” विपिन कड़ककर बोला।

इतने में नौकर ने प्रवेश किया।

“क्यों ?” विपिन ने पूछा।

“साहब आपको माँ जी बुला रही हैं।”

“बहुत अच्छा।”

नौकर के बाहर होते ही शिवा ने जरा चिन्तित स्वर में कहा, “कहीं उसने सब-कुछ सुन न लिया हो।”

“सुन ले, लाख बार सुन ले । मैं उसके मुँह पर सब-कुछ सुनाकर आता हूँ,” शोध से भल्लाए हुए स्वर में विपिन ने कहा और नेजी से कमरे से बाहर चला गया ।

३

जब विपिन अपनी माँ के कमरे में पहुँचा, तो वह एक सोफे पर अधलेटी-सी पड़ी थी, शान्त, गम्भीर । विपिन को उसने स्नेह-वृष्टि से देखा और बैसे पड़े-पड़े ही सामने वाली कुर्सी पर बैठने का आदेश दिया ।

“क्या आज्ञा है ?” विपिन ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा ।

“हो आए वकील के यहाँ से ?”

“हाँ, हो आया हूँ,” विपिन जरा तीखे स्वर में कहने लगा, “किन्तु एक बात पूछूँ ?”

“प्रसन्नता से ।”

“आपने सब-कुछ जानते हुए भी मुझे वकील के पास बया इसलिए भिजवाया था कि मैं पूरी तरह लज्जित हो सकूँ और आपकी विजय में उल्लास आ जाय !”

“इसलिए तो नहीं,” स्नेहलता ने पुत्र के व्यंग्य की ओर ध्यान देते हुए कहा, “केवल इसलिए भेजा था, क्योंकि उस समय मेरे कथन पर तुम कभी विश्वास करने को तैयार न होते । तुम्हें यह कष्ट हुआ, इसका मुझे दुःख है, किन्तु वह अनिवार्य था ।”

“और अब ?”

“अब तुमसे एक-दो बातों में सलाह लेना चाहती हूँ ।”

“कहिए ।”

“तुम्हारे और शिवा के जेब-खर्च के लिए क्या पाँच सौ रुपया ठीक रहेगा ?”

“पाँच सौ ? किन्तु...” विपिन का स्वर आश्चर्य से ओत-प्रोत था ।

“हाँ, मैं मानती हूँ कि तुम्हारे पिता इतना नहीं देते थे, पर तब तुम

बचने थे । अब तुम होश सँभाल चुके हो, इसलिए रुपए का अपव्यय तुम नहीं करोगे, यह मैं जानती हूँ ।”

“ऐसी अवस्था में ... विपिन फिर हका ।

“नो तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार है । बहुत अच्छा,” लता का मनी-बैंग उसके पास ही पड़ा था । उसे उठाती हुई वह उठकर सीधी बैठ गई । बैंग से एक चैंक, जो पहले से ही तैयार था, निकाला और विपिन की ओर बढ़ा दिया, “यह लो, इस मास का खर्च ।”

विपिन के जी में तो आया कि लेने से इन्कार कर दे, पर कुछ भी न कह सका । हाथ बढ़ाकर चुपके से चैंक पकड़ लिया ।

“और दूसरी बात रोहित के विषय में है,” लता कहने लगी, “मैं समझती हूँ, तुम्हारी राय ठीक है । उसका यहीं रहकर पढ़ना उचित होगा । इसलिए एक-दो दिन में दो-एक अच्छे स्कूलों के विषय में जानकारी प्राप्त करके मुझसे बात करो ।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने कहा और माँ को नमस्कार करके उठा और धीरे-धीरे द्वार की ओर चल पड़ा ।

शिवा भाई की बाट उत्सुकता से जोह रही थी । जब वह कमरे में घुसा, तो उसने कुतूहलपूर्ण स्वर में पूछा, “क्या बात हुई ? यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?

“बात, समझ लो, कुछ भी नहीं हुई । वह बात करने ही कहाँ देती ?” यह एक चैंक है, देख लो ।”

बहन ने झपटकर भाई के हाथ से चैंक ले लिया और उतावली से पढ़ा, “इसका क्या मतलब ?”

“यह तुम्हारा और मेरा इस मास का जेब-खर्च है ।”

“जेब-खर्च !” शिवा ने आश्चर्य से भाई की ओर देखा, “तो भगड़ा समाप्त कर आए हो ?”

“भगड़ा अभी हुआ ही कहाँ है ?” विपिन जरा धीमे स्वर में कहने लगा, “किन्तु अभी से ही अपनी आय पर कुल्हाड़ा क्यों चलाऊँ और फिर भगड़ा

करने के लिए भी तो रुपया चाहिए। इसी मासिक आय को संचित करके उससे दो-दो हाथ करूँगा।”

“भैया, तुम लोभ संवरण न कर सके,” शिवा जोर देकर बोली, “यदि भगड़ा करना है, तो तुम्हारे लिए यह रुपया स्वीकृत करना उचित नहीं। हाँ, यदि बात को बिसराना है, तो दूसरी बात है।”

“बात को मुझे बढ़ाना है, बिसराना नहीं, यह निश्चित है और तुम्हारे औचित्य का जो मापदण्ड है, वह मुझे मान्य नहीं। मैं नीति में विश्वास करता हूँ।”

“नीति?” वह ओठों को बल देकर मुस्कराई, “अर्थात् अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए तुम असत्य का मार्ग ग्रहण कर सकते हो। यह है तुम्हारा मतलब!”

“मेरा मतलब”, विपिन उत्तेजित स्वर में बोला, “केवल यह है कि जिसने हमारा सर्वस्व छीना है, उससे लड़ने के लिए शास्त्र की कसौटी पर कसे हुए शस्त्रास्त्र ढूँढ़ने नहीं जाऊँगा। तुम मेरा साथ देना चाहती हो या नहीं?”

“क्यों नहीं? यह तो यों ही मेरे मन में एक शंका उठी थी, जो मैंने निःसंकोच तुम्हारे सम्मुख रख दी।”

“शंका-वंका को तुम पाँव-तले मसल डालो और अपने स्वत्व-युद्ध के लिए छाती तानकर खड़ी हो जाओ,” गरजते हुए विपिन ने कहा।

इतने में नौकर ने कमरे में प्रवेश किया।

“क्या बात है?” विपिन ने पूछा।

“आपका टेलीफोन है, साहब!”

“किसने किया है, नाम दिया है?”

“हाँ जी, चित्रा मिस साहब!”

“बहुत अच्छा।”

विपिन उतावली से टेलीफोन वाले कमरे की ओर भागा। चित्रा से उसका क्वाह होने जा रहा था। वह दो ही क्षणों में टेलीफोन पर जा पहुँचा।

“मैं स्वयं टेलीफोन करने जा रहा था,” विपिन ने रिसीवर हाथ में पकड़ते ही कहना आरम्भ कर दिया। उसका स्वर अभी तक उत्तेजित था, “मुझे तुमसे बहुत बातें करनी हैं।”

“दो-चार बातें तो मुझे भी करनी थीं,” चित्रा खिलखिलाकर हँसी, “आज शाम को ‘डेविको’ पहुँच जाना। जरा सज-धजकर आना। मेरी एक सहेली भी साथ होगी। वह विशेष रूप से तुम्हें देखना चाहती है। शिवा को साथ लाना न भूलना।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने कहा, “किन्तु सज-धज का युग बीत गया। मेरा भविष्य अब घिसे हुए सूटों और टूटे हुए जूतों में समा रहा है।”

“सो कैसे ?” चित्रा ने किञ्चित् आश्चर्य से पूछा।

“चाय के साथ ही सब रहस्य खोलूँगा।”

“बहुत अच्छा,” चित्रा ने कहा और रिसीवर रख दिया।

रिसीवर ठिकाने पर लगाकर विपिन धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर चला गया।

“क्या कहती थी ?” उसके कमरे में घुसते ही शिवा ने पूछा।

“आज शाम को पाँच बजे ‘डेविको’ में चाय। साढ़े चार तक तैयार हो जाना,” कहते-कहते विपिन पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया।

“क्या वह अकेली होगी।”

“नहीं, साथ में एक सहेली को भी लायगी।”

“क्या नाम ?”

“पूछा नहीं, शाम को देख लेना।”

“बहुत अच्छा,” शिवा सामने वाली कुर्सी पर जा बैठी। उसने कुछ क्षण ध्यान पूर्वक सोच में डूबे हुए भाई की ओर देखा और फिर चिन्तित स्वर में बोली, “उसे आज सब-कुछ बताना होगा।”

“बता देना,” भाई ने कहा।

“मैं तो बता न सकूँगी,” शिवा ने बाधा दी, “यह अप्रिय काम तो तुम्हें ही करना होगा।”

“तो मैं ही कर लूंगा,” विपिन ने धीरे से कहा। फिर उसकी जिज्ञासा से प्रश्न फिलत पड़ा, “देखो उन पर क्या प्रभाव पड़ता है।”

“उसे दुःख होगा।”

“दुःख की बात मैं नहीं कह रहा हूँ। मेरे प्रति उनके भावों में क्या कहीं उदासीनता तो नहीं आ जायगी?”

“उदासीनता ! वह क्यों ? भैया, चित्रा साधारण लड़की नहीं है, यह निश्चय रखो।”

“साधारण तो नहीं, यह मैं जानता हूँ,” विपिन के स्वर में शंका थी, “किन्तु कहीं आयश्यकता से अधिक असाधारणता वह न धारण कर ले, यही मुझे भय है।”

“अर्थात् ?” शिवा ने प्रश्नसूचक दृष्टि से भाई की ओर देखा।

“इससे अधिक मैं कुछ कह नहीं सकता। पर उसके भीतर का आदर्शवाद कहीं प्रबल न हो उठे, यही मेरी चिन्ता है।”

“चिन्ता ! पर क्यों ? उसका आदर्शवाद ही तो अब उसे तुम्हारे अधिक निकट लायगा, यह तुम क्यों भूल रहे हो।”

“निकट या दूर, यह कहना कठिन है। मेरे व्यक्तित्व की जटिलता उसे मुझसे कोसों दूर फेंक सकती है, इस सम्भावना को भी तो अपनी गणना में लेना होगा।”

“तुम्हारे व्यक्तित्व की जटिलता ! मैं समझी नहीं।”

“समझना कठिन है। मेरा मतलब यह है कि मैं जिस करवट विकसित होने जा रही हूँ, क्या वह उसे भायगी ? यदि हाँ, तो ठीक; पर यदि नहीं, तब .. ?” विपिन सहसा रुका।

“तब क्या ?” शिवा ने प्रोत्साहन दिया।

“तब जीवन में फूलों को दूढ़ते हुए असह्य काँटों के घावों को भी सहना होगा।”

“काँटों के घावों को ?”

“हाँ, मेरी नहीं बहन,” विपिन खिलखिलाकर हँसने लगा, “अभी से

क्यों वह चिन्ता मोल ले लूं ? शाम तो आने दूँ ।” यह कहकर विपिन उठा और सामने पुस्तकों वाली आलमारी की ओर बढ़ गया । ध्यानपूर्वक उसका निरीक्षण करने लगा, ताकि अपने ‘मूड’ के अनुरूप कोई पुस्तक पा सके ।

४

शिवा और विपिन जब डेविको पहुँचे, तो पाँच बजने में दो-एक मिनट बाकी थे, किन्तु बड़ा हॉल खचाखच भरा हुआ था । उन्होंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई । धूप से उज्ज्वल हॉल के कोने में चित्रा तथा उसकी सहेली उनकी प्रतीक्षा में बैठी थी और संकेत से उन्हें अपनी ओर बुला रही थी । कार्पेट को रौंदते हुए वे बिना अधिक शब्द किये वहाँ पहुँच गए ।

“यह है मेरी सहेली रेखा,” चित्रा ने उसका परिचय देते हुए उन्हें दो खाली पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठने का आदेश दिया । जब नमस्कार तथा प्रति नमस्कार के अनन्तर सब लोग बैठ गए, तो चित्रा फिर बोली, “इसके पिता श्री उमेश दिल्ली के प्रसिद्ध बैरिस्टर हैं । उनकी कोठी हमारी कोठी से थोड़ी दूर पर है ।”

शिवा ने उड़ती हुई दृष्टि से रेखा के मुख तथा चमचमाती स्वर्ण-रंग की साड़ी की ओर देखा, फिर उसकी दृष्टि अपनी होने वाली भाभी पर जा लगी । चित्रा ने बहुत बढ़िया सफेद सिल्क की साड़ी पहन रखी थी । उसका किनारा भी रुपहला था । उसके बड़े-बड़े काले नेत्र और किंचित् अस्त-व्यस्त-सी काली आँकड़ें उसके गौर वरण को मानो अधिक चमका रही थीं । नाक तोखी और ठुड़ी सुन्दर, पर किंचित् कठोर थी ।

“चित्रा, तुम्हारा रूप दिन-प्रतिदिन निखर रहा है,” शिवा ने कहा ।

चित्रा मुस्कराई, “इसका तो काम ही निखरना है । क्या तुम्हारा दर्पण इसका साक्षी नहीं ?”

“मेरा दर्पण !” शिवा का स्वर गम्भीर हो चला, “उसकी उज्ज्वलता कितने दिन चलेगी, यह कहना कठिन है ! कौन जाने, कब धुंधला हो जाय ।”

“वह क्यों ?”

“इसलिए,” अब की बार विपिन बोला, “कि होश सम्हालते ही पंख कट गए हैं और चिन्ता से होड़ लग गई है। वह मुख पर अपने चिह्न छोड़े बगैर मानती है।”

“तुम दोनों ने तो पहेलियों में बातचीत आरम्भ कर दी !” चित्रा के स्वर में सच्ची चिन्ता थी, “साफ़-साफ़ कहो।”

इतने में बैरा चाय ले आया और चित्रा ने सबके प्यालों में उसे ढंग से डाल दिया। अपने प्याले की चीनी चम्मच से हिलाते हुए उसने विपिन से फिर कहा, “अब कहो।”

“कहने को तो बहुत-कुछ है, किन्तु .. किन्तु यही समझ लो कि अपना कहने को हमारे पास एक भी तिनका नहीं।”

“क्या मतलब ?” चित्रा का स्वर आश्चर्य से ओत-प्रोत था।

“मतलब यही कि पिताजी जायदाद माँ के नाम लिख गए हैं। बैंकों का रुपया भी उन्हीं के खाते में जमा है।”

“यह तो घोर अन्याय है,” रेखा तीखे स्वर में बोली, “तब आप न्याय की शरण क्यों नहीं लेते ?”

“सो तो लेनी ही होगी, यद्यपि माँ का वकील कहता है कि हमारे किये कुछ न बन सकेगा। पिताजी की वसीयत कोई तुड़वा नहीं सकता।”

रेखा दम्भ से मुस्कराई, “तो उस वकील ने मेरे डंडी के हाथ नहीं देखे। वे ऐसी कई वसीयतें धूल में मिला चुके हैं।”

“क्या मुझे वे सलाह दे सकेंगे ?”

“क्यों नहीं। मैं उन्हें आपका केस लेने के लिए मजबूर करूँगी। वे एक-दो दिन में यहीं आने वाले हैं।”

“धन्यवाद। पर मैं शायद उनकी पूरी फीस न दे सकूँगा।”

“फीस की बात आप छोड़िए। जैसी मैं उनकी बेटो हूँ, वैसा ही वे चित्रा को समझते हैं।”

चित्रा चुपचाप एक-एक घूंट चाय पी रही थी और यह बातचीत ध्यान-

पूर्वक सुन रही थी। अब के वह बोली—“एक घात पूछूं, विपिन ?”

“पूछो !”

“क्या तुम्हारी माँ ने घर से निकाल दिया है ?”

“नहीं।”

“निकालने की धमकी दी है ?”

“नहीं।”

“जायदाद का हिस्सा देने से इन्कार किया है ?”

“नहीं, बल्कि सच पूछो, तो...” विपिन थोड़ा रुका।

“हाँ, कहो !”

“वे कहती हैं कि उनकी दृष्टि में शिवा, में और रोहित बराबर हैं; पर यह सब कहने की बातें हैं। इतनी अमूल्य निधि जिसके हाथ में आ जाय, वह उसे कहाँ बाँटने निकलता है।”

चित्रा ने सहसा कोई जवाब नहीं दिया। किञ्चित् सोचकर बोली—“क्या तुम्हारी माँ ने तुम दोनों का जेब-खर्च बन्द कर दिया है ?”

“नहीं, बल्कि उसे बढ़ाकर पाँच सौ कर दिया है।”

“तब भी तुम उन पर मुकदमा करने क्यों जा रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता !”

“चित्रा, तुम सीधी-की-सीधी ही रहों !” विपिन के होठों पर व्यंग्य के बल पड़ गए, “यह सब-कुछ वे संसार की दृष्टि में धूल भोंकने के लिए कर रही हैं। समझों !”

“समझी तो नहीं, पर समझने का प्रयत्न अवश्य करूँगी।”

“तुम भी विचित्र हो चित्रा, इतनी स्पष्ट बात भी नहीं समझ सकती !” रेखा ने जोर देकर कहा—“डेंडी ऐसे कई केसों की कहानियाँ मुझे सुना चुके हैं।”

चित्रा इससे लगभग निरुत्तर हो गई और शिवा की ओर देखने लगी। क्या शिवा का दृष्टिकोण भी यही है, शायद वह यह जानना चाहती थी। किन्तु शिवा ने उसकी सहायता न की। वह एक सैंडविच उठाकर खाने लगी और

फिर उसने अपने लिए चाय का दूसरा प्याला बनाने का आयोजन आरम्भ कर दिया। सच बात तो यह थी कि चित्रा के प्रश्नों ने उसके मन में भाई के किये हुए निश्चय के विषय में सन्देह उत्पन्न कर दिया था, किन्तु वह कुछ कहकर विपिन को नाराज नहीं करना चाहती थी।

इसके अनन्तर सहसा बंड बजने लगा। इससे बातचीत करना थोड़ा कठिन हो गया। इसलिए रेखा के सिवा सब लोग अपनी चाय की ओर अधिक ध्यान देने लगे। रेखा आँख मूँदकर उस विलायती बाजे का रसास्वादन करने लगी।

पाँच मिनट के बाद बंड के बन्द होते ही बातचीत का सिलसिला फिर आरम्भ हो गया। प्रश्न फिर चित्रा की ओर से हुआ। उसने विपिन की ओर देखकर पूछा—“क्या तुमने जेब-खर्च का पाँच सौ रुपया स्वीकार कर लिया है ?”

“हाँ,” यह कहते-कहते विपिन ने धूरकर शिवा की ओर देखा, क्योंकि कुछ कहने के लिए उसके होठ किंचित् हिलने जा रहे थे। भाई का संकेत पाकर शिवा ने अपने-आपको रोक लिया। विपिन कहता चला गया, “क्या यह ठीक नहीं किया ? क्या मेरा उस रुपये पर कोई अधिकार नहीं ? आखिर है तो वह मेरे पिताजी की ही कमाई का अंश ?”

“इसमें तो कोई शक नहीं, किन्तु ...”

“किन्तु क्या ?” रेखा बीच में ही बोल उठी।

“यही कि जो-कुछ विपिन निकट भविष्य में करने का इरादा रखता है, उसे दृष्टिगत रखते हुए क्या रुपया स्वीकार करना उचित है ? नैतिक कसौटी पर क्या यह कार्य खरा उतरता है ?”

“नैतिक कसौटी !” विपिन व्यंग्य से मुस्कराया, “क्या इसका एक रस रूप है ? क्या परिस्थितियाँ इसके रूप से छेड़-छाड़ नहीं करती ?”

“क्यों नहीं करती, अवश्य करती है,” रेखा जोर देकर बोली।

“करती होंगी,” चित्रा मानो अपने-आपसे तर्क करने लगी, “किन्तु क्या नैतिक सत्य में विशेष अन्तर आ सकता है ? क्या परिस्थितियाँ सोने के

रूप-रंग बदल सकती है ? स्वर्ण का जो रूप सृष्टि के आरम्भ में था, वही क्या आज नहीं है ?”

“निस्सन्देह सोने का वही रूप है, जो पहले था,” विपिन किंचित् उत्तेजित हो चला, “पर सोना एक निर्जीव धातु है और नैतिकता है जीवित मानव का एक गुण । तुम्हारी उपमा ठीक नहीं ।”

“मेरी उपमा ठीक नहीं ?” चित्रा ने शिवा की ओर देखा, जो बिलकुल चुपचाप बैठी दत्त-चित्त सब-कुछ सुन रही थी, “शिवा, तुम्हारा क्या खयाल है ?”

“मेरा खयाल ?” शिवा ने एक बार भाई की ओर देखा, फिर बोली, “मुझे तो तुम्हारी उपमा में कोई दोष नहीं दीखता ।”

विपिन का मुख क्रोध से लाल हो उठा । अपने क्रोध को दबाता हुआ वह उपहास-भरे स्वर में बोला—“तुम अभी अनुभव-हीन छोकरी हो ।”

“हो सकता है,” शिवा के नेत्रों में चुनौती थी, “पर उपहास से तुम मेरा मुंह बन्द न कर सकोगे ।”

किन्तु भाई ने बहन की चुनौती स्वीकार नहीं की, मुस्करा कर अपना चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया—“तुम्हारा मुंह बन्द ही कौन करता है ? मेरे लिए ज़रा एक प्याला चाय तो बनाओ । तुम्हारी बनाई चाय पीते हुए ही तुम्हारी वाणी का रसास्वादन करूँगा ।”

यह सुनकर सब हँसने लगे और उसके साथ ही बेंड फिर बजने लगा ।

५

उस दिन रविवार था । शिवा और विपिन अभी नहा-धोकर तैयार हो हुए थे और चाय पीने जा रहे थे कि साथ के कमरे में रखे टेलीफोन की घंटी बज उठी । दोनों उसी कमरे की ओर लपके । विपिन ने आगे बढ़कर रिसीवर उठा लिया । दूसरे छोर पर रेखा थी ।

“मेरे पिता कल शाम को आए हैं,” रेखा ने सूचित किया, “और आज शाम को लौट भी जायेंगे । यदि तुम उनसे मिलना चाहो, तो आ जाओ । मैं

उनसे बात कर चुकी हूँ।”

“अभी ?” विपिन ने पूछा।

“हाँ, अभी। शिवा को भी साथ लेते आओ। दोपहर का खाना यहीं होगा। चित्रा भी आ रही है।”

विपिन ने आधा क्षण शिवा से सलाह की और फिर स्वीकृति-सूचक स्वर में जवाब दिया—“बहुत अच्छा, हम थोड़ी ही देर में पहुँच जायेंगे। सेसिल होटल में कौन-सा सेट है आपका ?”

“नम्बर १२। घंटे-भर में अवश्य पहुँच जाना, ताकि थोड़ी देर ब्रिज की बैठक भी जम सके।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने कहा और रिसीवर रख दिया।

लगभग बीस मिनट के बाद दोनों भाई-बहन चाय आदि पीकर सेसिल होटल की ओर चल पड़े। विपिन का हृदय उत्साह से भरा हुआ था, किन्तु शिवा का मन बुझ-सा रहा था। उसका भाई जो-कुछ करने जा रहा था, वह क्या स्वार्थ के दृष्टिकोण से भी उचित था, वह सोच रही थी। यदि माँ के विरुद्ध मुकदमा लड़कर वे हार गए, तो उनका क्या ठिकाना होगा, इस पर विपिन ध्यान क्यों नहीं देता। अब जो-कुछ माँ उसके लिए कर रही है, उसके शतांश की भी आशा फिर उससे न की जा सकेगी। और यह भी हो सकता है कि सौतेलेपन से ऊपर उठकर वह सचमुच उन दोनों को रोहित के बराबर स्थान दे दे। किन्तु नहीं, यह संभव ही नहीं। तो फिर जो रास्ता उसके भाई ने पकड़ा है, उसी राह पर वह भी उसके साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चल दे ? सो तो करना ही होगा। विपिन का और उसका पथ भिन्न कैसे हो सकता है ?

“शिवा, आज तुम बहुत चुपचाप हो। किस चिन्ता में हो ?” विपिन ने, जो काफी देर से बहन की भावभंगी का निरीक्षण करता आ रहा था, पूछा।

“क्या तुम कुछ नहीं सोच रहे ?” शिवा ने भाई के प्रश्न को टालते हुए स्वयं उस पर प्रश्न कर दिया।

“सोच तो रहा हूँ, किन्तु मेरी गरदन चिन्ता से तो नहीं झुकी है। शत्रु का साम-मर्दन अवश्य कर सकूँगा, इसमें मुझे संदेह नहीं; किन्तु वह किस चतुराई

से हो कि सब वाह-वाह कर उठे, उसी के लिए स्फूर्ति की एक किरण प्रकृति से माँग रहा हूँ, और तुम ?”

“मैं !” शिवा थोड़ा झिझकी ।

“तुम्हारे मन में सन्देह मँडरा रहा है, ” विपिन का स्वर व्यंग्य से ओत-प्रोत था, “क्या यह कहने जा रही थी ?”

शिवा ने आधा क्षण कुछ जवाब नहीं दिया । फिर गम्भीर स्वर में बोली—
“मान लो, मेरे मन में सन्देह का बीज है, तो क्या वह अकारण है ? अपने शत्रु के बल का वास्तविक रूप क्या हम छिपा नहीं रहे ? आवश्यकता से अधिक आत्म-विश्वास भी तो विफलता की पहली सीढ़ी है, क्या इससे इन्कार करोगे ?”

शिवा के शब्द विपिन को पने दंश-से लगे, किन्तु वह क्रोधित नहीं हुआ । वह हृदय में उमड़ती हुई खीझ पर प्रभुत्व पाता हुआ मुस्कराया और बहन की बात को उपहास द्वारा उड़ाता हुआ कहने लगा, “तुम्हारे भीतर दार्शनिकता का बीज है, मैं बहुत दिनों से अनुभव करता आ रहा था; किन्तु अब वह पल्लवित होने लगा है, यह जानकर खुशी हुई । भगवान् करे, तुम्हारे जीवन का यह पहलू पूर्ण रूप से विकसित हो उठे,” यह कहते-कहते विपिन खिलखिलाकर हँस पड़ा ।

शिवा थोड़ा मुस्कराई और पुनः अपनी चुप्पी की चादर में जा छिपी । इसके कुछ ही क्षण बाद वे सेसिल होटल पहुँच गए ।

रेखा और चित्रा दोनों उनकी प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी थीं । चित्रा शिवा को लेकर रेखा के कमरे की ओर चली गई जहाँ ब्रिज के खेल का आयोजन किया गया था, और रेखा विपिन को अपने पिता के पास उनके बैठने वाले कमरे में ले गई ।

रेखा के पिता मुँह में बड़ा सा सिगार लिये उससे धुएँ का संसार रचते हुए सोफे पर बंठे एक चित्रमय पत्रिका के पृष्ठ उलट रहे थे । रेखा और विपिन के पाँव की आहट पाकर उन्होंने अपना गम्भीर मुख ऊपर को उठाया और अपनी बड़ी-बड़ी, किन्तु थकित आँखों द्वारा मुस्कराकर विपिन का स्वागत किया ।

विपिन ने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया। प्रति-नमस्कार करते हुए वकील ने सामने वाली कुर्सी पर बैठने का संकेत किया।

“ये हैं चित्रा के विपिन,” रेखा ने पिता से उसका परिचय कराया, “आप इनसे बात कर ले। मैं अब चली।”

“बहुत अच्छा,” पिता ने कहा। एक बार बाहर जाती हुई अपनी बेटी की ओर देखा और फिर विपिन की ओर देखकर पूछा, “कहिए, आपका क्या भगड़ा है?”

विपिन ने सारी कहानी संक्षेप में सुना दी और सहानुभूतिकांक्षी स्वर में कहा—“अब आप ही वतलाइए, इससे बड़ा अन्याय क्या हो सकता है?”

“अन्याय अवश्य हुआ है, मैं मानता हूँ,” वकील कहने लगे, “पर उससे हम पार पा सकेंगे, यह सोचने की बात है। क्या आपके पिता की समस्त सम्पत्ति उन्हीं के द्वारा बनाई हुई है?”

“जी हाँ!”

“आपके दादा की कुछ भी स्थावर सम्पत्ति न थी?”

“जहाँ तक मुझे मालूम है, नहीं; किन्तु मैं इसका पता लगाकर ठीक उत्तर दे सकूँगा।”

वकील कुछ देर सोच में डूबे रहे, फिर बोले—“आपका वकील यहाँ कौन है?”

“श्री बी० डी० चॅवर,” विपिन ने जवाब दिया और पूछा, “क्यों?”

“इसलिए कि आपके केस में कितना दम है, वे ही बता सकते हैं।”

“क्या आपका मतलब यह है कि हमारा केस काफी बलवान नहीं।”

“बलवान! क्या केस लड़ने वाला भी है?” वकील ने ऐसे कहा, माना अपने-आपसे बात कर रहे हों, “यदि आप चाहें, तो मैं चॅवर से बात करूँ। वह मेरा पुराना मित्र है। इसमें थोड़ा खतरा है।”

“खतरा?”

“हाँ, इससे दूसरा फरीक चेत जायगा।”

“आप उनसे कह दीजिएगा कि वे आपस में की हुई बातचीत हमारी माँ तक

न पहुँचायें," विपिन जरा जोर देकर बोला ।

वकील मुस्कराए—“कहने को तो मैं कह दूँगा, किन्तु वे आपकी माँ के वकील हैं, यह भी न भूलिए । कहिए, पूछूँ ?”

“पूछिए !”

वकील उठ खड़े हुए । कमरे के एक कोने में टेलीफोन पड़ा था । वे उधर ही बढ़ चले । टेलीफोन के निकट ही डाइरेक्टरी थी । उसे देखकर उन्होंने चँवर को टेलीफोन किया । उनकी आवाज़ पहचानकर चँवर प्रसन्न हुए ।

“कैसे याद किया ?” चँवर ने पूछा ।

“स्वर्गीय श्यामदेवजी के मामलों की देख-भाल आप कर रहे हैं, इसलिए आपको कष्ट दे रहा हूँ ।”

चँवर की हँसी तार पर तँरती हुई श्री उमेश के कानों में प्रवेश कर गई—

“तो क्या चिरंजीव विपिन महोदय युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़े ?”

“नहीं,” श्री उमेश मधु-मिश्रित स्वर में कहने लगे, “मैं तो भाई युद्ध से कोसों दूर भागता हूँ और जब तुम्हारे-ऐसा मँजा हुआ योद्धा मुकाबले में हो, तो लड़ने की कौन सोच सकता है ?”

“तब आज्ञा कीजिए,” चँवर किञ्चित् प्रसन्न होकर बोले ।

“केवल दो बातें जानना चाहता हूँ और सो भी तुम्हारा मित्र होने के नाते । एक, क्या वसीयत कानूनी दृष्टि से दोष-मुक्त है और दो, यह कि जो श्यामदेव जी के पिता की जायदाद थी, उसका क्या वे वसीयत में जिक्र नहीं कर गए ?”

“मालूम होता है, तुम्हें पूरी कहानी नहीं बताई गई,” चँवरके स्वर में थोड़ा आश्चर्य था, “श्यामदेव को पिता से एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिली थी, यह तुमसे क्यों छिपाया जा रहा है । वसीयत मेरी बनाई हुई है; जब चाहो, आकर देख लो,” चँवर की वारणी में छिपा अभिमान श्री उमेश से छिपा न रह सका ।

“धन्यवाद ! आज शाम को तो मैं जा रहा हूँ, किन्तु अगली बार मैं अवश्य मिलूँगा । अच्छा, नमस्कार !”

उमेश ने रिसीवर रख दिया ।

“अब कहिए ?” विपिन ने, जो पूरी बातचीत जानने के लिए उत्सुक खड़ा था, पूछा ।

“कहने को तो अब कुछ रहा नहीं ।”

“मतलब ?” विपिन के स्वर में निराशा स्पष्ट थी ।

“मतलब यही कि यदि मेरी मानो, तो अपनी सौतेली माँ की छत्र-छाया में रहो । तुम्हारा केस कमजोर है ।”

“तो आप इसे न ले सकेंगे ?”

“यह तो मैंने नहीं कहा । यदि आप न्यायालय का द्वार खटखटाना चाहेंगे, तो मैं आपका साथ दूंगा ; किन्तु आप अच्छी तरह से सोच-विचार कर लें ।”

“धन्यवाद । कष्ट के लिए क्षमा चाहता हूँ ।”

विपिन वकील महोदय से अनुमति लेकर रेखा के कमरे की ओर चल दिया और वे पुनः अपनी चित्रमय पत्रिका में उलभ गए । विपिन जब रेखा के कमरे में घुसा, तो वे तीनों ‘कट थ्रोट’ खेलने में निमग्न थीं । उसके कमरे में घुसते ही रेखा ने थोड़ी उत्सुकता से पूछा—“क्या बन गया काम ?”

“आपके पिताजी को केस लेने में तो कोई आपत्ति नहीं,” विपिन ने उखड़े हुए स्वर में जवाब दिया, “किन्तु उनकी समझ में केस कमजोर है ।”

“कमजोर है ?” चित्रा और रेखा एक साथ पूछ बैठीं ।

“हाँ, और वे कहते हैं, उसी माँ रानी के सहारे पड़ा रहना है हमारे लिए उचित है !”

यह सुनकर शिवा और चित्रा तो निराश होकर चुप हो गईं, किन्तु रेखा मुस्कराई और बोली—“तुम डैडी के शब्दों का बिल्कुल सीधा अर्थ न लगाओ । वे कहा तो ऐसे ही करते हैं ; पर जिस केस को वे ले लेते हैं, उसे कभी हारते नहीं । इसलिए तुम निराशा छोड़ो और आओ हमारे खेल में योग दो ।”

विपिन ब्रिज-टेबल के निकट पड़ी हुई एक खाली कुर्सी पर अन्यमनस्क-सा जा बैठा । खेल आरम्भ हो गया । पर जीवन के खेल में उलभा हुआ खिलाड़ी ताश का खेल कैसे खेल सकता था ? पग-पग पर भूले करने लगा और अपनी साथिन रेखा से बार-बार मीठी झिड़कियाँ खाने लगा । दो-चार हाथ खेलकर

आखिर उठ खड़ा हुआ ।

“मैं न खेल सकूँगा”, वह उठकर कौने में पड़ी कुर्सी पर जा बैठा, “तुम तीनों खेलो !”

पर इसके अनन्तर वे तीनों भी न खेल सकीं, उठकर बाहर बरामदे में चली गई ।

६

लता पूजा-पाठ से निबटकर अपने ड्राइंग-रूम में आकर बैठी ही थी कि टेलीफोन की घंटी बज उठी । विपिन अथवा शिवा को किसी ने बुलाया होगा, उसने सोचा, नौकर कह देगा कि वे घर पर नहीं हैं । इतने में नौकर ने प्रवेश किया ।

“क्या मेरे लिए टेलीफोन है ?” लता ने पूछा ।

“हाँ, वकील साहब है ।”

लता उठ खड़ी हुई और टेलीफोन वाले कमरे की ओर चल दी ।

“मैं लता हूँ,” उसने रिसीवर को कान से लगाते हुए कहा, “क्या आज्ञा है ?”

“आपने मुझे वसीयत का प्रोबेटे जब शीघ्र लेने का आदेश दिया था, तो मैंने आपको विश्वास दिलाया था कि इसमें मास-दो मास से अधिक नहीं लगेंगे; किन्तु...”

“किन्तु क्या ?” लता का माथा ठनका ।

“ऐसे दीखता है,” श्री चेंबर एक-एक शब्द पर जोर देता हुआ बोला “कि हमारी वह छोटी सी अर्जी एक बड़े मुकदमे का रूप धारण कर लेगी ।”

“कैसे ?”

“मालूम देता है, आपके ज्येष्ठ पुत्र इस ओर विशेष रूप से प्रयत्नशील हो रहे हैं । अभी-अभी मुझे दिल्ली के एक चोटी के बरिस्टर महोदय का टेलीफोन आया है । वे हमारे मामले में हस्तक्षेप करेंगे, उनकी बातचीत से ऐसा लगता था ।”

लता का हृदय दुःखित हुआ, किन्तु वह बिना घबराहट के बोली—“कोई बात नहीं। केस कितना भी विकराल रूप धारण करे, हम अन्त तक लड़ेंगे।”

“यदि उस ओर से कोई सुलह की शर्तें पेश की जायँ, तो ?”

“उन्हें तुरन्त अस्वीकार कर दीजिएगा। मेरे पति की वसीयत में जो-कुछ लिखा है, मैं उससे तिल-भर भी इधर-उधर न होने दूँगी। यह उनकी मुझे अन्तिम आज्ञा है,” लता का स्वर दृढ़, किन्तु शान्त था।

“केस बहुत लम्बा हो जायगा।”

“होने दीजिए। आप फीस की चिन्ता न करें।”

“उसकी चिन्ता तो मुझे कभी थी ही नहीं,” वकील का स्वर ‘किन्तु’ कह रहा था कि इस बात को स्पष्ट करने के लिए वह कृतज्ञ है, “एक-दो बातें सूचनार्थ और निवेदन कर देना मेरे उचित समझता हूँ।”

“कहिए !”

“कचहरी में आपको शायद कई बार जाना पड़े।”

“बहुत अच्छा, मैं चलूँगी। और ?”

“इस मुकदमे के लिए एक विशेष मुन्शी भी नियुक्त करना होगा।”

“आप उसे नियुक्त करके मेरे पास भेज दीजिए।”

“बहुत अच्छा,” वकील ने कहा, “मैं दो-तीन दिन में अर्जी दायर कर दूँगा।”

“धन्यवाद।”

लता ने रिसीवर रख दिया और धीरे-धीरे पग धरती हुई अपने बंठने के कमरे की ओर चल दी। वहाँ पहुँच कर वह धम-से एक गद्दीदार कुर्सी पर बंठ गई और सोच में डूब गई। अब पीछे हटने से तो नहीं होगा। उसके उपर जो महान् उत्तरदायित्व उसके पति डाल गए हैं, उसे पूर्णरूपेण निभाना होगा। वह सबके साथ न्याय करना चाहती है, यह उसका भगवान् जानता है। फिर क्यों उसकी सचाई और ईमानदारी पर अविश्वास किया जा रहा है ? यदि विपिन और शिवा को उस पर संदेह है, तो वह भी उन पर विश्वास नहीं कर सकती। वह उन पर अन्याय नहीं करेगी, किन्तु वह उनकी धमकियों से डरेगी

भी नहीं। यदि वे दिल्ली से वकील ढूँढ़ लाए हैं, तो वह वकील की तलाश में कलकत्ता-बम्बई जायगी। संसार की दृष्टि में भी शायद वही दोषी मानी जायगी, क्योंकि वह सौतेली माँ है। पर इसकी भी उसे कोई चिन्ता नहीं, यदि अपने भगवान् और अपने स्वर्गीय पति की दृष्टि में वह दोष-मुक्त रहे। उसने आँखें मूंद तथा हाथ जोड़कर उन दोनों से यह वर माँगा कि आने वाली कड़ी परीक्षा में वे उसे सच्ची सफलता दें, सांसारिक न्यायालय के साथ-साथ प्रभु के दरबारमें भी उसे नत-मस्तक न होना पड़े। वह ज्यों-की-त्यों बैठी रही और उसके नेत्रों से अविरल अश्रु-धार बहने लगी।

बहुत देर तक वह वैसे ही बनी रही। आखिर उसके आँसू अपने-आप सूख गए। तब वह उठी और कमरे में टहलने लगी। इतने में बाहर शोर होने लगा, जिसका मतलब था कि विपिन और शिवा लौट आए हैं। वह तेजी से बाथ-रूम में चली गई और पाँच ही मिनट में अपने मुख से चिन्ता के चिह्न मिटाकर पुनः कमरे में आ गई। इतने में नौकर हाथ में एक पत्र लिये हुए पहुँचा। उसने नौकर के हाथ से पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ने लगी। पत्र उसके बेटे रोहित का था। पत्र पढ़कर वह किञ्चित् मुस्कराई और उसे पास की तिपाई पर रखकर एक क्षण सोचती रही। फिर नौकर को आवाज़ दी।

“क्या आज़्ञा है?” नौकर ने प्रवेश करते हुए पूछा।

“विपिन साहब को ज़रा इधर आने के लिए कहो!”

“बहुत अच्छा!”

नौकर के चले जाने के लगभग दस मिनट के अनन्तर विपिन माँ के कमरे में पहुँचा। उसने क्यों बुलाया है और उससे कैसे बातचीत करनी होगी, लता से मिलने से पहले यही निश्चय वह और शिवा कर लेना चाहते थे। क्या कहीं हमारे इरादों की भनक तो उस तक नहीं पहुँच गई? आखिर जब समय बीतने लगा और उन्हें कुछ सूझा नहीं, तो विपिन किञ्चित् घबराया-सा साहस करके माँ के कमरे में जा ही पहुँचा।

“आओ विपिन,” लता ने मुस्कराकर उसका स्वागत किया, “मैंने तुम्हें इसलिए कष्ट दिया है कि अभी-अभी रोहित का पत्र आया है।”

“क्या लिखा है उसने ?” विपिन के सिर से जैसे मनो बोझ उतर गया हो ।

“उसे हमारा प्रस्ताव स्वीकार है । वह यहाँ आने में खुश है । अब बताओ, कौन-सा स्कूल उसके लिए ठीक रहेगा ? तुम पूछ-ताछ तो अब तक कर चुके होगे ?”

माँ ने तिरछी नज़र से विपिन की ओर देखा । उसे पूछ-ताछ की फुरसत ही कहाँ थी, फिर भी उसने जाहिर ऐसे किया, मानो शहर-भर के स्कूलों का चक्कर वह काट आया हो ! वहाँ के दो स्कूलों के विषय में वह बहुत दिनों से जानता था, इसलिए तुरन्त बोला—“यहाँ दो ही अच्छे स्कूल हैं—एक तो विश्व कॉटन और दूसरा सेंट एडवर्ड स्कूल । इन दो में से किसी एक में उसको दाखिल करना ठीक रहेगा ।”

“उनके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करके मुझसे बात करो ।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने कहा और दरवाजे की ओर उतावली से बढ़ने लगा ।

अभी द्वार तक पहुँचा ही था कि माँ फिर बोली—“और सुनो, एक बात और ।”

“क्या ?” वह जहाँ-का-तहाँ मुड़कर खड़ा हो गया ।

“रोहित को देहरादून से लाना भी तो होगा । वहाँ तक जा सकोगे ?”

“मे ?” विपिन का स्वर स्तम्भित था ।

“क्या नहीं जा सकोगे ? कोई बात नहीं । मैं इसका प्रबन्ध कर लूँगी ।”

“जो आज्ञा,” विपिन ने कहा और मुंह मोड़कर तेजी से कमरे से बाहर हो गया ।

लता मुस्कराई । युद्ध-क्षेत्र में तो निःसन्देह उतर पड़ा है, पर मन के भाव छिपाना अभी तक सीख नहीं पाया ! क्या सचमुच यही मेरा प्रतिद्वन्द्वी है ? उसे फिर सन्देह हुआ । क्या कोई पीछे से इसे प्रोत्साहन तो नहीं दे रहा ? किन्तु नहीं, मेरे विरुद्ध किसे पड़ी है षड्यन्त्र रचने की ? यह इन्हीं दोनों भाई-बहनों का उठाया हुआ झगड़ा है । क्या बिना झगड़े के बात न बन सकेगी ?

क्या वह विपिन से साफ-साफ न पूछ ले कि वास्तव में उसके मन में क्या है ? शिवा से ही वह बात क्यों न करे ? किन्तु इसका फल उल्टा भी हो सकता है । कहीं वे इसे उसकी निर्बलता न समझ लें । अभी तक तो वे शायद उसके बल की थाह न पाने से किंचित् भिन्न भी रहे हों, पर उसकी बातचीत उनकी सारी भिन्न ही कहीं दूर न कर दे । तब ? वह मन ही में रहने दे । उनके बाँव पहले देख ले, भगड़ा किस करवट बँठता है, इसे भाँप ले । भगड़ा आरम्भ हो जाने पर तो पीछे हटा न जायगा, सुलह की बातचीत न हो सकेगी । यह सोचते-सोचते वह उठकर कमरे में टहलने लगी । क्या कोई अपने बाल-बच्चों से भी भगड़ा करता है ? परन्तु भगड़ा तो वे करना चाहते हैं । वह तो उनके साथ राई-भर भी अन्याय नहीं कर रही और न ही कभी करेगी । तब उन्हें कौन समझाय और समझने से वे समझने वाले ही कब हैं ? भगड़ा तो उन्हें करना ही है, क्योंकि वे शायद उसे अबला समझ रहे हैं । अबला ! सो तो उसके पति उसे कर ही गए हैं । उसके नेत्रों में पुनः आँसू छलक उठे । पर उन्हें उसने प्रोत्साहन नहीं दिया । अपने मानसिक बल से वहाँ-का-वहाँ सुखा दिया और मन कठोर करके निकट भविष्य में होने वाले जोड़-तोड़ों की कल्पना द्वारा उधेड़ने-बुनने की नीयत से वह फिर अपनी कुर्सी पर जा बैठी ।

७

जाखू के मन्दिर को चारों ओर से घेरे हुए जो सड़क हैं, विपिन और शिवा उसी पर धीरे-धीरे चले जा रहे थे । बाएँ भीमकाय रंड-मुंड पहाड़ों की चट्टानों थीं और दाएँ दूर तक फँली हुई उँची-नीची पहाड़ियाँ । किसी-किसी चट्टान से बूँद-बूँद पानी गिर रहा था और पहाड़ियों के मध्य से बस्ती के कोलाहल को चीरता हुआ किसी पहाड़ी युवती के गीत का मधुर किन्तु तीखा स्वर वातावरण में फैल रहा था । पास के वृक्षों पर दो-एक शाखा-मृग अपनी चंचलता बिखेर रहे थे । किन्तु शिवा और विपिन इस सब-कुछ से बेखबर अपनी ही चिन्ताओं में तल्लीन पग बढ़ा रहे थे ।

क्या आने वाले भगड़े में उसे विजय मिलेगी या मुँह की खानी पड़ेगी ?

क्या रेखा का कथन ठीक है ? क्या उसके पिता केस सँभाल सकेंगे ? विपिन के मस्तिष्क में ये और ऐसे अन्य प्रश्न बार-बार कई-एक रूपों में घूम रहे थे ।

क्या माँ से भगड़ा मोल लेना उचित है ? क्या जो-कुछ वे करने जा रहे हैं, वह स्वार्थ की दृष्टि से भी ठीक है ? क्या जीवन धन के ही मापदण्ड से तोला जाता है ? क्या माँ इतनी बुरी है, जितनी भैया उन्हें समझ रहे हैं ? शिवा को ये और ऐसे अनेक प्रश्न परेशान कर रहे थे ।

इतने में सड़क के दूसरे छोर से उन्हें दो मूर्तियाँ आती दिखलाई दीं— एक पुरुष और दूसरी नारी ।

“क्या वह रेखा तो नहीं है ?” शिवा ने मौन भंग किया ।

“दीखती तो वही है । पर साथ में कौन है ?” विपिन ध्यान पूर्वक उनकी ओर देखते हुए बोला ।

इसी बीच वे एक-दूसरे के निकट आ पहुँचे । नारी चमचमाती साड़ी पहने रेखा ही थी और पुरुष था शिवा और विपिन के लिए अजनबी । उसने बढ़ियाँ सिला हुआ ग्रे रंग का सूट पहन रखा था । सिल्क की कमीज़ थी और लाल रंग की भड़कीली रेशमी नेकटाई । कोट के कालर के छिद्र में उसमें लाल रंग के गुलाब का एक बड़ा-सा फूल खोस रखा था । रंग उसका साँवला था, पर आधुनिक प्रसाधनों द्वारा उसे गेहूँआ बनाने का प्रयास अवश्य किया गया था । बाल ब्रिल क्रीम की कृपा से बिल्लौर की भाँति चमक रहे थे । कद उसका लम्बा था और शरीर सुगठित, किन्तु मुख पर सौन्दर्य का अभाव था । हाँ, उसके होठों पर एक बनावटी मुस्कान अवश्य खेल रही थी, जिसके कारण वह एक तरह से आकर्षक कहा जा सकता था ।

“तुम भी खूब मिले !” रेखा ने हाथ जोड़कर शिवा और विपिन के नमस्कार का जवाब देते हुए कहा “हम अभी तुम्हारी ही बातें करते आ रहे थे । तुम लोग रंजनजी से तो शायद पहले नहीं मिले होगे,” रेखा ने अपने साथी की ओर संकेत करते हुए कहा ।

“नहीं,” भाई-बहन ने सिर हिला दिया ।

“ये दिल्ली के नये बेरिस्टरों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली हैं, डंडी की

यह राय है और उन्हीं से इन्होंने काम सीखा है," फिर रेखा ने रंजन की ओर देखकर कहा, "और ये है मेरी सहेली चित्रा के होने वाले पति श्री विपिन और इनकी बहन शिवा जी !"

रंजन ने हाथ जोड़कर अपनी मुस्कान में जादू भरने का प्रयत्न करते हुए दोनों को नमस्कार किया । दोनों ने उसे प्रति नमस्कार किया और रेखा से पूछा—“आज हमें क्यों याद किया जा रहा था ?”

“आपके केस की बात रंजनजी से चल पड़ी थी ।”

“इन्हें बता दिया है कि मामला क्या है ?”

“हाँ,” रेखा ने उत्तर दिया ।

“आपकी क्या राय है ?” विपिन ने रंजन की ओर देखा ।

“मेरी राय,” रंजन एकाएक गम्भीर हो उठा, “अब क्या बताऊँ ?”

“क्यों ?” विपिन के स्वर में चिन्ता थी ।

“बेरिस्टरों के नेता की राय के अनन्तर मेरी राय का मूल्य ही क्या हो सकता है—विशेषतया जब कि वह उनकी राय से भिन्न हो ।”

विपिन को थोड़ा ढाढ़स बँधा, “फिर भी कहिए तो सही ।”

“मेरी राय में आपका केस इस्पात-सा मजबूत है,” एक-एक शब्द पर जोर देते हुए रंजन ने कहा, “हाँ, आवश्यकता है उसे ढंग से चलाने की । किन्तु ऐसा आप कर सकेंगे, इसमें मुझे सन्देह है ।”

“वह क्यों ?” विपिन ने किञ्चित् चकित स्वर में पूछा ।

रंजन थोड़ा मुस्कराया—“पहले आप यह बतलाइए कि आप अपनी माता का मुकाबला कैसे करने की सोच रहे हैं ?”

“हम उनकी दरखास्त का पूरे जोर से विरोध करेंगे ।”

“बस ? इससे तो काम नहीं चलेगा,” रंजन सिर हिलाता हुआ कहने लगा, “मैं चूँकि दिल्ली में हूँ, इसलिए मैं आपकी सहायता शायद न कर सकूँगा; किन्तु यदि मेरा काम यहाँ होता और आप केस मेरे हवाले कर देते तो मैं केवल उनकी दरखास्त का ही विरोध करके चैन न लेता ।”

“आप और क्या करते ?” रेखा ने उत्सुकता से पूछा ।

“मैं एक के बाद एक अनेक केस उनके विरुद्ध खड़े कर देता ।”

“अकारण ही ?” अब के प्रश्न शिवा की ओर हुआ ।

“युद्ध में कारण-अकारण को कौन पूछता है ?” रंजन किंचित् उत्तेजित स्वर में बोला, “प्रतिद्वन्द्वी का वार रोकने के बदले उस पर वार करना क्या अधिक कारगर नहीं होता ? यदि आज आपकी माता की दरखास्त का विरोध करने के साथ-साथ दो-एक केस भी उनके विरुद्ध छोड़ दिए जायें, तो क्या वे घबरा न उठेंगी और मुलह के लिए आपके आगे-पीछे न भागने लगेंगी ? मनो-विज्ञान को मैं जो थोड़ा-बहुत समझता हूँ, उसके बल पर कह सकता हूँ कि आपकी माता शायद दूसरा केस आरम्भ होते ही घुटने टेक देंगी ।”

“आपके ये सिद्धान्त किसी साधारण व्यक्ति पर अवश्य लागू होते होंगे,” —शिवा का स्वर बहुत गम्भीर था, “किन्तु हमारी माता इन दंशों से घबराने वाली नहीं । आपने उन्हें देखा नहीं, इसीलिए आप इतने आशावादी हैं ।”

इससे पहले कि रंजन कुछ कहे, विपिन बोल उठा—“उनका व्यक्तित्व असाधारण है, मैं मानता हूँ; किन्तु आज तक अनुकूल वातावरण ही उन्हें मिला है, यह भी न भूलो । प्रतिकूल वातावरण में उनका धैर्य छिन्न-भिन्न न हो सकेगा, यह तो निश्चित नहीं ।”

“प्रतिकूल क्या साहब,” रंजन आवेश के साथ बोला, “मैं वह वातावरण उत्पन्न कर दूँगा, जो बवंडर से आरम्भ होकर बवंडर में पलता हुआ बवंडर में ही समा जाय । ऐसे वातावरण में प्रबल-से-प्रबल लौह-पुरुष के पाँवों का जमना भी सम्भव नहीं । फिर आपकी माता तो आखिर एक अबला नारी ही हैं ।”

“अबला नारी !” —शिवा ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा—“भगवान् हमें उन्हें परास्त करने का बल दे, यही प्रार्थना है ।”

“शिवा को जिसकी आशा नहीं,” रेखा के स्वर में व्यंग्य था, “बहन, हीनता की भावना से ऊपर उठो । अब तुम्हारा व्यक्तित्व भी पूर्ण रूप से विकसित हो चुका है । तुम अब उस माँ रानी का मुँह ताकने वाली बच्ची नहीं हो । जो-कुछ वह कर सकती है, वह तुम भी कर सकती हो ।”

“बहुत खूब !” विपिन प्रशंसा से ओत-प्रोत वाणी में बोला, “यही मैं इसके मस्तिष्क में भरने का विफल प्रयत्न करता आ रहा हूँ । अब शायद इस का आत्म-विश्वास जाग्रत हो उठे ।”

“मेरा आत्म-विश्वास सोया ही कब था ?” शिवा कोमल स्वर में कहने लगी, “किन्तु असन्तुलित शब्दाडंबर द्वारा रची गई मृग-मरीचिका का शिकार भी तो हमें नहीं होना चाहिए ।”

“क्या मतलब ?” तीनों ने एक साथ प्रश्न किया और तीनों के मुख कानों तक लाल हो उठे ।

“मतलब तो स्पष्ट है । उसका और स्पष्टीकरण क्या कहूँ ?” विपिन की ओर देखकर शिवा बोली, “तुम पर सदा से प्राण वारती आई हूँ और प्राण वारती रहूँगी, यह निश्चय रखो । किन्तु क्या यहीं खड़े-खड़े बातचीत चलती रहेगी ?”

वे लोग तब तक वहीं-के-वहीं खड़े थे । शिवा की बात सुनकर सब-के-सब थोड़ा लज्जित हुए ।

“चलो, कॉफी-हाउस चलें,” रंजन ने प्रस्ताव किया ।

“वह तो यहाँ से बहुत दूर है । पहुँचते-पहुँचते रात हो जायगी,” रेखा ने बाधा दी ।

“कोई बात नहीं । कॉफी का तो कोई निश्चित समय नहीं । वैसे यदि तुम्हें कोई दूसरा काम हो, तो न सही ।”

“मुझे कोई काम नहीं,” रेखा ने मुस्कराकर कहा, “मेरी रात अपनी है, प्रात अपना है । जो सबकी इच्छा है, वही मेरी इच्छा,” उसने शिवा और विपिन की ओर देखा ।

“हमें तो कोई आपत्ति नहीं,” दोनों ने कहा ।

उन्होंने पुनः माल--जो तब तक लाजपतराय रोड बन चुकी थी--की ओर मुख मोड़ लिए । रिज को पार करके जब वे ‘स्कैंडल प्वाइंट’ पर पहुँचे, तो रात भीग चुकी थी; किन्तु निन्दा की कला में पारंगत पुरुषों और स्त्रियों के झुण्ड-के-झुण्ड भड़कीले-चमकीले वस्त्र पहने वहाँ खड़े अपनी कला का प्रसार

कर रहे थे। उस भीड़ को बीरती हुई इन चारों की टोली काँफ़ी-हाउस में जा पहुँची। वहाँ अधिकतर स्थान खाली पड़ा था। वे लोग एक कोने में, जहाँ बिलकुल एकान्त था, जा बैठे।

“निन्दा में भी कितना रस है,” शिवा ने अपनी कुर्सी सँभालते हुए कहा, “दो कदमों पर फैला रिज का इतना बढ़िया मैदान छोड़कर किस तरह लोग चींटियों की भाँति इस परिमित स्थान पर दूट रहे हैं।”

“निन्दा का मोह निःसन्देह किन्तु प्रदर्शन का शौक भी तो इन लोगों में कम नहीं, और वह इसी जगमगाते स्थान पर पूरा हो सकता है, न कि अर्ध-प्रकाशित रिज के मैदान में,” रंजन ने कहा।

“दर्शन, प्रदर्शन, निन्दा, स्तुति क्या अनुष्य इनसे ऊपर उठ सकता है ?” विपिन ने प्रश्न उठाया, “यदि हाँ, तो क्या इनके दिना मानव में आकर्षण भी रह जाता है ? मैं तो समझता हूँ, अनुष्य की दुर्बलताएँ उसके गुणों से कम महत्त्व नहीं रखतीं।”

रेखा बोली—“और मैं समझती हूँ कि गुण-दोष की जो परिभाषा है, वही गलत है। जिसे संसार गुण समझता है, वह कई अवस्थाओं में दोष हो जाता है और दोष गुण बन जाता है। यही बात निन्दा और स्तुति में है। निन्दा सदा विषैली नहीं होती और स्तुति सदा अमृत-प्रदायिनी नहीं।”

“इसीलिए,” शिवा होठों को बल देकर मुस्कराई, “संयम को तजकर हमें गुण और दोष दोनों को अपनाना चाहिए—अर्थात् अपना व्यक्तित्व खोकर ‘स्कैंडल प्वाइंट’ के दीवाने मानव का रूप धारण कर लेना चाहिए !”

रेखा लज्जित हो गई और लज्जा को छिपाने के प्रयत्न में कुंठित स्वर में बोली—“मेरा मतलब यह नहीं था।”

“क्या था तुम्हारा मतलब ?” शिवा ने ज़रा दृढ़ स्वर में पूछा।

इससे पहले कि रेखा कुछ कहे, तर्क की बागडोर विपिन ने सँभाली—“यह संयम में सौंदर्य भी तो हमें अपने संस्कारों के कारण ही दीखता है। वैसे संयम में धरा ही क्या है ? जीवन के रसास्वादन में यह तुम्हारा संयम पग-पग पर राह रोककर क्या उसे कटु नहीं बनाता ?”

“हमारे परिमित मस्तिष्क को वह अवश्य कटु लगता है,” शिवा का स्वर संतुलित था, “पर क्या मस्तिष्क का विकास होने पर भी उसमें हमें रस नहीं दीखेगा, यह तो निश्चित नहीं।”

“उस विकास का लम्बा पथ पार करने की कितनों में शक्ति है, बोलो ?” विपिन के स्वर में चुनौती थी।

“बहुत कम में, मैं मानती हूँ; किन्तु जो महा मानव उस पथ को पार करके अपने अनुभवों का निचोड़ हमारे लिए छोड़ गए हैं, उसका लाभ न उठाना क्या मानवता के प्रति अपराध नहीं होगा ?”

“अवश्य,” रंजन का सिर प्रशंसा से झूमने लगा, “विपिनजी, मैं आपको ऐसी बहन पाने के लिए बधाई देता हूँ।”

शिवा लज्जा से अपने-आपमें सिकुड़ गई और इसके साथ ही बंरा उनके लिए काँफी ले आया। उसने वाद-विवाद को वहीं बन्द कर दिया।

८

अगले दिन विपिन अभी बाथ-रूम में ही था कि टेलीफोन की घण्टी बज उठी। शिवा साथ वाले कमरे में बैठी अन्यमनस्क भाव से एक नई आई हुई पत्रिका के पृष्ठ उलट रही थी। झटपट उठकर टेलीफोन की ओर भागी। इतने प्रातः किसने टेलीफोन कर दिया। रिसीवर कान से लगाते ही उसकी उत्सुकता शान्त हो गई। कॉल रंजन की थी।

“भैया अभी बाथ-रूम में है,” रंजन के प्रश्न के उत्तर में उसने कहा।

“खैर, कोई बात नहीं, आप और उनमें क्या अन्तर है,” रंजन थोड़ा भिन्नका।

“आज्ञा कीजिए ?”

“क्या आज शाम को आप दोनों मेरे यहाँ चाय पीने की कृपा करेंगे ? मैं ‘क्लार्क’ में ठहरा हूँ, आपके घर के निकट ही। आपकी शाम तो खाली है न ?”

“अनेक धन्यवाद,” शिवा ने कहा, “मुझे तो शाम को कोई विशेष काम

नहीं, किन्तु भैया को शायद कहीं जाना हो। उनसे पूछकर थोड़ी देर में मैं स्वयं आपको फोन करूँगी। आपका नम्बर क्या है ?”

रंजन ने नम्बर बता दिया और शीघ्र ही उसे पता देने की ताकीद करके कनेक्शन तोड़ दिया। शिवा टेलीफोन के कमरे से निकलकर अपने कमरे में एक कुर्सी पर आ बैठी। रंजन क्यों मेल-जोल बढ़ाने की चिन्ता में है, यही वह सोचने लगी। कौन सा लोभ उसे हमारी ओर धकेल रहा है ? क्या नया बैरिस्टर अपने पाँवों पर खड़ा होने के लिए हमें परीक्षण-क्षेत्र बनाना चाहता है ? क्या मुकदमों का जमघट लगाकर वह अपनी जेब गरम करना चाहता है अथवा उसके आकर्षण का कारण कुछ और ही है ? यह विचार आते ही शिवा का मुख एकान्त में बैठे-बैठे भी लज्जा से लाल हो गया। फिर वह मुस्कराई। यदि यह बात है, तो उसे निराश होना पड़ेगा। जिस स्तर को वह अपनाए है, वह उसे कहीं भी पहुँचा न सकेगा। सांसारिक चतुराई उसमें अवश्य है। उसका व्यक्तित्व भी आकर्षण-रहित नहीं; किन्तु सांस्कृतिक श्रोज का उसमें कितना अभाव है, वह शायद नहीं जानता। जान ही कैसे सकता है ? खैर, कुछ भी हो, यदि मामला केवल मुझ पर छोड़ दिया जाय, तो मैं उसे उसको पथ दिखा सकती हूँ; किन्तु यह कहाँ हो सकता है ! लोभ और क्रोध से मदमाते भैया मेरी बात कहाँ मानने चले हैं ! वास्तविकता की प्रखर ज्योति में प्रदर्शित करन पर भी उन्हें रंजन का वास्तविक रूप शायद न दीख सके। पर क्या जो-कुछ वह सोच रही है, वह निःसन्देह ठीक है ? उसके विचारों ने थोड़ा पलटा खाया। हो सकता है, वह भूल में हो, रंजन की मधुर मुस्कान उसकी उच्च आत्मा का ही प्रतीक हो। उसकी सम्मति सचाई पर अवलम्बित हो। किन्तु नहीं। वह उठकर किञ्चित् वेंचैन सी कमरे में टहलने लगी। इतने में विपिन बाथ-रूम से बाहर आ गया। वह तीव्रता से उसके पास पहुँची और बोली—

“भैया, रंजन का टेलीफोन आया था।”

“क्या कहते थे ?”

“आज शाम को चाय पर बुलाया है, क्लार्क होटल में। चल सकोगे ?”

“तुमने क्या कहा ?”

“आप पर सब-कुछ छोड़ दिया ।”

“अच्छा, तो चले चलेंगे । आदमी तो सज्जन दीखता हूँ ।”

“तो उन्हें सूचित कर दीजिएगा टेलीफोन के निकट ही उनका नंबर लिखा पड़ा है,” शिवा के स्वर में कोई उत्साह न था ।

“तुम्हीं उन्हें कह दो । मैं उतनी देर में तैयार हो लूंगा ।”

“बहुत अच्छा,” शिवा ने कहा और टेलीफोन की ओर बढ़ गई ।

शाम को जब भाई-बहन क्लार्क की ओर चले, तो रंजन मुँह में सिगरेट दबाए अपने कमरे में टहल रहा था । मुख पर चिन्ता और उत्सुकता थी । आज की उसकी चाय-गोष्ठी किस करवट बैठती है, यही वह सोच रहा था । माँ-बेटे के द्वन्द्व में उसकी आकांक्षा कहाँ तक सफल हो सकेगी ? क्या जो-कुछ वह चाहता था, उसके हाथ लग सकेगा ? और वह चाहता वही था, जो शिवा ने भाँप लिया था—अर्थत् यश, धन और शिवा । धन तो शायद वह पा ले, पर क्या यश और शिवा भी उसे मिल सकेंगे ? केस में वह जोर नहीं था, जिसका विश्वास उसने विपिन को दिलाया था । अतः उस केस द्वारा बढ़ने के बजाय शायद उसकी कीर्ति में एक ठेस लगे । शब्दों का जादूगर लोग उसे अवश्य कहते थे, किन्तु कोरे शब्दों के काल्पनिक महल तो यथार्थता में परिणत नहीं हो सकते । शिवा ने उस दिन जो तीखा व्यंग्य किया गया था, उसका सीधा संकेत भी तो उसी ओर था । शिवा ! यश और धन से भी अधिक उसका हृदय शिवा के लिए मचल पड़ा था । एक ही क्षण में वह उसके मन में बैठ गई थी; किन्तु वह उसको राई-भर भी प्रभावित कर सका हो, ऐसा तो न दीखता था । तब ? तब यही कि शिवा के हृदय में अनुराग की अग्नि उसे प्रज्वलित करनी होगी । छल, बल, कौशल सभी का सहारा उसे लेना होगा, शिवा को पाने के लिए । इसीलिए आज चाय पर उन भाई-बहन के अतिरिक्त उसने किसी को नहीं बुलाया था । उसने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा । पाँच बजने में पाँच मिनट बाकी थे और उन्हें पाँच का समय दिया गया था । पाँच मिनट और उसे प्रतीक्षा करनी होगी । उसने एक-दो डग कपरे में भरे, फिर पश्चिम की खिड़की की ओर जा खड़ा हुआ । दूर—बहुत दूर—लाल और

मुनहले पहाड़ों से अठखेलियाँ करता हुआ सूर्य अपनी अन्तिम किरणों समेटने में प्रयत्नशील था। उस कोने के बादल विविध रंग रचते हुए मानो उसकी आरती उतार रहे थे। कुछ क्षण खड़ा-खड़ा वह उस दृश्य को देखता रहा और फिर मुख मोड़कर द्वार की ओर चल पड़ा। ठीक उसी समय किसी ने उसका द्वार खटखटाया और उसके आदेशानुसार शिवा और विपिन ने प्रवेश किया। रंजन ने मुस्कराकर हाथ जोड़ते हुए उनका स्वागत किया और उन्हें पास पड़ी हुई गद्देदार कुर्सियों पर बैठने का संकेत किया। दोनों जब धन्यवाद देते हुए अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठ गए, तो रंजन ने भी उनके सामने वाली कुर्सी ले ली।

“रेखा आ रही है ?” शिवा ने पूछा।

“नहीं, उसको आज फुरसत नहीं थी। वैसे मैं भीड़ वाली चाय पसन्द नहीं करता।”

“क्यों ?” विपिन ने प्रश्न किया।

“इसलिए कि मैं किसी के साथ चाय केवल चाय पीने के लिए नहीं पीता, बल्कि मानसिक आनन्द के लिए पीता हूँ। वह तभी संभव है, जब मैं अपने चाय के साथियों के साथ सांस्कृतिक संबंध स्थापित कर सकूँ और इसके लिए दो-तीन व्यक्तियों से अधिक का एक साथ बैठना चल ही नहीं सकता। आपकी क्या राय है ?”

“मैं आपके साथ सहमत हूँ,” विपिन ने जवाब दिया।

रंजन प्रसन्न हो गया। किञ्चित् अभिमान से शिवा की ओर देखा और पूछा, “और आपकी ?”

“मेरी राय ? यदि सच पूछिए, तो आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई।”

शिवा का व्यंग्य इतने मधु-मिश्रित स्वर में था कि रंजन तिलमिला उठने पर भी बुरा नहीं मान सकता था। रंजन आधे क्षण के लिए कुछ भी उत्तर न दे सका, फिर हँसता हुआ बोला — “यह मेरे दुर्भाग्य के सिवा और क्या हो सकता है ?”

“पैनी तथा कुंठित क्षमता का परस्पर उलभाव कभी-कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर ही देता है। अपने मस्तिष्क को तेज करने के प्रयत्न तो बहुत करती हूँ, किन्तु व्यर्थ !”

“इस टेढ़ी प्रशंसा के लिए धन्यवाद — यद्यपि जो आप कह रही हैं, वह सत्य नहीं कहा जा सकता।”

“अर्ध-सत्य ही सही, झूठ तो नहीं !” शिवा मुस्कराई।

ठीक उसी समय बैरे ने प्रवेश किया और रंजन से संकेत पाकर वह चाय लाने के लिए चल पड़ा। इसके बाद तर्क-वितर्क का सिलसिला टूट गया और जब तक चाय नहीं आई, मौसम पर ही बातचीत होती रही। रंजन की चाय से यह स्पष्ट था कि वह अतिथि-सेवा में निपुण है। बढ़िया-से-बढ़िया पेस्ट्री के साथ स्वादिष्ट देशी मिठाइयाँ और नमकीन भी प्रचुर मात्रा में उसने मंगा रखे थे। शिवा निपट शाकाहारी है, शायद उसको कहीं से पता चल गया था, इसलिये विलासती मिठाइयों को वह उरासे दूर-दूर ही रख रहा था। इससे शिवा की दृष्टि में वह थोड़ा अँचा चढ़ गया।

“पेस्ट्री मुझसे दूर-दूर क्यों रख रहे हैं ?” शिवा ने चम्मच से अपने प्याले की चीनी को हिलाते हुए मुस्कराकर पूछा।

“जिस पैनी क्षमता की ओर आपने अभी संकेत किया था, उसका सबूत पेश कर रहा हूँ। कृपया यह न कह देना कि यहाँ भी भूल कर रहा हूँ,” रंजन हँसा।

“यह कैसे कह सकती है ?” विपिन बीच में बोल उठा, “किन्तु इसका शाकाहारीपन कभी-कभी नाक में दम कर देता है।”

“आधुनिकता का चरना लगाने से ऐसा ही होता है। दूसरे देशों की बात मैं नहीं कहती, किन्तु क्या भारत में जाँस खाना अनिवार्य है ? क्या यहाँ इसका प्रयोग स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी उचित है ?”

विपिन उसे रोकने ही जा रहा था कि शिवा ने उसे हाथ के संकेत से रोक दिया—“जो-कुछ आप कहने जा रहे हैं, मैं जानती हूँ। वैज्ञानिक मतानुसार दूध शाकाहारी खुराक नहीं। शाक और सब्जियों में भी प्राण है,

मैं मानती हूँ; किन्तु कहीं तो लकीर खींचनी ही होगी। सब तरह का मांस भी तो आप लोग नहीं खा लेते।”

“निःसंदेह,” रंजन प्रशंसात्मक स्वर में बोला, “मैं आपके साथ लगभग सहमत हूँ, किन्तु आदत से मजबूर हूँ।”

“वह दूसरी बात है,” शिवा को सन्तोष हुआ, “वैसे मैं शाकाहारी धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं हूँ, यद्यपि उसे भी मैं बुरा नहीं मानती। मुझे तो मांस के प्रति सांस्कृतिक घृणा है। जिस माँ ने हमें पाला है, उसने यही मन्त्र हमें पढ़ाया है।”

“और वही माँ अब हमे दर-दर का भिखारी बनाना चाहती है,” विपिन के स्वर में व्यंग्य था, “हाँ, तो रंजनजी, क्या आपने हमारे मामले की ओर ध्यान दिया?”

“क्यों नहीं। मैं कल से आपके ही मामले पर सोच रहा हूँ। यदि आपका सहयोग मिल जाय, तो मैं आपकी माता को परास्त कर सकूँगा, ऐसी कई योजनाएँ मेरे मस्तिष्क में घूम रही हैं। एक ही कठिनाई है।”

“अर्थात्?” सब-कुछ समझते हुए भी विपिन ने पूछा।

“दिल्ली छोड़कर कुछ दिनों के लिए मुझे यहीं डेरा डालना होगा।”

“इतनी थोड़ी जान-पहचान के होते हुए यह अनुरोध कैसे करूँ कि आप हमारे ऊपर यह कृपा अवश्य कीजिएगा।”

रंजन मन-ही-मन खिल उठा—“मैं मानता हूँ, अभी हमारी जान-पहचान कल ही हुई है। मेरे विषय में तो आप जाने, किन्तु मुझे तो आपके सौजन्य ने पूर्णतया जीत लिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारा सम्बन्ध कई युगों से है,” रंजन के नेत्र अपने-आप मुंद गए, मानो वह किसी पूर्व जन्म की विपिन के साथ की हुई बाल-लीला का रसास्वादन करने लगा हो।

“तब क्या आप हमारा केस ले लेंगे?”

“सो तो लेना ही होगा। अब पीछे न हट सकूँगा।”

“अनेक धन्यवाद,” विपिन ने कहा, “आपने मेरे कंधों से मनो बोझा उतार दिया।”

इसके अनन्तर इधर-उधर की उड़ती-सी बातें ही होती रहीं, और जब रात भीगने को आई, तो वे दोनों रंजन से अनुमति लेकर घर की ओर चल पड़े।

६

इधर भाई-बहन युद्ध की तैयारियाँ कर रहे थे और उधर लता भी इसी ओर अग्रसर थी। इस बीच रोहित देहरादून से आ गया। शिवा और विपिन अभी रंजन के यहाँ से लौटे ही थे कि विपिन को माँ का बुलावा आ पहुँचा। आज उसने क्यों बुलाया है, यही सोचता हुआ वह लता के कमरे में पहुँचा।

“रोहित आज शाम को आ गया है, शायद तुम्हें यह पता लग गया हो,” माँ ने, जो गंभीर मुद्रा धारण किये कुर्सी पर बैठी थी, कहा।

“आ गया है !” विपिन की वाणी में आश्चर्य था, कहाँ है ?”

“अभी नौकर के साथ घूमने गया है। थोड़ी देर में लौट आयागा। उसे अब किस स्कूल में भेजना है, क्या तुमने निश्चय कर लिया है ?”

“सेट एडवर्ड ही ठीक रहेगा, क्योंकि दिन-भर पढ़ने के लिए तो वही अच्छा स्कूल है।”

“बहुत अच्छा। कल से उसका प्रबन्ध करो।”

“कर दूँगा,” विपिन ने कहा और वहाँ से खिसकने लगा।

“एक बात और,” लता ने उसे वहीं-का-वहीं रोक दिया।

“आज्ञा कीजिए।”

“मैं दो-चार दिन में तुम्हारे पिता की वसीयत पर ‘प्रोबेट’ लेने की अर्जी दे रही हूँ।”

विपिन चुप रहा।

“क्या तुम्हें इसमें कुछ आपत्ति है ?” लता ने प्रश्न किया।

“मुझे ?” विपिन को एकाएक कुछ सूझ न पड़ा। वह टुकुर-टुकुर माँ की ओर देखने लगा।

“हाँ, कहो !” माँ ने प्रोत्साहन दिया।

“यदि हो, तो ?” विपिन थोड़ा भिन्नकककर बोला ।

“उसे सुनना चाहूँगी ।”

विपिन एक क्षण सोच में डूबा रहा, फिर धीरे से बोला—“मैं उसके लिए समय चाहता हूँ ।”

“कब तक ?”

“परतों में इस विषय में आपसे बात करूँगा ।”

“बहुत अच्छा,” लता ने कहा, “और एक बात न भूलना,” लता रुकी ।

“क्या ?”

“अपने सलाहकार चुनने में सावधानी से काम लेना । यदि ऐसा नहीं करोगे, तो शायद पीछे पछताना पड़े ।”

“ऐसा ही करूँगा ।”

“और सलाह करते समय यह न भूल जाना कि मैं तुम्हारी माँ हूँ ।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने कहा और सिर झुकाए हुए कमरे से बाहर चला गया ।

लता भी थोड़े अन्तर पर उसके पीछे ही बाहर चल दी । विपिन अपने कमरे में चला गया और लता पहुँची टेलीफोन वाले कमरे में । वहाँ से उसने चेंबर को टेलीफोन किया और सब-कुछ तीसरे दिन तक स्थगित कर देने का आदेश दिया ।

“क्या कहती थीं ?” शिवा ने मुस्कुराकर पूछा ।

“पिताजी की वसीयत को पश्चा कराने की विल्ला में हूँ ।”

“तो तुम्हें क्या इसीलिए बुलाया था ?”

“हाँ । कितनी चतुर हैं यह औरत ! उसका साहस तो देखो, मेरे सर्वनाश की सूचना मुझे देते हुए जरा भी नहीं हिचकिचाई !”

“फिर तुमने तो भैया, खूब सुनाई होगी ?”

“सुनाई ?” विपिन ने ज़रा टेढ़ी दृष्टि से बहन की ओर देखा, “आज यदि न भी सुनाई हो, तो कल तो सुनानी ही होगी । कब तक हम भीगी बिल्ली बन सकते हैं ?”

“तब तुमने किया क्या ?”

“परसों तक की मोहलत ले आया हूँ, और उसने मधुरता में लपेटकर जो बुनौती दी है, परसों साफ शब्दों में कह दूँगा कि वह मुझे स्वीकार है।”

“तो आज ही क्यों नहीं कह दिया ?”

“इसलिए,” विपिन ज़रा खीझकर बोला, “कि मैं इतना मूर्ख नहीं, जितना लोग मुझे समझते हैं !”

“कौन लोग ?”

“खैर, कोई भी हों,” विपिन ने बात टालते हुए कहा, “एक और तो यह बर्ताव और साथ ही मुझे रोहित का प्रबन्ध करने का आदेश भी दे दिया है।”

शिवा मुस्कराई—“जो मेरे भैया सहर्ष मान आए हैं !” उसकी वाणी में मीठा व्यंग्य था।

“मानता न तो क्या करता ? क्या तोड़कर जवाब दे आता ?”

“परसों क्या करोगे ? क्या जोड़कर जवाब दोगे ! भैया, मेरी बात मानो। हटाप्रो इस झगड़े को। तुमसे यह न हो सकेगा।”

“मुझसे न हो सकेगा ?” विपिन का स्वर तीखा हो चला, “तो फिर आओ, दोनों गली-गली भीख मांगे !”

“तुमसे वह भी न माँगी जा सकेगी !” शिवा खिलखिलाकर हँसने लगी।

“देखो शिवा, यह हँसने की बात नहीं। हमे सोच-विचार से काम लेना होगा। अभी किसी समझदार आदमी से सलाह करनी होगी।”

“किससे ?”

“मुझे तो रंजन के अतिरिक्त कोई ऐसा नहीं दीखता, जो हमे ठीक राह मुझा सके।”

“तब उसी से बात कर लो।”

“अभी तो उसके यहाँ से आ रहे हैं।”

“फिर क्या हुआ। दुबारा भी जा सकते हैं। टेलीफोन पर समय निश्चित कर लो।”

“बहुत अच्छा !” विपिन ने कहा कि और टेलीफोन के कमरे की ओर भागा ।

दो ही मिनट में रंजन उसे टेलीफोन पर मिल गया । उसी समय मिलने की तो उसे फुरसत न थी, इसलिए “अगले दिन प्रातः वह उनकी प्रतीक्षा में होगा ।” उसने आश्वासन दिया ।

विपिन ने शिवा को स्थिति से परिचित करा दिया और बहन के सामने एक कुरसी पर बैठ गया । पर शिवा ने कुछ जवाब न दिया । एक बार ध्यान से भाई की ओर देखा और फिर आँखें मूँदकर सोच में डूब गई । रंजन क्यों राह में आ पड़ा है ? क्या वह उतना ही अच्छा मानव है, जितना अच्छा वकील उसे समझा जाता है ? उसके ऊपरी हाव-भाव, बनाव-सिगार, निःसंदेह आकर्षक हैं; किन्तु क्या उसकी आत्मा निर्मल है ? उसमें मलिनता तो नहीं ? क्या उसके भरोसे इतना महत्वपूर्ण पग उठाना उनके लिए उचित है ? रंजन जो-कुछ कहेगा, वह तो पहले से ही निश्चित है । उससे सलाह करना व्यर्थ चाहे न हो, किन्तु बुद्धिमत्ता नहीं । तब ? वह भैया को इस ओर अग्रसर होने से क्यों न रोके ? किन्तु वे रुकेंगे ? जिसके हृदय में गृह-युद्ध की ज्वाला धधक रही हो, उसे दिनकर ही मोह सकता है, चाँद नहीं । पर रंजन उनके जीवन को कटु बनायगा, ऐसा उसकी अन्तरात्मा क्यों कह रही है ? सोचते-सोचते शिवा बेचैन हो गई । उसके मुँदे हुए नेत्र एकाएक खुल गए । उत्तेजित स्वर में बोली—
“भैया !”

“क्यों शिवा ?” विपिन ने कोमल स्वर में पूछा ।

“रंजन के बिना हमारा काम न चल सकेगा क्या ? इतनी कम जान-पहचान वाले व्यक्ति पर हम क्या इतने बड़े उत्तरदायित्व का भार डाल सकते हैं ?”

“क्यों नहीं ?”

“और यदि हाँ,” शिवा ऐसे कहती चली गई, मानो उसने भाई का वाक्य सुना ही नहीं, “तो क्या वह यह भार उठाने के लिए तैयार हो जायगा ? और यदि हो जायगा, तो क्यों ? उसको इससे क्या लाभ ?”

“क्या लाभ और हानि से ही प्रत्येक बात तौली जाती है ?” विपिन होठों को बल देकर बोला ।

“नहीं । किंतु रंजन हानि और लाभ के संसार का प्राणी है, ऐसा मेरा विश्वास है ।”

“इसमें तुम्हारी भूल भी हो सकती है ।”

“हाँ, हो सकती है; किन्तु इस गृह-कलह में पड़ने से रंजन अपने भविष्य का कौन सा स्वप्न यथार्थता में परिणत करना चाहता है, इस पर हमें एक बार गम्भीरता से विचार करना ही होगा ।”

“भविष्य का स्वप्न ! तुम यों ही कल्पना की उड़ानें भर रही हो, शिवा ! एक सीधी-सादी बात में तुम्हें क्यों छल-बल दीख रहा है, मुझे समझ नहीं आता ।”

ठीक उसी समय दरवाजे के परदे को हटाते हुए तेजी से रोहित ने प्रवेश किया । उसके बाल अस्त-व्यस्त थे । गोरे गालों पर किंचित् लालिमा दौड़ रही थी । अपने बड़े भाई और बहन को देखकर उसके गहरे भूरे रंग के बड़े-बड़े नेत्र चमक उठे । श्वेत सुन्दर दन्त पंक्ति प्रदर्शित करता हुआ वह मुस्कराया और हाथ जोड़कर दोनों को प्रणाम किया ।

“रोहित, कैसे हो तुम ?” शिवा ने मधु से ओत-प्रोत स्वर में पूछा, “इधर तो आओ ।”

रोहित उसकी ओर बढ़ गया और उसने प्यार से पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे अपने साथ ही कुर्सी पर बिठा लिया ।

“भैया,” रोहित ने दुलार-भरे स्वर में विपिन से पूछा, “मेरे स्कूल का प्रबन्ध हो गया ?”

“हाँ !”

“तो क्या मैं कल से स्कूल जा सकूँगा ? आपको कल मुझे वहाँ ले जाना ही होगा । सेंट एडवर्ड नाम तो सुन्दर है । स्कूल कैसा है, भैया ?”

“बहुत अच्छा । तुम्हें अवश्य पसन्द आयेगा ।”

“वहाँ के लड़के कैसे हैं ? टोपी कैसी पहनते हैं ? उनका ग्राउंड कैसा है ?

क्या वे क्रिकेट खेलते हैं ? भैया, मैं बालिंग इतनी अच्छी करता हूँ कि तुम्हें क्या बताऊँ ।”

“सच ?” विपिन और शिवा दोनों हँसने लगे ।

“हाँ, और भैया कल मुझे आपको क्रिकेट का सब सामान लाकर देना होगा । मैंने ममी से कहा था, किन्तु उन्होंने आपकी ही तरफ भेजा है — ‘भैया से जाकर कहो, मैं इन खेलों-वेलों के विषय में कुछ नहीं जानती ।’ ला दोगे न ?”

“अवश्य ।”

“और भैया, मुझे अभी चित्रा जीजी मिली थीं ।”

“कहाँ ?”

“माल पर घूमने जा रही थीं । मैंने उन्हें फौरन पहचान लिया ।”

“कुछ कहती थी क्या ?”

“हाँ । बोलती, अपने भैया से कह देना, मैं कल उन्हें मिलूंगी । शायद दस बजे ही आ जाऊँ ।”

“दस बजे ?”

“और तब मुझे भी घर पर ही रहने के लिए कहा था । मेरे लिए वे एक बहुत सुन्दर चीज़ लायेंगी ।”

“किन्तु तुम्हें तो कल स्कूल जाना है ।”

“वह थोड़ा पीछे भी जा सकता हूँ । चित्रा जीजी को भी साथ ले चलेंगे । हैं भैया ?”

“बहुत अच्छा । तो तुम सुबह नहा-धोकर तैयार हो जाना ।”

“सो तो हो जाऊँगा । वहाँ के प्रिंसिपल भला कैसे है ?”

“कल सब-कुछ देख लेना । अज्र जाओ, कुछ खा-पी तो लो ।”

रोहित उठा और आनन्द से भागता हुआ कमरे से बाहर चला गया । उसके बड़े भाई और बहन कितने अच्छे हैं, यह विचार उराके नन्हें हृदय को आह्लादित कर रहा था । वे ही भाई और बहन निकट भविष्य में उसके जीवन को कटुतम बनाने का एक भीम प्रयास करेंगे, यह उसे कौन समझाव और कैसे ?

रोहित के बाहर जाते ही विपिन एक सूखी हँसी हँसा—“रंजन, रोहित, चित्रा ! कल की सुबह किसके हुवाले करूँ ?”

शिवा ने कोई जवाब नहीं दिया ।

“बोलती क्यों नहीं, शिवा ? कुछ तो कहो ।”

“क्या कहूँ, यही तो समझ में नहीं आता । रंजन तुम्हारा कलह-मंत्री बनने जा रहा है । रोहित तुम पर बलाएँ लेने वाला छोटा भाई है, जिसके तुम हो आदर्श भैया और चित्रा है तुम्हारे तप्त बालू-से जीवन की शीतल बयार । अब तुम्हीं सोचो, तुम्हें इनमें से किस चुनना है । रोहित और चित्रा तो शायद सामंजस्य का पथ पकड़ भी लें, किन्तु रंजन तो उनका साथ न दे सकेगा । वह तो बवंडर का जादूगर है, और ये दोनों हैं शान्ति, आनन्द और जीवन के प्रतीक ।”

विपिन होंठों को बल देकर मुस्कराया -- “मेरे तुमसे एक सीधा-सा प्रश्न पूछा था और तुमने मेरे सामने एक कवित्वमय पहेली रख दी है । तुम्हीं इसे सुलभाओ ।”

“मे सुलभाऊँ !” शिवा ने एक दीर्घ निश्वास लिया, “यदि कहीं मैं इसे सुलभा पाती, तो मेरा और तुम्हारा जीवन कितना सुखमय, कितना शान्त हो जाता !”

“और अब तुम समझती हो, हमें बवंडर के जादूगर रंजन की बाँह ही पकड़नी होगी ?”

“मैं तो यह नहीं समझती । क्या तुमने देखा नहीं, रोहित की बातचीत में कितना अपनत्व था और क्या तुमने समझा नहीं कि वह सब-कुछ उसके नन्हें मस्तिष्क की सूझ न थी, बल्कि दूरदर्शी व्यक्ति द्वारा प्रेरित था वह ।”

“किसके द्वारा, जिसे हम कल तक यथार्थ में माँ समझते थे और आज…… ?”

विपिन ने शिवा को वहीं रोक दिया -- “छोड़ो इस भावुकता को । इससे तो हम कहीं भी नहीं पहुँच सकेंगे ।” यह कहते-कहते वह उठ खड़ा हुआ ।

“अब कहाँ चले ?” बहाने ने पूछा ।

“चित्रा से टेलीफोन पर एक बात करूँगा। मिल जाय सही।”

“आशा तो नहीं। इतनी जल्दी वह कहाँ घर पहुँची होगी।”

“कोशिश तो कर देखूँ।” विपिन कमरे से बाहर चला गया। शिवा कुछ देर ज्यों-की-त्यों बैठी रही। फिर एकाएक वह भी उठी और भाई का अनुसरण किया।

१०

दूसरे दिन दस बजने से पहले ही चित्रा विपिन के घर जा पहुँची। विपिन नहा-धोकर तैयार बैठा था और शिवा शृंगार-गृह में अपने रूप को निखारने में व्यस्त थी।

“अकेले बैठे हो?” कमरे में घुसते ही चित्रा ने, जिसके हाथ में एक बड़ा लिफाफा था, पूछा, “शिवा कहाँ हैं?”

“बस, आती ही होगी। यह क्या लाई हो?” विपिन ने कहा और उसकी ओर देखने लगा। चित्रा के वस्त्रों में उस दिन भी कोई तड़क-भड़क नहीं थी। उसकी साड़ी हल्के मोतिया रंग के बहुत कीमती सिल्क की थी। उसने इस बेपरवाही से उसे पहन रखा था कि उसकी महँगाई का भाव किसी जानकार को ही हो सकता था। पाँव का चमचमाता जूता भी उसी रंग का था। साड़ी के भीतर से झाँक रहा उसका ब्लाउज, जो सुनहला था, किन्तु शोख न था। उसके स्वाभाविक होठ लिपस्टिक से अछूते थे। गालों पर पाउडर का व्यवहार अवश्य किया गया था, किन्तु उसके चिह्न मिटा दिए गए थे, केवल उसकी घीमी-मधुर महक बाकी रह गई थी। उसके काले नेत्र सदा की भाँति उस दिन भी मुसकरा रहे थे। मस्तक पर एकाध लट खेल रही थी। विपिन के नेत्र उसे पी रहे हैं, चित्रा एक क्षण में ही भाँप गई।

“यह लाई हूँ रोहित के लिए कुछ खिलौने। नख से शिख तक निरीक्षण तो हो चुका, अब कहो।”

“तुम्हारा निरीक्षण क्या कभी समाप्त हो सकता है? मेरे नेत्र तो तुम्हारे किसी हाव-भाव का पार नहीं पा सकते। तुम्हारा रूप, रंग, वस्त्रों का चूनाव

उन्हें बनवाने की शैली, पहनने का ढंग, तुम्हारे शरीर की गठन, नेत्रों का आकर्षण, मस्तक का तेज— क्या-क्या कहूँ, समझ में नहीं आता ।” विपिन का स्वर सत्यता से ओत-प्रोत था— “सोचता हूँ, क्या मैं तुम्हारे योग्य हूँ ।”

“और सोचकर किस निष्कर्ष पर पहुँचते हो, यह भी तो सुनूँ,” चित्रा हँसने लगी ।

“निष्कर्ष ?” विपिन उसी स्वर में कहता चला गया, “क्या मैं तुम्हारा जीवन सुखमय, सरल तथा तुम्हारे अनुरूप बना सकूँगा ? क्या तुम्हारा व्यक्ति-त्व मुझे मनमानी करने देगा ?”

“मनमानी ?” चित्रा, जो अभी तक गंभीर न हो पाई थी, एकाएक गंभीर हो उठी, “क्या मनमानी करना बहुत सुखकर है ? यदि है, तो मैं तुम्हें रोकूँगी नहीं । जिस साँचे में ढालना चाहोगे, तुम्हें उसकी खुली छुट्टी दे दूँगी ।”

“सच !” विपिन का एक-एक रोम खिल उठा ।

“बिलकुल ; किन्तु यदि तुम्हारी मनमानी सफल नहीं हुई, तो ? जिसे तुम बेंत समझ रहे हो, यदि वह सूखी छड़ी निकल पड़े, तो ?”

“तब भी मुझे पूर्ण सन्तोष होगा ।”

“क्यों ?”

“इसलिए कि मेरे मन में कोई संताप नहीं रह जायगा ।”

“बहुत अच्छा, यदि यही चिन्ता तुम्हें खाए जा रही थी तो उसे छोड़ दो और अपने व्यक्तित्व को स्वाभाविकता से विकसित होने दो ।”

“धन्यवाद !”

इतने में शिवा ने प्रवेश किया । चित्रा को देखकर वह गद्गद हो गई और आगे बढ़कर उससे गले मिली ।

“तुम दोनों बातें करो । मैं ज़रा रंजन से क्षमा माँग लूँ । उसके पास निश्चित समय पर पहुँच न सकूँगा ।”

“हाँ, तुम उसे टेलीफोन करो । मैं ज़रा शिवा को लेकर माँजी से मिल आऊँ ।”

“मिल आओ,” विपिन ने उदासीन स्वर में कहा।

चित्रा जब शिवा के साथ स्नेहलता के कमरे में पहुँची, तो वह एक सोफे पर ध्यान-मग्न बैठी थी। चित्रा को देखकर उसका मुख आनन्द से बसक उठा।

“आओ बेटा, तुम कैसे भूल पड़ीं ?” स्नेहलता मधु-मिश्रित स्वर में बोली।

चित्रा ने आगे बढ़कर स्नेहलता के पाँव छुए। स्नेहलता ने उठाकर उसे छाती से चिपटा लिया। सामने वाली कुर्सी पर शिवा बैठ गई।

“क्या रोहित ने आपको मेरा संदेश नहीं दिया था ?” चित्रा ने किंचित् आश्चर्य से पूछा।

“संदेश तो उसने अवश्य दिया था पर मैंने उस पर विश्वास नहीं किया। यों ही उसका मन रखने के लिए तुमने कह दिया होगा, मैंने सोचा।

“यदि उसका मन रखने के लिए ही मैंने कहा हो, तब भी मैं उससे किया हुआ वादा कैसे भुला सकती थी। संकड़ों की भीड़ को चीरता और ‘जीजी-जीजी’ कहता हुआ वह सीधा आकर मुझसे चिपट गया था। दो ही बार तो उसने मुझे देखा है, किन्तु जरा भी नहीं भूला। अब कहाँ है ?”

स्नेहलता प्रफुल्लित हो गई। बोली—“यहीं कहाँ होगा, स्कूल जाने की तैयारी में।”

“हाँ, यह भी उसने मुझे बताया था कि भैया आज उसे स्कूल में दाखिल करवायेंगे।”

“वे भी तो तैयार बैठे हैं,” शिवा बोली।

“उसे बुलवाइए तो सही। हम अभी उसे स्कूल ले जायेंगे।”

“तुम भी जाओगी क्या ?” स्नेहलता ने पूछा।

क्यों नहीं ? सेंट बीड्ज कॉलेज, जहाँ मैं पढ़ी हूँ, सेंट एडवर्ड स्कूल से सम्बन्धित है। स्कूल के प्रिंसिपल से मैं भलीभाँति परिचित हूँ। इसलिए उसे वहाँ प्रविष्ट करवाने में जरा भी कठिनाई न होगी। और यदि सचमुच पूछें, तो मैं आज उसी काम के लिए आई भी हूँ।”

“इसके लिए धन्यवाद तो न दे सकूंगी,” प्रसन्नता से ओत-प्रोत स्वर में स्नेहलता ने कहा, “शिवा, जरा देखना तो, रोहित किधर हैं। इतनी दूर से उसकी जीजी उसे स्कूल लिया जाने के लिए आई हैं और उसका कहीं पता भी नहीं !”

शिवा गई और एक ही क्षण में रोहित को ले आई। वह भी स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहा था। चित्रा को देखते ही रोहित उसकी ओर भागा—
“जीजी, तुम कब आईं ?”

रोहित चित्रा की गोदी में जा बैठा।

“मैं अभी आई हूँ तुम्हें स्कूल ले जाने के लिए,” चित्रा ने खिलौनों का लिफाफा उसे पकड़ा दिया।

लिफाफा लेकर उसने उसके भीतर भाँगा और प्रसन्नता से उछल पड़ा—
“आप भी स्कूल चलेंगी ? बहुत खूब !”

“रोहित,” माँ ने मीठी भिड़की देते हुए कहा, “इतनी देर से तुम्हारी जीजी आई हुई हैं, तुमने न उन्हें खाने के लिए पूछा, न पीने के लिए !”

“मैं तो घर से चाय पीकर चली थी, माँ जी ! मैं अब कुछ न खा सकूंगी।”

“बिना खाए भी तो तुम न जा सकोगी।”

उसने नौकर को आवाज दी। दो ही क्षण में उसने आकर पूछा—“क्या आज्ञा है ?”

“कॉफी भटपट तैयार करो और खाने के लिए कुछ फल और मिठाइयाँ इधर तुरन्त भेज दो।”

“किन्तु...” चित्रा ने फिर बाधा देनी चाही।

“किन्तु-बिन्तु कुछ नहीं। चूँकि तुम चाय पीकर आई हो, इसीलिए मैंने कॉफी का प्रबन्ध किया है और फिर देखो, यह घर तुम्हारा भी बंसा ही है, जैसा मेरा। इसलिए तुमको कोई आपत्ति नहीं करनी होगी।”

“जो आज्ञा,” चित्रा ने सिर झुका दिया।

“और देखो रोहित, भैया को यहीं बुला लाओ। वहाँ अकेले बैठे-बैठे वह ऊब जायगा।”

“बहुत अच्छा,” रोहित ने कहा और लिफाफा छाती से लगाए बाहर

भाग गया। विपिन तब तक अपने टेलीफोन से छुट्टी पा चुका था, इसलिए वह तुरंत उसके साथ आ गया।

“यहाँ तो पूरी गार्हस्थ्य-कौंसिल जमी है,” उसने मुस्कराकर कहा और कोने में पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। फिर रोहित की ओर देखकर पूछने लगा, “स्कूल कब चलोगे?”

“थोड़ी देर रुको,” माँ ने कहा, “लड़की को कुछ खा तो लेने दो। तुम तो खा आए हो शायद?”

“कहाँ खा आया हूँ?”

“फिर तुम भी उनका साथ दो।”

इतने में नौकर ने सबके सामने तिपाइयाँ लगा दीं और देखते-ही-देखते कई तरह की मिठाइयों, फलों तथा नमकीन पदार्थों से भरी तश्तरियाँ उन पर रख दीं। कुछ देर के बाद कॉफी के प्याले भी आ गए।

“माँजी, आपने तो पूरी पार्टी का आयोजन कर रखा है।”

“मेरी बेटो, मुझे पार्टी का अवसर ही कब देती है। जो रूखा-सूखा है, इसलिए उसी से उसे संतोष करना होगा।”

विपिन ने एक बड़ा सा मिठाई का टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा—“वह करे या न करे, किंतु हमें पूर्ण रूप से संतोष है।”

इसी बीच नौकर कॉफी ले आया। शिवा सबके प्यालों में उसे ढालने लगी, पर स्नेहलता ने उसे लेने से इन्कार कर दिया।

“आप क्या कुछ नहीं लेंगी?”

“नहीं बेटो, मैं तो क्षमा ही चाहूँगी; क्योंकि मैं तो दो बच्चे से पहले कुछ नहीं खाती।”

“कब से?” शिवा के स्वर में थोड़ा आश्चर्य था।

“अब से ही समझ लो,” बात टालते हुए स्नेहलता ने कहा, “तुम तो कुछ खाती ही नहीं, बेटो!”

स्नेहलता ने मिठाइयों तथा नमकीन के कुछ टुकड़े ना-ना करती हुई चित्रा की तश्तरी में फेंक दिए। फिर एक सेब उठाकर उसे छुरी से छीलने लगी।

“मांजी, यदि इसी भाँति मुझे खाना पड़ा, तो स्कूल जाना तो एक ओर रहा, यहाँ से हिल तक न सकूँगी,” स्नेह-सने स्वर में चित्रा ने उलाहना दिया ।

“वहाँ पहुँचने की चिन्ता न करो । स्कूल कार्ट रोड पर ही तो है । वहाँ पर तुम लोगों को मोटर छोड़ आयागी ।”

उसने पास खड़े हुए नौकर को आदेश दिया कि वह शोफर को अति शीघ्र मोटर बाहर निकाल लाने के लिए कह दे । इस बीच उसने हाथ वाले सेब को छील-काटकर फाँकें कर डाली थीं । उन्हें भी उसने चित्रा की प्लेट में डाल दिया ।

पन्द्रह मिनट के बाद स्नेहलता से अनुमति लेकर जब वे लोग हो-हल्ला करते हुए उठे, तो कौन कह सकता था कि उस घर पर गृह-कलह के काले बादल छाने वाले हैं ।

“चित्रा, तुम तो खूब खाती हो !” मोटर की ओर जाने के लिए जब वे कोठी से बाहर निकले, तो विपिन परिहास करने लगा ।

“निस्संदेह । इसलिए अभी से सोच लो । क्या मेरा भार उठा सकोगे ?” वह खिलखिलाकर हँसने लगी ।

“यह भार मुझ पर छोड़ो जीजी !” शिवा ने भी हँसते हुए कहा ।

“तुम पर नहीं, मुझ पर,” गंभीर स्वर में रोहित बीच में बोल उठा, “जीजी, मैं वे-वे चीजें लाकर तुम्हें खिलाऊँगा कि वाह-वाह कर उठो ।”

“इन सम्मिलित कृपाओं के लिए अनेक धन्यवाद ! पर उनका फल जानते हो, क्या होगा ? मांस और मज्जा की कई तहें मुझ पर चढ़ जायेंगी और तब अड़ोस-पड़ोस के बच्चों में मैं ‘मोटी भाभी’ के नाम से प्रसिद्ध होने के साथ-साथ चलने-फिरने से भी रह जाऊँगी ।”

यह कहकर वह मुस्कराई । बाकी सब लोग ठाकर हँसने लगे । इतने में वे मोटर तक पहुँच गए । मोटर बढ़िया ब्यूक थी । इसलिए सुगमता से पिछली सीट पर ही सभी बैठ गए । एक ही क्षण में मोटर उन्हें स्कूल की ओर ले चली ।

रोहित को स्कूल में दाखिल करवाने में कठिनता से पन्द्रह मिनट ही लगे। प्रिंसिपल चित्रा को अच्छी तरह जानता था, इसलिए ऊपरी पूछ-ताछ से वह सन्तुष्ट हो गया। उसे स्कूल में छोड़कर ये लोग बाहर निकले और शोफर को मोटर उसी के लिए खड़ी रखने का आदेश देकर वे पैदल ही चल पड़े।

“अब किधर ?” चित्रा ने पूछा।

“मुझे तो रंजन से मिलना है,” विपिन ने कहा।

“तुम्हें तो तब पीछे लौटना होगा और हमें जाना होगा आगे। शिवा को मे साथ लिये जाऊँगी। चलोगी न ?”

“चलूँगी,” शिवा ने भाई की ओर देखा।

“और यह खाना भी वहीं सेसिल होटल में मेरे साथ खायगी। यदि तुम भी आ सकी, तो आ जाना।

“खाने के समय तो शायद मैं न पहुँच सकूँ।”

“तो चाय के समय तक पहुँच जाना।”

“कहाँ, सेसिल में ? वहाँ चाय क्या जमेगी ?”

“चाय जहाँ तुम कहोगे, वहीं पियेंगे; पर तुम आ जाना वहीं सेसिल में।”

“बहुत अच्छा,” विपिन उसे नमस्कार करके पीछे लौट पड़ा।

जब वह क्लार्क होटल पहुँचा, तो रंजन बरामदे में उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। प्रसन्नता से उसने विपिन का स्वागत किया और उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अपने कमरे में खींचकर ले गया। जब दोनों कुर्सियों पर बैठ गए, तो रंजन ने जेब से अपना चाँदी का सिगरेट-केस निकाला। उसे खोलकर विपिन की ओर बढ़ा दिया। जब विपिन ने एक सिगरेट उसमें से ले लिया, तो रंजन ने भी एक सिगरेट छाँट लिया। उसे होठों में दबाकर उसने सिगरेट-लाइटर निकाला और उससे विपिन का सिगरेट जला दिया, फिर उसकी लपट से अपने सिगरेट को प्रज्ज्वलित कर लिया। उसके कश खींचता हुआ बोला — “अब कहो।”

“मेरी तो वही कहानी है,” विपिन सूखी हँसी हँसकर कहने लगा, “कल तक माँ को जवाब दे देना होगा।”

“किस बात का ?” धुएँ के छल्ले बनाते हुए अर्ध-निमीलित नेत्रों से विपिन की ओर देखते हुए रंजन ने पूछा।

“यही कि मुझे युद्ध का मार्ग तय करना है या शान्ति का।”

“आपका मन किस ओर है ?”

“मेरा मन,” विपिन किञ्चित् उत्तेजित स्वर में बोला, “पूर्णरूपेण युद्ध की ओर है। मैं तो पीछे हटते हुए भी अन्तिम मोर्चे तक लड़ना चाहूँगा, किन्तु...” वह रुका।

“किन्तु क्या ?”

“पर यह तभी हो सकता है, यदि विजय की संभावना भी उतनी ही प्रबल हो, जितनी पराजय की।”

“तो आपकी सम्मति में विजय की संभावना कम है ?”

“मेरी सम्मति का मूल्य ही क्या है ? चँवर को अपनी विजय पर इतना भरोसा है कि मुझे वह चेतावनी दे चुका है कि मुझे भूलकर भी अपनी माँ से लड़ने का दुस्साहस नहीं करना चाहिए।”

“चँवर को छोड़िए,” रंजन ने ग्लानि-भरे स्वर में कहा।

“और उधर रेखा के पिता भी तो प्रोत्साहन नहीं देते। उनकी राय में भी तो हमारा पक्ष निर्बल है।”

“तब ?” रंजन का पहला सिगरेट समाप्त हो गया। उसी के द्वारा उसने दूसरा सिगरेट सुलगाया और उससे धुएँ का संसार रचता हुआ कहने लगा, “मुझ-जैसे नौसिखिए के किये क्या हो सकेगा, इसी भ्रम का निवारण आप करना चाहते हैं ?”

“नौसिखिया तो मैं आपको समझता नहीं, पर आपकी सच्ची राय जरूर जानना चाहता हूँ।”

“मेरी सच्ची राय ?” रंजन अपने बारीक होठों को बल देकर मुसकराया, “वह तो यही है कि यदि मेरे बनाए हुए पथ के पथिक आप बन जायें, तो

‘साख बाधाएँ भी आपका बाल-बाँका न कर सकेंगी। उन्हें रौंदते हुए, उनकी चकनाचूर करते हुए आप सफलता-स्तम्भ को अवश्य छू लेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।’

विपिन का साहस थोड़ा बँधा “तो आप सप्रभुते हैं, मैं मुकदमा जीत जाऊँगा ?”

“निस्सन्देह, पर यदि आप मुकदमा लड़ने में मेरे साथ पूर्णरूपेण सहयोग दें। उमेश बाबू तथा चँवर कानून के पुतले भले ही हों, पर मुकदमा लड़ने की इधर जो नई टेकनीक हमने निकाली है, उसका ‘क’-‘ख’ भी वे नहीं जानते।”

“नई टेकनीक ?” विपिन को रंजन की बातों में रस आने लगा था।

“हाँ साहब, जैसे आज युद्ध के लिए शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक क्षमता की आवश्यकता है, वैसे ही कचहरी में विजय प्राप्त करने के लिए कानून के ज्ञान की अपेक्षा एक बाजीगर-सा मस्तिष्क अधिक मूल्यवान है। और वह मस्तिष्क लेकर कोई पैदा नहीं होता।”

रंजन थोड़ा रुका। उसका सिगरेट समाप्त हो गया था। उसने उसे ऐंश-ट्रे में मसल दिया और दूसरा सिगरेट होठों में दबाकर सिगरेट-केस को विपिन की ओर बढ़ाया। किन्तु उसने सिर हिला दिया। फिर सिगरेट को सुलगाकर वह कहता चला गया—“बंसा मस्तिष्क बनाने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। बंसा मस्तिष्क वाला वकील हाथ वाले मुकदमे से अधिक सुदूर भविष्य में आने वाले मुकदमों को अधिक महत्त्व देता है। अपनी कल्पना के बल पर वर्तमान मुकदमे को वह भविष्य के मुकदमों की लड़ी में प्रथम स्थान पर बाँध देता है। यदि आप मुझे बंसी ही लड़ी बनाने की अनुमति दे सकें, तो आपकी विजय निश्चित है। क्या दे सकेंगे ?”

“अवश्य,” विपिन का स्वर उत्साह में ओत-प्रोत था।

“तो कल आप बे-खटके अपनी माँ से कह दीजिए कि आप उनकी ‘प्रोबेट’ की दरखास्त का पग-पग पर मुकाबला करेंगे।”

“बहुत अच्छा !”

‘और उसके बाद सीधे इधर आ जाइए। कल सुबह तक मेरी कल्पना युद्ध

के नक्शे की एक-एक लकीर खींच लेगी। और नक्शा क्या होगा, कला की एक अनूठी चीज होगी।”

“तो अब मुझे आज्ञा है ?” विपिन उठ खड़ा हुआ। रंजन ने उसके हृदय में स्फूर्ति और उत्साह की जो लहर बहा दी थी, आशा का जो मंत्र फूँक दिया था, उसे शीघ्रातिशीघ्र चित्रा और शिवा तक पहुँचाकर वह उन दोनों को भी आह्लादित करना चाहता था।

“खाना तो खा लीजिए,” रंजन ने कहा।

विपिन ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा। अभी एक बजने में कुछ मिनट बाकी थे। वह डेढ़ बजे तक सेसिल पहुँच सकता है। उसने कहा—“धन्यवाद ! आज खाना तो मुझे चित्रा के यहाँ सेसिल में खाना है।”

“तब मैं जोर नहीं देता।” रंजन मुसकराया।

विपिन उसे नमस्कार करके बाहर आ गया। होटल के टेलीफोन द्वारा चित्रा को शीघ्र ही पहुँचने की सूचना दी और पवन में उड़ता हुआ सेसिल की ओर भागा।

जब वह चित्रा के कमरे में पहुँचा, तो वह शिवा के साथ बातचीत में संलग्न थी। विपिन का उत्साहपूर्ण मुख देखकर उसके मुख पर मुसकराहट खेल उठी, किन्तु शिवा के चेहरे पर चिन्ता मँडराने लगी। दोनों ही समझ गई कि वह कोई महत्वपूर्ण निश्चय करके आया है।

“क्या कर आए हो ?” चित्रा ने पूछा, “बैठ तो जाओ।”

विपिन बैठ गया और बोला—“युद्ध-क्षेत्र में हमें उतरना ही होगा, यही है मेरा निश्चय। रंजन भी खूब है। चतुरता, क्षमता और बुद्धिमत्ता का अद्भुत सम्मिश्रण उसमें है।”

“क्या वह आवश्यकता से अधिक चतुर तो नहीं है ?” शिवा ने संदेह प्रकट किया।

“नहीं, बिल्कुल नहीं। तुम यों ही उस पर अविश्वास कर रही हो।” कहते-कहते विपिन ने चित्रा की ओर देखा। वह चुपचाप बैठी थी। उसके होठों पर की मुसकराहट छू-मंतर हो चुकी थी। चिन्ता-मिश्रित गम्भीरता का भीना आवरण

उसके मुख पर छाया हुआ था। विपिन ने नेत्रों द्वारा उसे तौलने तथा मौन भंग करने का विफल प्रयास किया, फिर थोड़ा मुसकराया किंचित् परिहासात्मक स्वर में कहने लगा—“अरे, तुमने तो बिल्कुल ही चुप्पी साध ली, चित्रा ! कुछ तो कहो।”

“कहूँ !” चित्रा धीमे स्वर में ऐसे बोली, मानो अपने मन से बात कर रही हो, “यही सोच रही हूँ कि क्या कहूँ। आज तुम्हारी माँ का जो रूख देखा है, उसके बाद तुम कैसे ऐसी नारी से भगड़ा करने जा रहे हो, यह समझ नहीं पा रही हूँ।”

“तो क्या तुम्हारा मतलब है, मैं उसे हरा न सकूँगा ?”

“नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है। मुझे गलत न समझो !” चित्रा के स्वर में शूल-सा चुभने वाला व्यंग एकाएक आ गया—“तुम और रंजन आज चाहो, तो सारे संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हो। उस अबला को जीतना तो तुम दोनों के लिए बच्चों का खेल भी शायद न हो। मैं यह नहीं सोच रही। मैं तो यह सोच रही हूँ कि ऐसी देवी पर विजय प्राप्त करना क्या उचित होगा। उस पर विजय प्राप्त करके क्या तुम्हारा सिर लज्जा से नहीं झुक जायगा ?”

“वह क्यों ?” विपिन ने उत्तेजित स्वर में कहा, “देवी ! यही तो उसकी चालें हैं। उपर से शहद-सी मीठी और भीतर से विष की बुभी हुई। यदि तुम कहीं उसके पास कुछ दिन रही होतीं, तब मैं तुमसे पूछता।”

“मेरा यह सौभाग्य कहाँ !” चित्रा का व्यंग और भी तीखा हो चला, “इसकी जो थोड़ी-बहुत आशा निकट भविष्य में थी, उसे तुम्हारी महत्वाकांक्षा का एक ही प्रहार चकनाचूर कर देगा।

“और उसके लिए मुझे किंचित् भी पश्चात्ताप न होगा,” विपिन के स्वर में ढिलाई थी।

“हो सकता है, आज, कल, परसों और इनसे भी कई दिन बाद तक तुम्हारी उत्तेजना और युद्ध में जूझने का तुम्हारे मस्तिष्क पर छाया हुआ उन्माद तुम्हारे ऊपर पश्चात्ताप की छाया न पड़ने दे; किन्तु जब इनका नशा उतर जायगा, तब पश्चात्ताप के दंशों से बच सकोगे, इसमें मुझे सन्देह है।”

“यह सब तुम्हारा भ्रम है। पश्चात्ताप तो तब हो, जब मैं बुरा काम करने जा रहा होऊँ। जब मैं अपनी आत्मा की पुकार द्वारा दिखाए गए रास्ते को पकड़ रहा हूँ, तब मुझे भय किस बात का ?”

“यदि कहीं तुम हार गए, तब ?”

“तब।” यह तीर निशाने पर लगा। इसका विपिन के पास कोई विशेष जवाब न था। आधा क्षण सोचने के बाद बोला—“किन्तु रंजन की राय है कि मैं हार नहीं सकता और मैं उसके साथ सहमत हूँ। यह अंधेर कैसे हो सकता है कि हम अपने करोड़पती पिता की संतान तो भूखों मरें और वह स्त्री सोने के महलों में रहे ! न्याय का इतना विद्रूप होना संभव ही नहीं। इसलिए हम अवश्य जीतेगे, तुम निश्चय रखो।”

“मनोविज्ञान पढ़ते हुए हमने यह भी पढ़ा था कि कई-एक व्यक्ति आत्म-सम्मोहन के शिकार भी हो जाते हैं। क्या तुम भी उसी के जादू से प्रेरित तो नहीं बोल रहे, यह सोच लो।”

“आत्म-सम्मोहन !” विपिन खिलखिलाकर हँसा—“अब तुम मुझे मनो-विज्ञान की शिक्षा भी दोगी। शायद तुम भूल रही हो कि मेरे अध्ययन का यही विशेष विषय है।”

“भूल नहीं रही, बल्कि तुम्हें चेतावनी देने का प्रयास कर रही हूँ कि अपने विशेष अध्ययन के विषय से ऊपर उठकर अपना पथ निश्चित करो।”

इतने में बंदे ने भोजन तैयार हो जाने की सूचना दी। चित्रा ने वाद-विवाद वहीं बन्द कर दिया। वह तुरन्त उठ खड़ी हुई और मुसकराकर मधुर स्वर में बोली—“चलो, पहले खाना खा लें, फिर बातचीत होगी।”

दोनों भाई-बहन भी उठ खड़े हुए और फिर तीनों खाने वाले कमरे की ओर चले गए।

१२

जब शाम को शिवा, चित्रा और विपिन चाय पीकर ‘डेविको’ से निकले, तो चित्रा जान-बूझकर उनके साथ घूमने न गई। वे माल की ओर चल पड़े।

और वह रिज का मैदान पार करके संजौली वाली सड़क की ओर चल दी। उसके मन में परस्पर-विरोधी भावों की एक बे-तरतीब आँधी-सी चल रही थी। उसी को वह तरतीब देना और विपिन जो गृह-कलह के काले बादल खड़े करने जा रहा था, उसे दृष्टिगत रखते हुए वह अपना कर्त्तव्य निश्चित करना चाहती थी और और चाहती थी पिछले कुछ दिनों में घटित घटनाओं का सिंहावलोकन करना। वह धीरे-धीरे चली जा रही थी।

उसे क्यों विपिन का निश्चय नहीं भाया ? आखिर वह महत्वाकांक्षा का पथ ही तो पकड़ रहा है और सांसारिक दृष्टिकोण से क्या यह ठीक नहीं कि वह अपना भविष्य सँवारे ? स्नेहलता आज यदि ठीक है, तो कल बिगड़ भी सकती है। पानी की भाँति बहते हुए धन का मद उसके मस्तिष्क में कभी भी छा सकता है। तब वह पाँव की एक ठोकर से इन दोनों भाई-बहनों को पथ का भिखारी बना सकती है। क्या स्नेहलता के प्रति उसके भाव आदर्शवाद तथा भावुकता से प्रेरित नहीं हैं ? यदि विपिन आवश्यकता में अधिक यथार्थवादी हो रहा है, तो क्या वह भी मस्तिष्क को छोड़कर हृदय की चेरी नहीं बन रही ? स्नेहलता उसके साथ अन्याय नहीं करेगी, यह उसके हृदय की ही तो आवाज़ है। तर्क की कसौटी पर तो वह पूरी नहीं उतरेगी। तो क्या उसके लिए यह उचित नहीं कि वह इस आपत्ति के समय विपिन का साथ दे ? फिर विपिन उसे कितना चाहता है ! उसे वह दिन याद आया, जब पहले-पहल उसने विपिन को देखा था तब उसके पिता विपिन को उसके लिए लगभग चुन चुके थे। चलते-चलते उस दिन का सारा दृश्य उसके नेत्रों के सामने झलक गया।

“श्यामदेवजी आए हैं, विपिन भी उसके साथ है,” उसके पिता ने, जिनके हाथ में अभी तक स्टैंथस्कोप था, माँ से आकर कहा, “उसे देखना चाहो, तो देख लो।”

चित्रा माँ के निकट ही खड़ी थी।

“कैसे आए हैं ?” माँ ने पूछा।

“उनकी तबियत जरा खराब थी। मुझसे डॉक्टरी मशविरा लेने आए थे।”

“यों तो ठीक नहीं लगता,” माँ ने थोड़ा सोचकर कहा, “तुम उन्हें खाने के लिए रोक लो।”

“खाने के लिए !” पिता ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा — “बारह तो बज चुके हैं, तैयारी हो जायगी ?”

“क्यों नहीं । तुम उन्हें रोककर मुझे सूचित कर दो ।”

पिता ने दो ही मिनट में सूचना दे दी । तब उसका हृदय किस भाँति फड़फड़ाया था और किस भाँति भगवान् से अपने हृदय के लिए उसने बल माँगा था, यही सोचते-सोचते चित्रा ने इधर-उधर देखा । थोड़ी दूरी पर सड़क के एकान्त कोने में एक बेंच पड़ी थी । वह उस पर जा बैठी । दूर तक फैली पर्वत-श्रेणी वहाँ से स्पष्ट दीख रही थी । कुछ क्षण वह उसकी ओर देखती रही, फिर अपने विचारों में उलझ गई । जब वह अपनी माँ के साथ खाने वाले कमरे में पहुँची, तो विपिन और उसके पिता पहले ही वहाँ खड़े थे । उसके पिता ने जब माँ का और उसका परिचय उनसे कराया, तो वह इतनी घबरा गई थी कि ठीक तरह से उन्हें प्रति-नमस्कार तक न कर सकी । जब खाना पूरी तरह मेज पर लग गया और एक-दो कौर खाकर पानी का एक गिलास उसने पी लिया, तब उसका जी कहीं जाकर ठिकाने लगा । उसने देखा कि विपिन ठीक उसके सामने ही उसकी माँ के साथ वाली कुर्सी पर बैठा है और कनखियों से उसका निरीक्षण कर रहा है । सिल्वर ग्रे रंग की बहुत बढ़िया फलालेन का सुन्दर सिला वह सूट पहने था । दूध-से श्वेत सिल्क की उसकी कमीज थी, जिसके कॉलर से नीली किंचित् शोख टाई भाँक रही थी । उसके काले घने बाल पीछे को कंधी किये हुए थे, जिससे उसका बड़ा मस्तक और भी अधिक विशाल बन रहा था । उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आँखें उसके गोरे रंग को अधिक महत्त्व प्रदान कर रही थीं ।

“चित्रा तो कुछ खा ही नहीं रही,” विपिन के पिता ने कहा ।

बात सचमुच ठीक थी । वह सचमुच कुछ नहीं खा रही थी । वह नेत्रों द्वारा विपिन को ही पीने में व्यस्त थी । वह लज्जित हो गई । माँ ने उसकी वकालत की—“यह कम ही खाती है ।”

“विपिन तो खाने के मामले में पीछे हटने वाला नहीं,” श्यामदेव जी ने कहा ।

अब की विपिन की लज्जित होने की बारी थी। उसका मुख कानों तक लाल हो उठा। लज्जा छिपाने के लिए उसने मुसकराकर चित्रा की ओर देखा और पानी का गिलास उठाकर पीने लगा। कितना आकर्षण, कितना जादू था विपिन की उस लज्जा-भरी मुसकान में ! यह सोचते-सोचते चित्रा को उस बेंच पर बंठे-बंठे भी रोमांच हो आया। विपिन—उसका विपिन—कितना आकर्षक है, वह आनन्द-विभोर होकर सोचने लगी।

और भोजन के उपरान्त जब सब लोग ड्राइंग-रूम में आ गए, तो उन दोनों की झिझक लगभग जा चुकी थी। उसके माता-पिता तो श्यामदेवजी से बातों में निमग्न हो गए और विपिन ने धीरे-धीरे उसे बातों में उलझा लिया। दोनों के देखे हुए सिनेमा-चित्र, पढ़ी हुई पुस्तकें, देखे हुए प्राकृतिक दृश्य आदि चर्चा का विषय बन गए। तब उसने देखा कि विपिन की रुचि सुलभी हुई, सुन्दर, पर किंचित् सनसनीखेज झुकाव लिये हुए है। साहित्य में जहाँ उसने बर्नाड शा, वेल्स, बेंनेट, गोर्की, हाडीं आदि का अध्ययन किया है, वहाँ लड़ाई-भिड़ाई के औपन्यासिक जैफरी फार्नल के प्रति भी उसका मोह स्पष्ट है। सिनेमा चित्रों में ग्रेटा गाबो, मार्लिन डाइट्रिख आदि कला की पुतलियों की कृतियाँ उसके मस्तिष्क पर जो प्रभाव छोड़ गई हैं, उससे कहीं अधिक प्रभाव टार्जन सीरीज के जंगल-चित्र उसके मन पर अंकित कर चुके हैं। टार्जन वीरता की गाथा कहते हुए उसे रोमांच हो आता था। उसके चरित्र का रूप उसे कितना भला लगा था ! उसका भविष्य में होने वाला जीवन-साथी केवल जीवन की गहराई में ही डूबना नहीं जानता, बल्कि उसकी उपरली तह में भी उसे सौंदर्य दीखता है। उसे पाकर जीवन में कितनी रोचकता आ जायगी ! उससे इधर-उधर की चर्चा छोड़कर जीवन-यात्रा कितनी सुखकर बन जायगी, इसका विपिन से बातें करते-करते ही उसे विचार आया था और मुसकान की हल्की रेखा उसके होठों पर खिंच गई थी।

“मेरा टार्जन-उत्साह देखकर मुसकराई हैं ?”

“यही समझ लीजिए।”

“मूम्मे टार्जन के चित्र भाते हैं, यह मे नहीं छिपाऊंगा। आखिर जीवन

एक लंबी दार्शनिकता ही तो नहीं, जिसमें मस्तिष्क—केवल मस्तिष्क—की ही छीछालेदर की जाय। उसमें ऐसी चीजें भी होनी चाहिए, जो मस्तिष्क के बिना भी समझी जायें। क्या आप सहमत नहीं ?”

मैं ?” वह खुलकर मुस्कराने लगी। विपिन के कहने के ढंग में कुछ इतना अद्भुत निरालापन था कि वह उस समय निस्संदेह उसके साथ सहमत हो गई—“मैं आपके साथ पूर्णतया सहमत हूँ।”

“पर आपने ऐसा चित्र कोई देखा तो नहीं।”

“एक ऐसा चित्र देखने अवश्य गई थी, किन्तु शेर की चिंघाड़ सुनकर बीच में ही छोड़ आई,” उसने हँसते हुए कहा, “पर अब ऐसा न कहूँगी।

विपिन भी हँसने लगा था। उन दोनों को इस भाँति बातचीत में व्यस्त देखकर तीनों वृद्ध जनों का मन सन्तोष और आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा था, यह उनका एक-एक हाव-भाव प्रदर्शित कर रहा था। किसने किसको जीता यह शायद वे न जान सके हों; क्योंकि इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर चित्रा भी शायद नहीं दे सकी थी। पर एक बात निश्चित थी कि जो वे चाहते थे, वह हो गया था। यह सब-कुछ सोचते-सोचते चित्रा ने उस बेंच पर बैठे-बैठे नेत्र मूंद लिए, मानो मस्तिष्क में मँडराते हुए कुछ धुंधले चित्रों को एकाग्रता द्वारा स्पष्ट करना चाहती हो। यह अभी नेत्र मूंदे ही बैठी थी कि उसके कान में एक रिक्शे का उसके पास से गुजरने का शब्द पड़ा। उसने नेत्र खोलकर मनुष्य द्वारा मनुष्य को खींचते हुए उस घृणित सवारी की ओर देखा और फिर अपने विचारों में खो गई।

जब विपिन और उसके पिता चले गए, तो उसके पिता ने माता की ओर देखा और पूछा—“अब कहो ?”

“चित्रा से पूछो !” माँ मुस्कराई।

“तो पूछो !” पिता ने सारा उत्तरदायित्व माँ पर डाल दिया।

“कहो, बेटी !”

“क्या कहूँ ?” चित्रा पर पुनः लज्जा का आवरण छा गया।

“जो चाहो, कहो !”

चित्रा ने तब कुछ जवाब न दिया । यह मुस्कराती हुई पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई ।

“तुम क्यों नहीं कहती, तुम तो कहो,” पिता ने फिर माता को सम्बोधन किया ।

“मेरी दृष्टि में विपिन लाखों में एक है ।”

पिता प्रसन्नता से खिल उठे—“मैंने तो पहले ही तुम्हें कहा था ।”

“अब तो बोलो, चित्रा !” उसकी माँ ने फिर कहा ।

चित्रा ने फिर भी कुछ नहीं कहा था । उठी थी और हँसती हुई वहाँ से खिसक गई थी ।

उस बेंच पर बैठे-बैठे चित्रा यह सब-कुछ सोच गई । तब उसे क्या करना होगा । विपिन से विमुख वह कैसे हो सकती । उसके हृदय में जो फड़फड़ाहट विपिन ने छोड़ी थी, वह कम तो नहीं हुई है । विपिन को आज भी वह उतना ही चाहती है, जितना आरंभ में । विपिन का जीवन भी चित्रा में समाया है, कोई सन्देह नहीं है । इसलिए होने वाले भगड़े में स्थान विपिन के साथ होगा, होना चाहिए । उसी के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर उसे चलना होगा । हाँ, चलना होगा । उसका अभिप्राय होगा स्नेहलता का विरोध । इतनी मधुर, इतनी विशुद्ध आत्मा की स्वामिनी, इतनी उदार दयालु, न्यायप्रिय नारी के प्रति विरोध क्या उचित होगा ? नैतिक दृष्टि से क्या क्षम्य होगा ? वह बेंच से उठ खड़ी हुई । नैतिकता, औचित्य, आदर्शवाद—यह सब ठीक, किन्तु हृदय का प्रवाह तो कोरे तर्क से रोका नहीं जा सकता । प्रेम की रोमांस की लहरों की प्रबलता तर्क की शुष्कता में कहाँ ? नहीं, उसे तो जिधर प्रेम खींचेगा, उधर ही जाना होगा । यह सोचती हुई वह धीरे-धीरे पग रखती वहाँ से अपने निवास-स्थान की ओर लौट पड़ी । चारों ओर रात्रि का नीरव ग्रंथकार छाया हुआ था । कभी-कभी चित्रा की दृष्टि दाईं ओर की पर्वत-श्रेणी पर चली जाती थी । दिन में महानता के परिचायक भीमकाय पर्वत तारों की झिलमिलाती ज्योति में दैत्याकार-से दीखते थे, मानो मुँह बाएँ किसी को निगल जाने के लिए उद्यत खड़े हों । इससे चित्रा की कल्पना उससे खेल

खेलने लगती और किंचित् भय से उसकी गति तीव्र हो जाती थी। माल रोड के प्रखर प्रकाश में पहुँचने के लिए उसके पग उतावली से उठने लगते थे। जब कुछ काल के अनंतर वह पुनः रिज के मैदान को पार करके माल पर पहुँची, तो उसकी जान में जान आई।

१३

और उधर विपिन ने सारी रात लगभग जगकर काटी। अगले दिन प्रातःकाल उसे माँ का बुलावा आ पहुँचेगा और वह उसके अन्तिम निर्णय की बात छोड़ेगी। वह क्या कहे, कैसे कहे, उसकी समझ में कुछ न आता था। क्या वह उस अद्भुत नारी के नेत्रों के निरीक्षण में कुछ कर भी सकेगा अथवा नहीं ? किन्तु जब युद्ध का रास्ता ही उसने चुन लिया, तो फिर बात छिपाने से तो काम न चलेगा। उसे सब-कुछ खुलकर कहना होगा, करना होगा। उसकी स्पष्टता का फल क्या होगा ? सबसे प्रथम तो उसकी मासिक आय बन्द होगी, फिर उसे उस घर को छोड़कर कहीं और ठिकाना करना होगा। क्या यह उसरो हो सकेगा ? क्या शिवा यह सहन कर सकेगी ? यदि वे घर छोड़ने से इन्कार कर दें, तो क्या स्नेहलता कान पकड़कर उन्हें घर से निकाल देगी ? इतना साहस वह कर सकेगी ? साहस ! साहस की कमी तो उसकी राह को रोक नहीं सकेगी। हाँ, उसके मन में दया आ जाय, तो दूसरी बात है। यदि यह सब-कुछ वह कर दे, तो वे कहाँ जायँगे ? विपिन एक-एक करके सब मित्रों और बन्धुओं के विषय में सोचने लगा और आखिर इस निर्णय पर पहुँचा कि उनमें से कोई भी उन्हें अपने पास टिका न सकेगा। उन भाई-बहन के लिए सड़क का किनारा और वृक्ष की छाया ही सहारा रह जायँगे। तब ? उसे तो इस बात की भी चिन्ता नहीं है, किन्तु शिवा का सुख-दुःख भी तो उसे सोचना होगा। नहीं, स्पष्टवादिता तो उन्हें कहीं भी न ले पहुँचेगी। उसे अदृश्य किंचित् बल, थोड़ी कूटनीति का सहारा लेना होगा। यदि वह कल यह कह दे कि वह माँ की दरखास्त के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करेगा, तो इस दिशा में उसका पथ सदा के लिए रुक जायगा।

वह चाहे तो फिर भी उस दरखास्त का विरोध कर सकता है। और बीच में उसे रुपया आदि इकट्ठा करने का, पूरी तैयारी करने का समय भी मिल सकता है। रुपये के बिना तो केस लड़ा न जा सकेगा। पर रुपया आयागा कहाँ से? हो सकता है, माँ से ही झूठी-सच्ची बातें बनाने से रुपया मिल जाय। तब यही ठीक रहेगा। यह सोचते-सोचते विपिन का मन कुछ ठिकाने लगा। इसी ढंग से वह कल प्रातःकाल माँ से बातचीत करेगा, यह निश्चित कर लेने के अनन्तर उसे टूटी-फूटी नींद आ गई।

प्रातःकाल जब वह सोकर उठा, तो उसका मन काफी हल्का था। वह झटपट तैयार हो गया और शिवा के कमरे में जा पहुँचा। शिवा भी लगभग तैयार थी।

“अब कहो, कौन बात करेंगे?” बहन ने पूछा।

विपिन मुसकराया—“चलो, तुम भी साथ चलो।”

“क्या माँ ने बुला भेजा है?”

“नहीं। पर बुलाने तक रुकने की भी क्या आवश्यकता है? हम स्वयं ही चल सकते हैं। चलोगी?”

“क्यों नहीं।”

“बहुत अच्छा, पर एक बात तुम्हें करनी होगी।”

“वह क्या?”

“तुम्हें मौन धारण करके बैठना होगा। बैठ सकोगी?”

“हाँ। पर यह पाबन्दी क्यों?”

“वहाँ चलने पर पता चल जायगा,” विपिन मुसकराया।

“तो चलिए!”

दोनों भाई-बहन जब स्नेहलता के कमरे में पहुँचे, तो वह अपने पूजा-पाठ से निवृत्त चुकी थी और आराम-कुर्सी पर बैठी एक पुस्तक के पृष्ठ उलट रही थी। उसने मुसकराकर दोनों का स्वागत किया और सामने पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठने का संकेत किया।

“माँ जी”, विपिन ने बिना प्रश्न की प्रतीक्षा किये कहना आरम्भ कर

दिया, “आपने परसों मुझसे जो प्रश्न पूछा था, उसका उत्तर देने के लिए आया हूँ।”

“हाँ कहो, बेटा !”

“मेने यह निश्चय किया है कि आपकी दरखास्त का विरोध न करूँगा।”

“धन्यवाद। मुझे यही तुमसे आशा थी।”

“और माँ जी, एक प्रार्थना करने चला हूँ, उसका उल्टा अर्थ न लगा लेना।”

“मुनू तो !” स्नेहलता का स्वर मधुर था।

“इधर तो मेरे लिए कोई काम नहीं रहा। खाली बेंठे बेंठे तंग न आ जाऊँ, इसलिए कुछ काम करना चाहता हूँ।”

“क्या ?”

“मैं एक पत्र निकालने की बात सोच रहा था; पर उसके लिए धन चाहिए।”

“कितना ?”

“कम-से-कम बीस हजार। क्या आप दे सकेंगी ?”

“बीस हजार,” लता मुसकराई, “कल सुबह तक बताऊँगी।”

“बहुत अच्छा,” विपिन मधु से ओत-प्रोत स्वर में कहने लगा, “यदि आप कृपा करके यह कर सकें, तो इसका सदा गुण मानूँगा। मेरा एक स्वप्न सिद्ध हो जायगा।”

यह कहते-कहते वह उठ खड़ा हुआ और बहन को भी उठने का संकेत किया। फिर दोनों ने माँ को नम्रतापूर्वक नमस्कार किया और कमरे से बाहर चले गए। बाहर निकलने पर शिवा आश्चर्य-चकित थी और विपिन मंद-मंद मुसकरा रहा था।

उनके चले जाने के लगभग आध घंटा तक लता ज्यों-की-त्यों आँखें मूंदे अपनी कुर्सी पर पड़ी रही। उसके अनन्तर उसने नौकर को बुलाया।

“क्या विपिन और शिवा ने नाशता कर लिया है ?”

“हाँ, वे तो बाहर भी चले गए।”

“बहुत अच्छा !” उसने नौकर को जाने का संकेत किया ।

नौकर के चले जाने के अनंतर कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखा । अभी दस नहीं बजे थे । वह उठी, धीरे-धीरे पग रखती हुई टेलीफोन वाले कमरे में गई और अपने वकील को टेलीफोन किया । वह सौभाग्य से उसे मिल भी गया ।

“मैं अभी कचहरी जा ही रहा था । आज्ञा कीजिए ?”

“आप कल दरखास्त दे दीजिए ।”

“बहुत अच्छा !” वकील ने कहा और पूछा, “क्या विपिन बाबू रास्ते पर आ गए ?”

“कहते तो यही हैं, पर कौन जाने । हाँ, एक बात और ।”

“कहिए ?”

“विपिन एक पत्र निकालना चाहता है और मुझसे बीस हजार रुपया माँगता है । क्या दे दूँ ?”

“आपने क्या निश्चय किया है ?”

“मैंने,” स्नेहलता मुस्कराई, “उसे यह रुपया दे देने का निश्चय किया है ।”

“दे, देने का ?” वकील के आश्चर्य ने मानो तार को भी कँपा दिया—
“इसके पीछे जो खतरा है, वह आपने समझ लिया है ?”

“यही न कि रुपये के द्वारा मैं उसे अपने विरुद्ध लड़ने का प्रलोभन दे रही हूँ ।” स्नेहलता का स्वर शान्त था ।

“हाँ !”

“इसकी संभावना मुझसे छिपी नहीं है; पर यह रुपया शायद उसके दृष्टिकोण को बदल दे और मैं पुनः उसे पुत्र के रूप में पा लूँ, यह भी तो संभव है । आखिर मैंने उसे पाला-पोसा है । यदि हो सके, तो उसे गँवाना नहीं चाहूँगी ।”

“यह तो ठीक है, किन्तु ...” वकील रुका ।

सा होना असंभव है ? क्या रुपया पाकर वह मुकदमा लड़ेगा,

अथवा मेरे निकट आ जायगा, इन दोनों बातों का पलड़ा बराबर नहीं ?”

वकील थोड़ा रुका, मानो कुछ सोच रहा हो—“असंभव भी मैं नहीं कहता और यह भी मैं मानने को तैयार हूँ कि शायद यह रुपया उसे आपके निकट ले आय। पर यदि ऐसा न हुआ, तो वह आपसे इतनी दूर चला जायगा कि फिर आप उसे पा न सकेंगे।”

“जानती हूँ, पर मुझे यह परीक्षण करना ही होगा।”

“बहुत अच्छा,” वकील का स्वर प्रशंसा से ओत प्रोत था, “मैं तो कोरा थोड़ा व्यवहार-कुशल आदमी हूँ। आपके नैतिक स्तर तक मैं नहीं पहुँच सकता।”

“धन्यवाद, इस विषय में आपसे बात कर लेना मैंने आवश्यक समझा था। नमस्कार !”

लता ने रिसीवर रख दिया और पुनः अपने कमरे में लौट गई। अपनी कुर्सी पर बैठकर वह सोच में डूब गई। अपने निश्चय में अदल-बदल करने की बात वह नहीं सोच रही थी। जो निश्चय वह कर चुकी थी, वह अकाट्य था। उसके सोच का विषय यह था कि क्या जो परीक्षण वह करने जा रही है, वह सफल रहेगा अथवा असफल ? यदि आज से कुछ मास पहले वाला विपिन होता, तो इस परीक्षण द्वारा अवश्य उसे वह पुनः पा लेती, किन्तु अब ? क्या विपिन का हृदय उसके प्रति इतना कठोर हो चुका है कि यह असाधारण स्नेहजनक व्यवहार भी उसे पिघला न सकेगा ? आखिर वह उसकी न सही, उसके पति की तो सन्तान है। क्या उसके पति के हृदय में मानवता के प्रति जो कोमलता सदैव भरी रहती थी, उसका कुछ अंश भी विपिन के हृदय में नहीं है ? यदि है, तो क्या वह कोमलता अपनी माँ के प्रति प्रदर्शित न कर सकेगा ? किन्तु कौन जाने ! मानव-हृदय इतना जटिल है कि कभी-कभी उसका पार पाना दुष्कर हो जाता है। खैर, यह तो कुछ ही दिनों में पता चल जायगा कि उसके कार्य का फल किस करवट बैठता है। यदि सीधा बैठा, तो ठीक; पर यदि उल्टा पड़ गया, तब ? उसने एक दीर्घ निश्वास लिया। तब गृह-कलह से काले मेघ उमड़-धुमड़कर इस घर पर छा जायेंगे !

फिर भगवान् जाने, कौन सी राशि का सूर्य उनको छिन्न-भिन्न कर पायगा और उसके प्रकाश से यथार्थता में कौन प्रकाशमान हागा !

वह इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि रोहित की आवाज उसे सुनाई दी । वह स्कूल से लौट आया है, उसने सोचा और उसके खाने-पीने का आयोजन करने के लिए उठने का उपक्रम करने लगी । इतने में उसने तेजी से कमरे में प्रवेश किया । लता मुसकराई ।

“ममी, आज मैं रैसिडेशन में फर्स्ट आया हूँ, फर्स्ट !”

“बहुत खूब । कौन सी पोयम तुमने सुनाई थी ?” माँ ने प्यार से पूछा ।

“ब्वाय स्टुड ऑन दि बनिंग डेक । जब मैंने उसकी अन्तिम पंक्तियाँ समाप्त कीं, तो मिस के नेत्रों में आँसू आ गए ।”

“अवश्य आ गए होंगे । उस नन्हें बालक के प्रति किसका हृदय द्रवित नहीं होगा, जिसने कर्तव्य-पालन करते हुए अपना जीवन ही गँवा दिया ।” लता ने ध्यान पूर्वक अपने पुत्र की ओर देखा — “बेटा, क्या तुम भी उसी लड़के-जैसे वीर बनोगे और अपने कर्तव्य का पालन करोगे ?”

“अवश्य, ममी ! उस बंचारे को आग से कितनी पीड़ा हुई होगी ।”

“हाँ, किन्तु आग में तपे बगैर सोना भी तो अपना यथार्थ रूप नहीं पाता,” वह ऐसे कहने लगी, मानो रोहित से नहीं, बल्कि अपने-आपसे बात कर रही हो, “मनुष्यत्व के यथार्थ रूप को प्राप्त करने के लिए हमें धधकती हुई ज्वालाओं के बीच में से होकर तो जाना होगा ।”

रोहित ने जरा आश्चर्य से माँ की ओर देखा, जैसे कुछ समझा नहीं—“वह कैसे, ममी ?”

“कैसे, यह फिर समझाऊँगी । अब चलो, तुम्हारे खाने-पीने का प्रबन्ध करूँ ।”

लता ने उठकर रोहित का हाथ पकड़ लिया और नौकर को आवाज देती हुई उसे कमरे से बाहर की ओर ले चली ।

१४

उसी रात सोने से पहले शिवा और विपिन ने जो चर्चा छेड़ रखी थी, उसका विषय भी वही था, जो स्नेहलता के चिन्तन का था। क्या स्नेहलता विपिन की प्रार्थना पर ध्यान देगी, और यदि हाँ, तो कहाँ तक ? हो सकता है, वह कुछ रुपया विपिन को दे देने के लिए मान जाय, किन्तु पूरा बीस हजार रुपया क्या वह दे देगी ?

“तुम्हारा क्या विचार है ?” भाई ने वहन से कोई बीसवीं बार पूछा।

“मेरा विचार है”, शिवा ने बीसवीं बार पुनः सोच में डूबकर वही उत्तर दिया, जो उन्नीस बार दे चुकी थी—“यह रुपया हमें मिल जाना असंभव नहीं।”

“क्या वह यह नहीं सोच सकती,” विपिन अपनी आवाज को धीमी करता हुआ बोला, “कि उसके दृष्टिकोण से मैं इस रुपये का दुरुपयोग भी कर सकता हूँ।”

“क्यों नहीं, किन्तु उनके मस्तिष्क में और कौन से विचार मँडरा रहे हैं, यह कौन कह सकता है ? उनका दृष्टिकोण मौलिक तथा निराला होता है, यह तो मानना ही होगा। और कौन सा दृष्टिकोण प्रबलता प्राप्त कर लेगा, यह कहना भी तो संभव नहीं।”

“यह है तो ठीक, किन्तु बीस हजार रुपया भी तो कम नहीं।”

“कम और अधिक की गणना, जहाँ तक मैं समझती हूँ, उनके निश्चय को प्रभावित न कर सकेगी।”

“क्यों ?” विपिन ने फिर शंका उठाई।

“क्यों, इसका सीधा सा कारण तो मैं नहीं बता सकती ; किन्तु उनके अति निकट रहने के कारण और उन्हीं की जाति की होने के कारण उनके मन में उठने वाले भावों की कुछ-कुछ कल्पना मैं अवश्य कर सकती हूँ। खर, यदि उन्होंने रुपया दे दिया, तब ?”

“तब मुझे अपनी सूझ पर गर्व होगा और अपने मस्तिष्क के प्रति एक

नया मान जागृत होगा।” विपिन सुसकराया।

शिवा के होठों पर भी मुसकान की एक रेखा खिंच गई “श्रातःकाल सारी स्थिति स्पष्ट हो जायगी।”

“यह तो ठीक, पर तब तक प्रतीक्षा करनी भी तो कठिन है।”

“सो तो करनी ही होगी। लो, मैं अब चलती हूँ, शायद नींद आ जाय।”

शिवा चली गई। विपिन किन्तु ज्यों-का-त्यों वैठा रहा और रात तक अपने विचारों को उधेड़ता-बुनता रहा। आखिर आधी रात बीत जाने के बाद जब वह थक गया, तो चारपाई का सहारा लिया। रात-भर वह भली भाँति सो न सका, इसलिए पौ फटते ही चारपाई से उठकर बैठ गया। कुछ ही देर के बाद शिवा भी मुख पर झूठी हँसी धारण किन्ने हुए आ पहुँची। विपिन को बैठे हुए देखकर उसका साहस बँधा। वह बोली—“काफ़ी देर से जग रही थी, किन्तु इस भय से कि कहीं तुम्हारी नींद न खराब कर दूँ, आने का साहस न कर पाती थी।”

“नींद,” विपिन व्यंग-भरे स्वर में बोला, “वह आई ही किसे है?”

सामने अँगोठी पर पड़ी एक टाइमपीस टिक-टिक कर रही थी। दोनों की दृष्टि उस पर गई। अभी कठिनता से साँस बज्जे थे। कौन जाने, कब उनकी माँ का बुलावा आयगा। तब तक अभी और प्रतीक्षा करनी होगी। विपिन का उस दिन बिना बुलाए जाना उचित नहीं होगा। इतने में नौकर ने तेज़ी से प्रवेश किया।

“माँ जी आ रही हैं।” नौकर ने कहा और पास वाले दरवाज़े से उतावली से बाहर निकल गया।

“माँ जी !” दोनों के मुख से आश्चर्य-वर्कित स्वर में एक साथ निकला।

इससे पहले कि वे और कुछ कहें या करें, स्नेहलता उनके कमरे में थी। उसके हाथ में एक चेक था। वह विपिन के पलंग के एक कोने में बैठती हुई एक मोठी झिड़की के साथ बोली—“अभी तक सो रहे हो। पत्र निकालने पर यदि यही हालत रही, तो चल चुका वह।”

“तो पत्र निकालने की आप आज्ञा देती हैं?” विपिन ने धड़कते

दिल से पूछा ।

“क्यों नहीं । यह लो बीस हजार का चेक ।” स्नेहलता ने चेक विपिन की ओर बढ़ा दिया ।

“माँ जी !” विपिन ने ऐसे कहा, मानो उसका एक-एक रोम आनन्द से पुलकित हो उठा हो ।

“माँ जी, आप कितनी महान् हे !” शिवा ने ऐसे कहा, मानो उसका एक-एक रोम माँ के प्रति प्रशंसा से पुलकित हो ।

स्नेहलता मुसकराई—“इन बातों को छोड़ो । बाल-बच्चों पर व्यय करने से महानता यदि आ सकती, तो आज संसार में महान् व्यक्तियों का एक प्रवाह-सा बह रहा होता । महानता बहुत दूर की चीज है । खैर, पर एक बात चाहूँगी, बेटा !”

“क्या माँ जी ?” मान-भरे स्वर में विपिन ने पूछा ।

“जब तुम अपने पत्र की योजना पूर्ण रूप से बना लो, तो एक बार मुझे बता देना ।”

“अवश्य बताऊँगा, माँ जी ! यदि कहीं भूल होगी, तो आपसे उसे सुधार देने की भी प्रार्थना करूँगा ।”

“मैं भूल-सुधार के हेतु यह नहीं कह रही, बल्कि इसलिए कह रही हूँ कि वह योजना देखकर मुझे संतोष होगा ।”

स्नेहलता उठ खड़ी हुई और उसके साथ ही शिवा भी उठ खड़ी हुई । विपिन भी उठने का उपक्रम करने लगा ।

“नहीं, तुम बैठो, बेटा !” स्नेहलता ने दुलार से कहा और धीरे-धीरे पग रखती हुई बाहर चली गई ।

“अब कहो ।” स्नेहलता के बाहर निकलते ही शिवा ने भाई से कहा । उसका स्वर उपकार के भार से प्रभावित था ।

“क्या कहूँ ?” विपिन का स्वर भी कोमलता लिये हुए था - “यह हमारी माँ निस्संदेह एक महान् नारी है, मैं मानता हूँ, किन्तु……”

“किन्तु क्या ?”

“यही कि मैं अपने निश्चय से पीछे न हट सकूंगा।”

“भैया, तुम गलत पथ पकड़ रहे हो। सँभल जाओ। मैं अभी चित्रा जीजी को टेलीफोन करूँगी।” कहते-कहते वह दरवाजे की ओर बढ़ी।

“सुनो तो !” विपिन के स्वर में चिन्ता थी, पर शिवा बिना सुने ही भागती हुई टेलीफोन वाले कमरे में चली गई।

उधर चित्रा अभी तरु पलंग सँभाले थी। यह सूचना मिलने पर कि उसके लिए एक बहुत जरूरी टेलीफोन है, वह भटपट उठी, ड्रेसिंग-गाउन पहना और टेलीफोन की ओर लपकी।

“कहो शिवा, क्या बात है ?” उसने शिवा की आवाज़ पहचानकर चिन्ता-भरे स्वर में पूछा।

“जीजी, तुम्हें अभी यहाँ आना होगा भैया को ठीक करने।” उसका स्वर उत्तेजित था।

“क्यों, क्या हुआ है ?”

“यहाँ आने पर ही सब-कुछ बताऊँगी। आओगी न, जीजी ?”

“आऊँगी तो सही, पर कुछ आभास तो दो कि मामला क्या है।”

“मामला यह है कि माँ से भैया ने बीस हजार रुपया माँगा था, जो उन्होंने दे दिया ; किन्तु भैया इसका ठीक उपयोग नहीं करना चाहते।”

“बीस हजार रुपया ! मैं कुछ समझी नहीं।” चित्रा के स्वर में उत्सुकता थी।

“टेलीफोन पर मैं इससे अधिक न समझा सकूँगी,” शिवा की उत्तेजना बढ़ चली थी — “कब आओगी, जीजी ?”

“मैं अभी आ रही हूँ। मैं तैयारी करने भाग चली।”

“बहुत अच्छा। धन्यवाद और जीजी ..” किन्तु इससे पहले कनेक्शन तोड़कर चित्रा जा चुकी थी। शिवा ने भी रिसीवर रख दिया और अपने भाई के कमरे में लौट गई।

“क्या कर आई हो ? इतनी उतावली ठीक नहीं होती।” अपने मन की चिन्ता छिपाते हुए विपिन ने कहा।

“अभी जीजी आ रही है। मैं किसी गैर को बुलाने तो नहीं गई थी।” शिवा का स्वर अभी तक उत्तेजित था।

“चित्रा यहाँ आ रही है ? तुम यहाँ क्या अद्भुत दृश्य उपस्थित करने जा रही हो ? क्या यह भूल गई हो कि माँ भी इसी छत के नीचे रह रही है ?” विपिन का स्वर प्रार्थनात्मक था।

“भूली मैं कुछ नहीं। मैं जानती हूँ, माँ भी यहीं रहती है। और चूँकि मुझे यह विश्वास है कि चित्रा जीजी मेरे साथ सहमत होंगी और तब तुम भी विमुख नहीं हो सकते, इसीलिए उन्हें यहाँ बुलाया है।”

“और यदि यह सब-कुछ होते हुए भी मैं विमुख हो जाऊँ, तो ?” विपिन का स्वर संदिग्ध था।

“फिर देखा जायगा। मुझे खेद तो न होगा।”

“खैर, जो-कुछ हो गया, सो हो गया; पर जब तक मैं तुम्हारे साथ सहमत न हो सकूँ, तब तक क्या इस मामले पर इस घर के भीतर विचार करना उचित होगा ?”

“उचित ?”

“हाँ। देखो शिवा, इस बात पर ज़िद न करना। तुरंत तैयार हो जाओ, ताकि हम चित्रा को रास्ते में ही पकड़ सकें। सारी बात किसी रेस्तराँ में तय कर लेंगे।”

शिवा कुछ देर चुप रही। कुछ सोचती रही। फिर बोली - “बहुत। अच्छा। मैं अभी आई।”

वह बाहर चली गई। विपिन भी तैयारी में लग गया। और उधर सेसिल-होटल में चित्रा भी इसी ओर अग्रसर थी। बीस हजार रुपया ! माँ से माँगा था, उसने दे दिया। यह रहस्य क्या है ? इसे सुलझाने की उत्सुकता से चित्रा उतावली से प्रत्येक काम से निपट रही थी। उसकी उत्सुकता उसे यहाँ तक अंकुश दे रही थी कि भूख होते हुए भी उसने नाश्ता नहीं किया। विपिन के घर ही अपना व्रत तोड़ लेगी, यही सोचती हुई वह होटल से बाहर निकली और बस लेने के लिए सीधी कार्ट रोड की ओर भागी।

बस उसे विपिन और शिवा की कोठी के निकट कुछ ही मिनटों में ले पहुँची। उसमें से निकलकर जब उसने उनके घर की ओर मुँह मोड़ा, तो वे दोनों भाई-बहन उसी की ओर चले आ रहे थे।

“तुम दोनों किधर चल पड़े ?” उसने आश्चर्य से पूछा।

“तुम्हारे स्वागत में घर से निकले थे।”

“मेरे स्वागत में ?”

“हाँ,” विपिन ने गंभीर स्वर में कहा, “जिस विषय पर बातचीत करने के लिए शिवा ने तुम्हें बुलाया है, वह घर पर नहीं हो सकती। कहीं एकांत में बैठकर ही उस पर विचार करना ठीक होगा। तुमने अभी तक खाया-पिया तो कुछ न होगा ?”

“नहीं।”

“तो चलो, किसी रेस्तराँ के एकांत कोने में चलकर बैठते हैं।”

“चलो।” चित्रा ने अनुमति दी।

१५

एक कम प्रसिद्ध, किन्तु अच्छी खाद्य-सागरी प्रस्तुत करने वाले रेस्तराँ में वे पहुँचे। बड़े हॉल के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे कमरे भी थे, जहाँ पूरी तरह एकांत उन्हें प्राप्त हो सकता था। ऐसे ही एक कमरे में वे तीनों जा बैठे। बेरा को आर्डर देकर विपिन ने चित्रा की ओर देखा।

“मैं अब सब-कुछ सुनना चाहूँगी,” चित्रा ने कहा।

“बात यह है, जीजी !” शिवा ने उलावली से आरंभ किया, किन्तु विपिन ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। संकेत द्वारा उसे वहीं बन्द कर दिया।

“बात जो-कुछ है, मैं अभी स्पष्ट करता हूँ,” वह एक-एक शब्द पर जोर देता हुआ कहने लगा, “यह तो तुम मानोगी चित्रा, कि हम दोनों भाई-बहन के पास रुपया नहीं है और मुकदमा लड़ने के लिए उसकी आवश्यकता है। इसलिए मैंने बहुत सोच-विचार के बाद यह निश्चय किया कि आरम्भ में ही हमें माँ के विरुद्ध नहीं खड़ा होना चाहिए। इसलिए मैंने थोड़ी कूटनीति

को काम में लाना उचित समझा ।”

“कैसे ?”

“मैंने सोचा कि माँ को कह दूँ कि मैं उनकी दरखास्त में बाधा नहीं दूँगा और साथ ही कुछ रुपया भी माँगकर देख लूँ ।”

“तब ?”

“मैंने कल उनसे जाकर यह बात कह दी और साथ ही यह भी कहा कि मैं एक पत्र निकालना चाहता हूँ और उसके लिए बीस हजार की आवश्यकता होगी । माँ यह सब-कुछ सुनकर प्रसन्न हुई और रुपये के विषय में अपना फैसला आज तक स्थगित कर दिया ।”

“और आज प्रातः भैया अभी बिस्तर पर थे,” शिवा अब चुप न रह सकी, उत्तेजना-भरे स्वर में कहने लगी, “उन्होंने बीस हजार का चेक लाकर इनके हाथ में ऐसे पकड़ा दिया, मानो कागज का टुकड़ा हो ! अब तुम्हीं बताओ, जीजी, क्या इसके बाद भैया के लिए माँ से झगड़ा करना शोभा देता है ?”

“शोभा ?” विपिन होठों को बल देकर मुसकराया, “जीवन के काम सदा सौंदर्य की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते । शोभा को इस मामले में घुसेड़ना भावुकता का शिकार होना है ।”

चित्रा, जो अभी तक चुप थी, शान्त स्वर में बोली—“सौंदर्य को सर्वत्र ढूँढ़ना भावुकता है मैं मानती हूँ ; किन्तु उपकार का उत्तर अनुपकार से देना क्या इतना कुरूप, इतना गंदा नहीं कि मानव द्वारा बताई हुई किसी भी कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता ?”

“तुम इसे उपकार समझती हो, किन्तु मेरा दृष्टिकोण भिन्न है । मैं समझता हूँ, इस रुपये पर मेरा अधिकार है ; क्योंकि यह मेरे पिता की कमाई का अंश है । यह रुपया देकर माँ ने हमारे ऊपर रत्ती-भर भी अहसान नहीं किया ।”

“यदि यह बात है, तो क्या तुम आज जबरदस्ती इस सारी जायदाद को हथिया सकते हो ? क्या ऐसा करने से तुम पर फौजदारी मामला नहीं चल सकता ?”

“वह दूसरी बात है ।”

“दूसरी नहीं । माना कि यह जाधवाद तुम्हारे पिता की कमाई हुई है, किन्तु स्नेहलता जी के पति भी तो वे थे । इसलिए उस धन-राशि पर उनका अधिकार भी तो है । और सच पूछो, तो जब तक तुम उस वसीयत को न तुड़वा सको, तो जो-कुछ वे तुम्हें देंगी, वह उसकी उदारता, विशाल हृदयता तथा उपकार का ही परिचायक होगा ।”

“यही मैंने भैया से कहा था,” शिवा फिर बीच में बोल उठी, “और यह मानते हुए कि माँ का यह कार्य महान् है, वे अपने उल्टे पड़े पग सीधी राह पर नहीं लाना चाहते ।”

“तो तुम यह मानते हो कि माँ का कार्य महान् है ?” चित्रा ने विपिन को नेत्रों से चीरते हुए पूछा ।

“हाँ !” विपिन ने स्वीकार किया ।

“क्यों ?”

“इसलिए...” विपिन थोड़ा असमंजस में पड़ गया ।

“इसलिए,” चित्रा ने मुसकराकर विजय-भरे स्वर में कहा, “कि बीस हजार की बड़ी रकम उन्होंने ऐसे व्यक्ति के हाथ सौंप दी है, जो उनके जीवन को कटुतम बनाने में प्रयत्नशील है । और यह कार्य उन्होंने भय से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि स्वाधीनता पूर्वक किया है । यदि उनके ऊपर कोई दबाव था, तो मैं समझती हूँ, वह था स्नेह का दबाव, तुम दोनों को पालने-पोसने की लाज ।”

विपिन लगभग निरन्तर-सा हो गया, किन्तु उसने ढिठाई न छोड़ी—“तुम सारे मामले को सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण से देख रही हो ।”

चित्रा ने किन्तु उसकी परवाह न की—“और सुनो, परसों मैंने यह निश्चय किया था कि माँ-पुत्र के गृह-कलह में मैं तुम्हारा साथ दूँगी ।”

“सचमुच !” विपिन का स्वर आनन्द से भर गया ।

“हाँ, क्योंकि उस दिन तुम्हारा कार्य मुझे स्वत्व-रक्षा तथा महत्वाकांक्षा द्वारा प्रेरित दिखा था । मुझे अपने निश्चय पर संतोष न था ; क्योंकि स्नेहलता

का जो रूप मेरे मन पर अंकित था, उसके प्रति वह अन्याय था ।”

“और आज ?” शिवा ने उत्सुकता से पूछा ।

“आज मेरे सब भ्रम दूर हो गए हैं । मैंने स्नेहलता के प्रति जो घोर अन्याय किया था, आज उसका प्रायश्चित्त मुझे करना होगा ।”

“सो कैसे ?” विपिन ने जरा डरते-डरते पूछा ।

“तुम्हें इस गृह-कलह के पथ से हट जाने के लिए मजबूर करके,” चित्रा किंचित् उत्तेजित हो उठी, “विपिन, मैं तुम्हें चाहती हूँ—इतना चाहती हूँ, जितना मैंने किसी को नहीं चाहा । किन्तु यदि तुम माँ से लड़ना चाहोगे, तो तुम और मैं भिन्न पथों के पथिक हो जायेंगे । इसलिए अपने भविष्य का कार्यक्रम भली भाँति निश्चित कर लो । एक शोर है तुम्हारा धनकुबेर बनने का स्वप्न और दूसरी शोर हूँ मैं । चुनो, किसे चुनते हो ?”

विपिन हक्का-बक्का रह गया । धनकुबेर भी वह अवश्य बनना चाहता था और चित्रा को भी छोड़ना उसके लिए संभव न था । वह करे, तो क्या करे ? और तुरन्त निश्चय माँगा जा रहा था । उसने चित्रा की ओर ऐसे देखा, मानो पहली बार निरीक्षण कर रहा हो । चित्रा का मुख गंभीर था । मस्तक पर चिन्तन के बल पड़े हुए थे । बाल किंचित् बिखर-से रहे थे । होठों पर एक अनूठा सौंदर्य खेल रहा था और नेत्रों में था उत्तेजना द्वारा उत्पन्न किया हुआ एक अद्भुत आकर्षण । उन नेत्रों ने उसे पूर्णरूपेण बाँध लिया । वह मुसकराया और बोला—“तुम्हें !”

“धन्यवाद,” चित्रा के स्वर में अर्द्धछिपी विजय का आभास था—“मैं यह जानती थी और यह भी जानती हूँ कि तुम्हारा यह निश्चय निकट भविष्य में उगमगायगा भी ।”

“वह कैसे ?”

“पर एक बात मैं चाहूँगी कि तुम भलीभाँति हृदयंगम कर लो । वह यह कि यदि तुमने अभी छोड़ा हुआ पथ पुनः पकड़ लिया, तो तुम मुझे खो दोगे; क्योंकि तब मेरे हृदय में अंकित मूर्ति का रूप विकृत हो जायगा और उसके अनन्तर कोई भी शक्ति उसका पुनश्चकार करने में समर्थ न हो सकेगी ।”

“इसकी तुम चिन्ता न करो ।” विपिन के स्वर में सचाई थी ।

इतने में बैरा खाने-पीने की सामग्री ले आया, जिससे बातचीत का सिल-सिला टूट गया । वे सब खाने-पीने में व्यस्त हो गए ।

जब वे चाय पीकर वहाँ से निकले, तो शिवा और चित्रा का मन तो शान्त था; किन्तु विपिन के हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी । क्या जो वादा वह चित्रा से कर आया है, उसे पूरा कर सकेगा ? उसकी महत्वाकांक्षा क्या फिर सिर नहीं उठायगी ? उसके हृदय में अपनी माँ के प्रति जो अविश्वास का विषेला अंकुर जम चुका है, क्या वह फूट नहीं निकलेगा ? सड़क पर उनके दोनों ओर नारी और पुरुष बढ़िया-ले-बढ़िया वस्त्रों में सुसज्जित स्वप्रदर्शन के लिए लालायित टहल रहे थे; किन्तु विपिन उनसे बिल्कुल बेखबर अपनी राह नापता और विचारों में डूबा हुआ सिर झुकाए अपने दोनों साथियों के पाँव-से-पाँव मिलाए चला जा रहा था । क्या जो-कुछ-अभी-अभी उस पेय-गृह में निश्चित हुआ था, उससे उसकी जीवन-यात्रा सरल होगी या और भी अधिक उलझ जायगी ? उसने एक निःश्वास दबाते हुए अपने इधर-उधर देखा । पर अब सोचने से क्या लाभ ? निश्चय तो वह कर ही आया था । उसे तो अब निभाना ही होगा, नहीं तो चित्रा उसे कहीं का न छोड़ेगी । इतने में सहसा उसके कान में चित्रा का स्वर पड़ा ।

“मुझे तो अब आज्ञा दो !”

विपिन ने मानो स्वप्न से जागकर कहा—“क्या थोड़ा घूमने चलोगी ?”

“नहीं, मुझे एक जगह जरूरी पहुँचना है ।”

“फिर कब मिलोगी ?”

“कल मैं तुम्हें टेलीफोन करूँगी । लो अब नमस्कार !”

दोनों भाई-बहन ने उसे प्रतिनमस्कार किया । वह कार्ट रोड पर जाने वाले एक रास्ते से नीचे को चल दी और वे दोनों मुख्य माल रोड पर टहलने लगे ।

“आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।” शिवा ने कहा ।

“अच्छा !” विपिन ने अन्वयमनस्क स्वर में उत्तर दिया ।

“और तुम !”

“मैं ?”—विपिन कुछ देर मौन रहा, फिर कहता चला गया, “यह निश्चय नहीं कर पाया कि प्रसन्न हूँ अथवा अप्रसन्न ।”

शिवा चौंकी । ध्यान से भाई की ओर देखा—“तो चित्रा से यों ही वादा कर आए हो ?”

“मैंने वादा तोड़ने की बात तो नहीं कही । किन्तु यह कैसे कह दूँ कि जो-कुछ हुआ, उससे सन्तुष्ट हूँ ।”

“तो क्या असन्तुष्ट हो ?”

“यह भी निश्चित रूप से नहीं कह सकता । भावों की आँधी को जब संभाल लूँगा, तब कुछ बता सकूँगा ।”

“देखो भैया, अब अपने दादे पर कायम रहना ।” शिवा के स्वर में दोनता थी ।

“सो तो करना ही होगा ।”

शिवा का मन यह आश्वासन पाकर कुछ ठिकाने लगा । वह बोली—
“अब कहाँ चलना होगा ?”

“घर । अब वहीं का एकांत मुझे खींच रहा है ।”

“तो चलो ।”

अभी वे कठिनता से दस-एक गज चले होंगे कि सड़क के मोड़ से सहसा रंजन और रेखा उन्हें आते दिखाई दिए । वे सीधे उनकी ओर बढ़े । रंजन का मुख उन्हें देखकर प्रफुल्लित हो उठा । प्रसन्नता से ओत-प्रोत स्वर में बोला—
“आप भी खूब मिले ! अभी होटल से निकलने से पहले मैं आप दोनों का ही जिक्र कर रहा था । बेशक रेखा से पूछ लो । ऐसे भाई-बहन की जोड़ी, मैं अपने एक मित्र से कह रहा था, मैंने आज तक कभी नहीं देखी । वे दोनों इस युग के नहीं, बल्कि किसी आने वाले युग के प्राणी हैं ।”

“आने वाले या किसी बीते हुए लौह युग की जंगपोषित दो सलाखें हैं ।”
विपिन सूखी हँसी हँसा ।

“देखो विपिन भाई, यही तुममें दोष है कि प्रत्येक बात को तुम मजाक में ले जाते हो ।” अपनत्व प्रदर्शित करते हुए उसने विपिन के कंधे पर हाथ

रेखा, “यदि तुम ऐसी बातें करोगे, तो मैं तुम्हारी वकालत न कर सकूंगा।”

“उसकी शायद अब आवश्यकता ही न पड़े।”

“वह क्यों?” रंजन ने आश्चर्य-चकित स्वर में पूछा। उसका हृदय धक्-धक् करने लगा, “क्या हुआ है?”

“बात लम्बी है। सड़क पर खड़े-खड़े तो हो न सकेगी।”

“तो चलो मेरे कमरे में। क्यों रेखा?”

रेखा मुसकराई, “इन्हें ले जाओ। मैं तो जा न सकूंगी। मैं किसी की ब्रिज-पार्टी कैसे खराब कर दूँ? मुझे तो वहाँ अभी पहुँचना है।”

“आप रेखाजी के साथ जाइए!” विपिन ने कहा।

“तो आज शाम को मिलेगे?”

“आज न मिल सकूंगा। कल यदि आपको फुरसत हो, तो मैं हाज़िर हो जाऊँगा।”

“तो कल सुबह का खाना मेरे यहाँ ही रखिए। शिवा जी को भी साथ लाइये। रेखा जी को भी मैं मना लूँगा। मान जायेंगी न?” उसने रेखा की ओर देखा।

“इनको तो पहले मनाओ।”

“तो यह ठीक रहा, विपिन भाई! कल प्रातः ग्यारह बजे आप दोनों आ जाइएगा। पहले बातचीत, फिर भोजन। अब मैं और कुछ न सुन सकूँगा। नमस्कार!”

इस आग्रह के अनन्तर कौन बोल सकता था। विपिन ने अनुमति दे दी, यद्यपि शिवा उसे संकेत द्वारा मना करती रही।

१६

रेखा और रंजन जब विपिन और शिवा से छुट्टी लेकर चले, तो दोनों के मन में विभिन्न विचार-धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। रंजन अपने भविष्य के लिए चिंतित था और रेखा के मन में रंजन का व्यवहार कुतूहल उत्पन्न कर रहा था। वे दोनों चुपचाप कई-एक गज चले गए। फिर रेखा ने ध्यान से

रंजन की ओर देखा और मुस्कराई ।

“क्या सोच रहे हो ?” रेखा ने पूछा ।

“सोच रहा हूँ”, रंजन का स्वर गंभीर था, “तुमसे छिपाऊँगा नहीं, अपना भविष्य ।”

“भविष्य ?”

“हाँ । यह तो तुम जानती हो कि मैं किसी लक्षाधीश का पुत्र नहीं हूँ । जो-कुछ मेरे पिता की जायदाद है, वह हम आठ भाइयों में विभाजित होते ही नगण्य हो जायगी । अतः मैंने सोचा था, इस मुकदमे द्वारा यश प्राप्त कर लेने पर ही धन का अर्जन कर सकूँगा ।”

“यश या अपयश ?” रेखा छिपे हुए व्यंग्य से बोली, “यह मुकदमा तुम्हें धन तो अवश्य दे जायगा, पर यश इससे न मिल सकेगा, यह यदि न भूलो, तो ठीक रहे ।”

“यश क्यों नहीं मिलेगा ?”

“तुम भली-भाँति जानते हो”, रेखा तेज छुरी-सी काटती कह चली, “और सच पूछा जाय, तो केवल यश तुम्हें इस केस की ओर खींच भी नहीं रहा ।”

“अच्छा, तो मैं केवल धन के लालच से उधर बढ़ रहा हूँ ?” रंजन ने रेखा को नेत्रों द्वारा चीरते हुए कहा ।

किन्तु रेखा अप्रभावित रही । शांत स्वर में बोली, “केवल धन ? नहीं ।”

“तो और क्या ?” रंजन के स्वर में किंचित् चिंता थी ।

“शिवा !” रेखा ने कहा और सिर से पाँव तक रंजन का निरीक्षण किया ।

रंजन सँभल न सका । उसका बाएँ चूका नहीं, रेखा की पैनी दृष्टि जान गई । आधा क्षण रंजन को कुछ जवाब न सूझा, कुछ सोचता रहा । फिर धीरे-धीरे कहने लगा—“अच्छा ! मैं तो एक दूसरा ही स्वप्न देखता आ रहा था ।”

“किन्तु वह स्वप्न शायद बीसवाँ था ।” अब रेखा के स्वर में विजय थी, क्योंकि उसका भ्रम दूर हो चुका था, “कल से इक्कीसवाँ आरम्भ होगा । वह स्वप्न यदि पहला होता, तो उसका ‘विषय’ शायद छला जा सकता ।”

“तुम यह क्या कह रही हो ?” रंजन ने विरोध करने की चेष्टा की ।

“देखो रंजन”, रेखा का स्वर पहले से धीमा, किन्तु साथ ही प्रभावोत्पादक हो चला था, “यदि किसी ने तुम्हारे जटिल मस्तिष्क को जाना है, तो वह मैं हूँ । भँवरा-प्रवृत्ति तुम्हारे अभिमान को भले ही संतोष दे ले, किन्तु मन को शांत न कर सकेगी ।”

“भँवरा-प्रवृत्ति !” अपने स्वर में आश्चर्य भरते हुए रंजन बोला, किन्तु यह स्पष्ट था कि उसके भीतर से रेखा का प्रतिरोध करने की शक्ति जाती रही थी ।

“और सुनो, जिस फूल पर अब मचले हो, उसे शायद पा न सकोगे; क्योंकि उसके इर्द-गिर्द वे काँटे हैं, जो तुमको न दीखे हैं, न दीखेंगे । उनका पता तब चलेगा जब वे तुम्हें छलनी-छलनी कर देंगे ।”

रेखा के स्वर में ईर्ष्या नहीं थी, किन्तु रंजन को उसका आभास उसमें मिला । इससे उसका रहा-सहा आवरण भी जाता रहा । वह तीखे स्वर में बोल उठा—“तुम कंसे जानती हो ?”

रेखा खुलकर हँसी—“स्थिति को स्पष्ट करने का अवसर देने के लिए धन्यवाद । मैं इसलिए जानती हूँ कि वह मेरे वर्ग की है । एक बात और भी तुम्हें हृदयंगम करा देना चाहूँगी कि मेरी चेतावनी के पीछे ईर्ष्या न थी ।”

“और क्या था ?” रंजन ने अपनी टेक न छोड़ी ।

“तुम्हारे परिहास-आत्मक व्यक्तित्व के साथ बिताए हुए कुछ क्षणों द्वारा प्राप्त कौतुक का मूल्य चुकाने की भावना ।”

रंजन ने कुछ जवाब न दिया । अस्वाभाविक आवरणों में छिपे हुए व्यक्तित्व के नंगे हो जाने पर उसका यह रूप, यह पतन हो जाता है, वह न जानता था । वह कुछ देर धीरे-धीरे रेखा के साथ कदम मिलाता हुआ चलता गया, फिर बोला—“तुम क्या चाहती हो ?”

“मैं ?” अब के रेखा के स्वर में आश्चर्य था—“तुमसे ? न कभी कुछ चाहा था, न चाहूँगी ।”

“और यदि मैं कुछ चाहूँ, तो ?” रंजन ने नेत्रों में मूक प्रार्थना की ।

“कहो !” रेखा ने प्रोत्साहन दिया ।

“क्या तुम्हारी मित्रता, तुम्हारी सहानुभूति के लिए भी अब मुझे तरसना होगा ?”

रेखा स्फुराई—“बिलकुल नहीं । ये दोनों चीजे मेरे मन में सदा बनी रहेंगी ।”

“धन्यवाद !”

इस बीच रेखा की उस सखी का घर आ गया, जहाँ वे दोनों ब्रिज खेलने जा रहे थे ।

“लो, मेरा ठिकाना भी आ पहुँचा,” रेखा ने कहा ।

“किन्तु !” रंजन उका ।

“तुम न जा सकोगे, मैं जानती हूँ । अनुरोध भी न करूँगी । मुझे खेद है कि मैं इतनी दूर तक तुम्हें खींच लाई । यदि ऐसा न होता, तो तुम्हारे आत्म-विश्वास को धक्का न पहुँचता, वह अभी तक अटल रहता ।”

यह जानकर कि तुम्हारी मैत्री, तुम्हारी सहानुभूति मुझे मिलती रहेगी, मेरा आत्मविश्वास, जो निःसन्देह डगमगाया था, पुनः पूर्ण रूपेण जीवित हो गया ।” रंजन के स्वर में सहसा जोश आ गया—“तुम्हारा रंजन तुम्हें निराश नहीं करेगा; क्योंकि तुम्हारे सिवा उसके सत्य रूप को समझने वाला प्राणी कोई नहीं ।”

रेखा हँसने लगी—“तुम्हारे शब्दों में आज शायद खुशामद नहीं । किन्तु यदि हो भी, तो इसमें तुम्हारे स्वभाव का दोष है । तुम्हारे पथ को सौभाग्य आलोकित करे, यही मैं चाहूँगी ।”

“इसके लिए आभारी हूँ । अब अनुमति चाहूँगा, क्योंकि मुझे बहुत काम करना है,” उसने हाथ जोड़कर रेखा को नमस्कार किया ।

रेखा ने उसे प्रतिनमस्कार किया और द्रुत गति से अपनी सखी के घर की ओर बढ़ चली । रंजन कुछ देर वहाँ असमंजस में पड़ा खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे सोच में डूबा हुआ आगे की ओर बढ़ने लगा । बस्ती से कुछ दूर निकल जाने पर सड़क से कुछ दूर हटकर एक छोटी-सी पहाड़ी थी, जिस पर एक काफी

बड़ा-मा पत्थर पड़ा हुआ था। रंजन उसी पर जा बैठा और दूर तक फैली पहाड़ियों को देखता हुआ अपने विचारों में डूब गया। उससे कुछ दूरी पर कुछ बन्दर एक-दूसरे से उलझ रहे थे, किन्तु उसका ध्यान वे आकर्षित न कर सके। वह जो-कुछ करने जा रहा था, क्या वह बुद्धिवाद के अन्तर्गत आता है या नहीं? यदि उसके समूचे मनसूबे असफल हो जायें, तो क्या केवल फीस की दृष्टि से ही ऐसा मुकदमा लड़ना लाभप्रद नहीं होगा? हो सकता है, विपिन के पास फीस के लिए अधिक धन न हो, पर कुछ-न-कुछ तो होगा ही। और यदि वह मुकदमेबाजी में पड़ ही गया, तो क्या दिल्ली के प्रसिद्ध हृदय-विशेषज्ञ की इकलौती बेटी चित्रा धन द्वारा इसकी सहायता न करेगी? अवश्य करेगी। और इसके साथ यदि कहीं शिवा को वह पा जाय, तो कैसा रहे? मुकदमा जीतने पर शिवा के हिस्से भी लाखों आयेंगे और यदि शिवा उसकी हो गई, तो वह धन भी उसी का हो जायगा। पर यदि मुकदमा हार गया, तो? तब पहली अपील होगी, फिर दूसरी अपील, फिर सुप्रीम कोर्ट में अपील। वह क्रम चलता ही रहेगा और फीस देने के लिए विपिन कहीं-न-कहीं से रुपया लाता ही रहेगा। किन्तु हार की भावना ही वह क्यों मन में लाय? छल, बल अथवा चातुरी से उसे मुकदमा जीतना ही होगा। वह अवश्य जीतेगा। वह मुस्कराया और अपने भविष्य की एक भाँकी देखने लगा, जिसमें बढ़िया कोठी, मोटर, उद्यान, सब उसे ऐसे दीखे, मानो अभी से उसके हो गए हों। बढ़िया-से-बढ़िया पार्टियों में घूमता, बढ़िया-से-बढ़िया पार्टियाँ देता, जिनमें स्वर्ग की अप्सरा-सी सुन्दरियाँ तितलियों की भाँति उड़ती हों, वह अपने-आपको देखने लगा। शिवा का धन पा जाने पर उसके लिए क्या सम्भव नहीं होगा? सामाजिक क्षेत्र, राजनीतिक क्षेत्र, जिसे भी चाहेगा वह अपना परीक्षण-स्थल बना लेगा। उसकी क्षमता, उसकी शब्द-चातुरी इन दोनों क्षेत्रों की बड़ी-से-बड़ी देन भी उसके लिए संभव कर देगी। देश के मंत्रि-मंडल में उसके लिए स्थान पा जाना भी सुलभ हो जायगा। धन महान् शक्ति है। धन से महायुद्ध भी जीते जा सकते हैं। प्रथम महायुद्ध के समय इंग्लिस्तान के महामन्त्री ने क्या ठीक कहा था कि इस महायुद्ध को इस्पात की गोलियाँ नहीं, चाँदी की गोलियाँ जीतेंगी।

यह सब सोचते-सोचते रंजन का मन स्फूर्ति से ओत-प्रोत हो उठा। वह निश्चय ही मुकदमे के प्रति उदासीन विपिन को अपनी राह पर ले आयागा। आकर्षक शिवा को अपने अद्भुत व्यक्तित्व द्वारा, अपने जादू-भरे शब्दों द्वारा वह अवश्य जीत लेगा। वह आनन्दसे विह्वल हो लौट जानेके लिए उठा। ठीक उसी समय उससे कुछ अन्तर पर उसके सम्मुख एक पहाड़ी कौआ आ बैठा। टेढ़ी दृष्टि से रंजन की ओर देखते हुए उसने 'काँव-काँव' का राग अलापना शुरू कर दिया। रंजन खीझ उठा। तेजी से उसकी ओर भागा। कौआ उड़कर पास के वृक्ष की टहनी पर जा बैठा, लेकिन वह अपना बे-सुरा राग अलापता ही रहा। रंजन ने घृणा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा और उससे मुँह मोड़कर घर की राह ली।

१७

और न उधर शिवा के मन में चैन था, न विपिन के हृदय में शान्ति। रंजन से हुई संक्षिप्त भेंट ने दोनों के पाँव मानो उखाड़ दिए। चित्रा की सहायता से अपने भाई पर जो विजय वह पा गई थी, उसे ठीक राह पर ले आई थी, क्या वह सब-कुछ ठीक रह सकेगा? क्या रंजन का टेढ़ा, किन्तु आकर्षक व्यक्तित्व विपिन को पुनः युद्ध-पथ का पथिक न बना देगा? रंजन की सम्मति के पीछे जो स्वार्थ छिपा हुआ है, क्या समझाने पर भी उसका भाई उसे समझ सकेगा? ऐसे प्रश्न बार-बार शिवा के मन को उद्वेलित कर रहे थे। रंजन का व्यक्तित्व! वह सोचने लगी, उसमें क्या है? उसके सामने आते ही लोग क्यों उसके रंग में रँग जाते हैं? क्या इसलिए कि उसकी जिह्वा में जौहर है या इसलिए कि झूठ सत्य से अधिक रंगीन होता है? सीधी-सादी भलाई के मुकाबले में बुराई में बिजली-सी चमक और गति होती है, जो हमारी दृष्टि को चकाचौंध कर देती है। पर क्या रंजन सचमुच बुरा है? कौन जाने, वह उसके साथ अन्याय ही कर रही हो। चाहे कुछ भी हो, भैया को उसके जाल में नहीं फँसना चाहिए। पर क्या वह भैया को उससे विमुख कर सकेगी? शायद नहीं, किन्तु प्रयत्न तो करना ही होगा। यही सब-कुछ वह अपने कमरे में बैठी

सोच रही थी। साथ वाले विपिन के कमरे में अभी बत्ती नहीं जली थी। शायद विपिन कहीं बाहर घूमने गया है, शिवा यही समझ रही थी।

विपिन कहीं बाहर नहीं, बल्कि कोठी के साथ सटे हुए लॉन में वृक्षों से छनकर आती हुई टिमटिमाते तारों की ज्योति में टहल रहा था और सोच रहा था कि चित्रा और शिवा ने जिस राह पर उसे डाल दिया है, क्या वह उपयुक्त रास्ता है? क्या महत्वाकांक्षा से ओत-प्रोत उसकी आत्मा के लिए वह संतोषप्रद होगा? रंजन बुरा ही सही, किन्तु चतुर तो है, मनोरंजक तो है। माना, उसकी सलाह में उसका थोड़ा अपना स्वार्थ है, किन्तु मेरी भी तो भलाई वह देखता है। आखिर वह हृदय-हीन तो नहीं। क्या संघर्ष ही जीवन का दूसरा नाम नहीं? आज यदि संघर्ष के बिना ही काम हो जाय, तो कल किसी दूसरे इष्ट की सिद्धि के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। अतः उससे बिगाड़ करना तो बिल्कुल ठीक न होगा। यदि वह मित्र के रूप में प्रबल है, तो शत्रु के रूप में उससे भी अधिक प्रबल हो सकता है, होगा। उनके द्वारा छोड़े जाने पर यदि वह कहीं माँ तक पहुँचने का प्रयत्न करे, तब ? उसको यह सूझना असंभव नहीं और न माँ के हृदय में ही प्रवेश पा जाना उसके लिए दुष्कर होगा। वही आदर्श-वादी धार्मिक स्तर वह अपना लेगा, जिससे माँ को मोह है। नहीं, उसे छोड़ना ठीक नहीं होगा और न शायद उसकी सलाह को ठुकराना ही। यह सोचते-सोचते उसने किंचित् सर्दी का अनुभव किया। वह कमीज के ऊपर केवल एक पतला-सा पुलोवर ही पहने था। उसके पग धीरे-धीरे उसे कोठी की ओर ले चले। अपने कमरे में पहुँचकर जब उसने कमरे की बत्ती जलाई, तो उसके एक ही क्षण बाद शिवा वहाँ पहुँच गई, मानो वह उसके आने की प्रतीक्षा में ही बैठी हो।

“भैया, तुम कहाँ थे?” एक कुर्सी पर बैठते हुए शिवा ने पूछा।

“मैं यहीं बाहर लॉन में टहल रहा था।”

“अच्छा, मैंने समझा कि कहीं बाहर चले गए हो। “भैया !”

“क्यों?” विपिन ने चिन्ता-मिश्रित उत्सुकता से अपनी बहन की ओर देखा।

“क्या कल रंजन के यहाँ जाना ही होगा ?

“अब कैसे पीछे हट सकते हैं।”

“और यदि मैं न जाना चाहूँ, तो ?”

“तुम न जाना चाहो ! क्यों ?”

“इसलिए कि वहाँ जाने से हमें कोई भी लाभ नहीं होगा, उल्टी हानि होने की संभावना है।”

“वह कैसे ?” विपिन ने शिवा को ध्यानपूर्वक देखा।

“जो निश्चय हम चित्रा जीजी से कर आए हैं, उसे वह तोड़ने का प्रयत्न अवश्य करेगा।” शिवा के स्वर में चिन्ता थी।

“क्या वह निश्चय निःसंदेह ठीक है ?”

“हाँ, मेरा तो यही विश्वास है,” शिवा ने जोर देकर कहा।

विपिन मुस्कराया—“तो उसे प्रयत्न करने दो। हम अपने निश्चय पर अटल रहेंगे।”

“क्या रह सकेंगे ?” शिवा ने सन्देहात्मक स्वर में प्रश्न उठाया, “उसकी चिकनी-चुपड़ी, चतुर बाते क्या हमें प्रभावित करने में असफल रह सकती हैं ?”

विपिन थोड़ा मुस्कराया और ज़रा जोश से बोला, “तो हम क्या द्वेष-पीते हैं, हम अपना बुरा-भला क्या नहीं सोच सकते ? वह कोई जादूगर तो नहीं कि हमें जादू की छड़ी से छूकर अपने साथ सहमत कर लेगा।”

“जादूगर तो नहीं, मैं मानती हूँ, किन्तु जिस दृष्टिकोण से तुम्हें सहानुभूति है, उसे वह खूब समझता ही नहीं। बल्कि उसे ऐसे ढंग से पेश करना भी जानता है कि तुम उस पर फिसल पड़ो।”

बहन की चतुरता देखकर विपिन आधे क्षण के लिए अवाक् रह गया, फिर बोला—“शिवा, यह सब-कुछ तुम्हें किसने सिखाया ?”

शिवा मुस्कराई—“गहरे चिन्तन ने।”

“तुम्हारे कथन में तथ्य है, मैं मानता हूँ,” विपिन किंचित् प्रशंसात्मक स्वर में बोला, “पर मैं फिसलूँगा नहीं, ऐसी आशा है—यद्यपि जो-कुछ निश्चय हमने किया है, उससे मैं निश्चिन्त नहीं हूँ, यह भी न छिपाऊँगा।”

“इसका मतलब यह हुआ कि कल हमें जाना ही होगा।”

“अवश्य !” विपिन ने मानो अन्तिम निर्णय दे दिया ।

इतने में भागता हुआ रोहित वहाँ आ पहुँचा ।

“आओ, रोहित !” शिवा ने पास बुलाते हुए मुस्कराकर उसका स्वागत किया । विपिन भी मुस्कराया ।

“भैया और जीजी,” रोहित कहने लगा, “माँ कहती है, कल तुम कहीं सुबह ही चले न जाना ।

“क्यों ?” शिवा ने प्यार से पूछा ।

“कल मेरी वर्षगाँठ है, इसलिए ।” प्रसन्नता से ओत-प्रोत स्वर में रोहित बोला, “पूजा कराने के लिए पंडितजी भी कल आयेंगे ।”

“बहुत अच्छा । हम कहीं भी नहीं जायेंगे, माँ से कह दो ।” शिवा ने विपिन की ओर बिना देखे ही कह दिया ।

जब रोहित प्रसन्नता से उछलता कमरे से बाहर चला गया, तो विपिन ज़रा कठोर स्वर में बोला—“यह तुमने क्या कर दिया ? हमें तो कल रंजन के यहाँ खाना खाने जाना है, क्या यह भूल गई ?”

“नहीं । रंजन का खाना तो पीछे भी हो सकता है, किन्तु बच्चे की वर्ष-गाँठ तो स्थगित नहीं हो सकती ।”

“उसे मैं क्या मुँह दिखाऊँगा !” विपिन ज़रा खीझकर बोला, “जब कभी भी हमें उसके यहाँ जाना होता है, ये लोग कोई-न-कोई झगड़ा खड़ा कर देते हैं । ऐसा पहली बार थोड़े ही हुआ है ।”

शिवा ने विपिन की खीझ की ओर ध्यान न देकर कहा—“मैं समझती हूँ, यह अच्छा ही हुआ । यदि इस बहाने उसके यहाँ जाना टल जाय, तो मैं रोहित का उपकार मानूँगी ।”

“और मैं मानूँगा अपकार । रंजन-ऐसे मनुष्य को मैं अप्रसन्न न कर सकूँगा ।”

“तो उससे क्षमा माँग लो ।”

“बार-बार क्षमा ! मुझसे यह काम न होगा । आज तुम्हें ही उससे बात करनी होगी । तुमने ही यह विषमता पैदा की है, इसलिए तुम्हीं उसे सुलझाओ ।”

‘बहुत अच्छा ।’ शिवा ने कहा और तीव्रता से टेलीफोन वाले कमरे की ओर चली गई ।

विपिन कमरे में टहलता हुआ होठ काटने लगा । इस पिल्ले का जन्म-दिन भी कल ही आना था ! माना कि मुझे अपना निश्चय नहीं बदलना, किन्तु रंजन से बातचीत करने से स्थिति तो स्पष्ट हो जाती । कितना सुन्दर अवसर हाथ से निकल गया ! इतने में शिवा लौट आई । विपिन ने उसकी ओर देखा और पूछा—“क्या मिल गया ?”

“हाँ, किन्तु खाना टल नहीं सका ।”

“टल नहीं सका, क्या मतलब ?” विपिन के स्वर में थोड़ी आशा थी ।

“रात को जाना ही होगा । इसके लिए उसने इतना जोर दिया कि मुझे मानना ही पड़ा ।”

विपिन मुस्कराया—“वह उतना बुरा नहीं, जितना हम उसे समझते हैं । यदि कोई दूसरा होता, तो इस बार अवश्य बुरा मान जाता ।”

“स्वार्थी कभी बुरा नहीं मानता ।”

“यदि यह बात है, तो तुमने इन्कार क्यों नहीं कर दिया ।” भाई के स्वर में फिर खीझ थी ।

“इसलिए कि उसकी मधुर और चतुर जिह्वा का मेरे पास जवाब नहीं ।”

विपिन मुस्कराया—“रेखा का वह क्या करेगा ?”

“उसे वह स्वयं प्रातः ही सूचित करके रात के खाने के लिए मना लेगा, इसका उसे पूरा भरोसा है । अब तो तुम खुश हो ? तुम्हारा सुअवसर तुम्हें फिर मिल गया । पर मुझे भय है कि यह सुअवसर कहीं हमारे जीवन का कुअवसर न बन जाय ।”

“तुम्हारा भय, तुम्हारा भ्रम यदि हमारा पथ-प्रदर्शक बन जाय, तो हमारे लिए यही उचित रह जाता है कि सब किसी से मिलना-जुलना छोड़ दें और इस घर के इन दो कमरों की प्रदक्षिणा में दत्तचित्त हो जायें ।”

शिवा हँसने लगी—“बाहर का लॉन भी तो है, उसे क्यों भूलते हो ?”

विपिन भी मुस्कराया—“खैर, अब तो हमें जाना ही होगा । तुम्हारे भय

मे कितना तथ्य है, वह भी कुछ ही दिनों में स्पष्ट हो जायगा। अभी से भगड़ा करने से क्या लाभ ?”

१८

अगले दिन रात साढ़े आठ बजे के लगभग रंजन अपने कमरे में सिगरेट दबाए आरामकुर्सी पर शिवा, विपिन और रेखा की प्रतीक्षा में बैठा था। उसका कमरा श्वेत बल्ब के बजाय काफी प्रखर ज्योति के एक नीले रंग के बल्ब द्वारा प्रकाशमान था। रंगीन ज्योति से उसके सिगार के धुँएँ के श्वेत बादल हल्के नीले रंग में परिणत होकर कमरे के वातावरण में विलीन हो रहे थे। रंजन गहरे सोच में डूबा हुआ धूम्र द्वारा बनते-बिगड़ते उन छोटे-छोटे टुकड़ों को अन्यमनस्क भाव से देख रहा था। कारण यह था कि उनका मन यथार्थ और कल्पना के मध्य में विचरता हुआ आने वाले संघर्ष के लिए कोई चतुर योजना बनाने में व्यस्त था। विपिन से उसे कोई भय न था। उसको भोम की भाँति वह जिधर चाहे घुमा सकता था, किन्तु शिवा उसके लिए टेढ़ी खीर थी। उसके मन के भावों को वह कल की छोकरी ऐसे पढ़ लेती है, मानो खुली हुई पुस्तक का पृष्ठ उसके सम्मुख हो। इसलिए विपिन की अपेक्षा शिवा की ओर उसे अधिक ध्यान देना होगा। रेखा इसमें उसकी सहायता कर सकती है, किन्तु रेखा मनमौजी लड़की है। जो में आय, तो उसका साथ दे दे, अन्यथा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दे कि उसके लिए एक पग चलना भी कठिन हो जाय। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उस दिन रेखा उपस्थित न हो। यदि उसका वश चलता, तो वह उसे कभी न्योता न देता; पर जिस ढंग से यह सारी बात हुई थी, रेखा को छोड़ा नहीं जा सकता था। उसे छोड़ना एक आफत मोल लेना होता। हाँ, यदि कहीं स्वयं ही वह उस दिन न पहुँचे, तो कितना अच्छा हो ! क्या यह संभव नहीं ? क्यों नहीं, वह सोचने लगा। उसके जान-पहचान वालों में से किसी के यहाँ ब्रिज-पार्टी जम सकती है, वर्षों से बिछुड़ी हुई उसकी कोई सखी सहसा उसके घर पहुँच सकती है। उसके सिर में दर्द हो सकता है, अथवा केले के छिलके से पाँव फिसल सकता है। यदि कहीं ऐसा हो

जाय, तो कितना अच्छा हो ! किन्तु कहाँ ? अभी वह इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि उसका द्वार धीरे से खुला और रेखा का पतला-लंबा शरीर उसके सामने खड़ा था । उसके होठों पर व्यंग्य की एक रेखा थी । रंजन एकाध क्षण के लिए किर्कतव्यविमूढ़-सा हो गया । फिर हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, “तुम आ गईं । बहुत अच्छा हुआ ।”

“तुमने क्या समझा था, मैं नहीं, मेरा भूत आया है ?”

रंजन खिलखिलाकर हँसा—“यह बात तो नहीं, पर तुम्हारा प्रवेश इतना शांत था कि मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ कि तुम हो ।”

“जान्त ! इस धुँ से भरे, नीली ज्योति से प्रकाशित जाड़गरों-जैसे कमरे में ताँ दबे पाँव चलते हुए भी डर लगता है । यदि बकील बनने के बजाय तुमने अभिनेता अथवा मदारी का पेशा चुना होता, तो अब तक तुम वारा-न्यारा कर चूके होते ।”

आज इसका ‘मूड’ मेरे प्रतिकूल दीखता है, यह सोचकर रंजन घबराया, पर अपनी घबराहट को छिपाते हुए मधुर स्वर में बोला — “सच ? पर अब जो भूल हो चुकी है, उसे तो सँवारा नहीं जा सकता । वैसे आज मैं तुम्हारी सहायता की आकांक्षा में हूँ । यदि वह न मिली, तो बात न बन सकेगी ।”

“मेरी सहायता ?” रेखा मुस्कराई ।

रंजन खुशामद-भरे स्वर में कहता चला गया—“हाँ । मदारी कहो, अभिनेता कहो; किन्तु तुमसे तो कभी कुछ छिपाया नहीं ।”

रेखा प्रसन्न हो उठी—“तो मैंने कब तुम्हारा विरोध किया है ? निश्चय रखो, आज भी न करूँगी । तुम्हारी कला क्या जौहर दिखाती है, उसे उत्सुकता से देखूँगी ।”

“धन्यवाद !”

ठीक उसी समय रंजन के कमरे का द्वार किसी ने खटखटाया ।

“बे लोग भी आ गए,” रंजन ने कहा, “आ जाइए !”

भाई-बहन दोनों ने कमरे में प्रवेश करते हुए रंजन और रेखा को हाथ जोड़कर नमस्कार किया ।

“इस कुपात्र का न्योता स्वीकार करने के लिए अनेक धन्यवाद !” उन्हें प्रतिनमस्कार करते हुए रंजन मुस्कराया और वक्र दृष्टि से शिवा की ओर देखा।

शिवा किंचित् हँसी, पर चुप रही। विपिन ने आश्चर्य से पूछा—“कुपात्र क्यों ?”

“इसलिए कि समझा यह जा रहा है कि मैं किसी के घर में फूट डालने के प्रयत्न में हूँ।”

“कौन समझ रहा है ?” विपिन ने प्रश्न किया।

किन्तु प्रश्न को अनसुना करके रंजन ने सबको बैठने का संकेत किया और स्वयं भी अपनी कुर्सी सँभालता हुआ कहता चला गया—“आरम्भ में मेरी सलाह में स्वार्थ था, मैं न छिपाऊँगा; पर अब यदि कहूँ कि मैं परमार्थ से प्रेरित होकर सलाह दे रहा हूँ, तो अत्युक्ति न होगी।”

“कैसे ?” शिवा ने पूछा।

रंजन प्रसन्न हुआ। यही तो वह चाहता था कि शिवा बातचीत में भाग ले। वह गम्भीर स्वर में बोला—“यदि अनुमति हो, तो स्पष्ट कह दूँ।”

“कहिए !” शिवा ने स्वीकृति दी।

“पहले अपने स्वार्थ की बात कहूँगा। यदि आप अपनी माँ के साथ भगड़ा आरम्भ कर दें, तो आप ही बताइए कि फीस के रूपों के अतिरिक्त मुझे क्या मिलेगा ? क्या उन रूपों के कारण ही मैं स्वार्थी कहा जा सकता हूँ ? यह तो आप मानेंगी ही कि सभी कानूनी सलाहकारों की दृष्टि में आपकी माँ का केस बहुत मजबूत है।”

“हाँ !” शिवा ने सिर हिलाया।

“अतः उससे सफलतापूर्वक लड़ने के लिए विशेष परिश्रम, पैसे मस्तिष्क तथा सिंह-से हृदय की आवश्यकता है।”

“निःसन्देह !” अपनी हँसी को हृदय में छिपाते हुए रेखा ने कहा।

रंजन ने रेखा की ओर देखा और कहता चला गया—“यह मैं जानता हूँ कि मैं यह केस न जीत सकूँ। और इसके हारने से मेरी उन्नतिशील प्रेक्टिस को

वह धक्का लगेगा, जिससे सँभालने में शायद मुझे कई वर्ष लग जायें। इसलिए यथार्थवादी दृष्टिकोण से आपका केस लेने में मुझे लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है।”

“तब आप...” विपिन ने कुछ कहना चाहा, किन्तु रंजन ने उसे आगे न बढ़ने दिया।

“तब मैं क्यों आपको यह केस लड़ने की सलाह दे रहा हूँ, यही प्रश्न शायद आपके मस्तिष्क में आया है। इसलिए कि आपके निकट और कोई चारा ही नहीं।”

“सो कैसे?” शिवा के स्वर में सन्देह था।

“इसलिए कि वसीयत पत्रकी होते ही आप सदा के लिए धूल में मिल जायेंगे। पाँच की एक ठोकर लगाकर आपकी माँ आपको राह का भिखारी बना सकती है। यही कारण है कि आपकी माँ इस समय किसी भी भूल्य पर आपको नाराज नहीं करना चाहेगी।”

“तभी मेरे जरा-से माँगने पर उसने तुरन्त बीस हजार का चेक मुझे दे दिया,” विपिन के मुँह से फिसल पड़ा।

रंजन का हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ा। बीस हजार रुपया ! वह तो इस चौथाई रुपये की आशा में ही केस लड़ने को तैयार था। और अब ? उसे अपना भविष्य सहसा उज्ज्वल देखने लगा। लगभग यह सारा रुपया वह कुछ ही दिनों में खींच लेगा, इसका उसे पूर्ण विश्वास था। उसकी बातचीत के पीछे एक अद्भुत नवीन प्रेरणा अंकुश-रूप में आ गई। अपनी जाँघ पर हाथ मारकर बोला — “सच ? मैं जानता था कि यही होगा। यदि आप चाहें, तो इससे भी अधिक रिश्वत आपको दी जायगी।”

“रिश्वत ?” शिवा ने कहा।

“निःसन्देह ! बीस हजार ! वसीयत पर सरकारी मुहर लग जाने पर यदि सौ-सौ रुपए के लिए भी आप न तरसें, तब बात है।”

“जो हाथ इतना उदार है कि बीस हजार देते नहीं हिचकिचाया, वह सौ-सौ रुपए के लिए कैसे तरसायगा, यह मेरी समझ में नहीं आया,” शिवा ने

पुनः सन्देह प्रकट किया ।

रंजन मुस्कराया—“यही तो एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक पहेली है । आज जो एक लाख देने के लिए तैयार है, कल परिस्थिति बदल जाने पर उसके लिए एक देना भी दूभर होगा । इसलिए यह बीस हजार रुपया आपकी माँ के स्वभाव का मापदण्ड नहीं हो सकता । आज उसे तुमसे मतलब है । जब वह नहीं रहेगा, तो उसके तेवर ही बदल जायेंगे यह निश्चय रखो ।”

“तो आपके विचार में यह रुपया हमें पथभ्रष्ट करने के लिए दिया गया है ।”

“बिल्कुल । इसीलिए मैंने आपको चेतावनी देना उचित समझा है । अब चूँकि आपसे मित्रता का नाता हो गया है, इसलिए आपके प्रति किये जाने वाले अन्याय की ओर आपका ध्यान मैंने आकृष्ट कर दिया है । अब आप तथा शिवा जी जो उचित समझे, करें,” यह कह चुकने के उपरान्त वह उठ खड़ा हुआ, “अब खाने-पीने का प्रबन्ध ज़रा कर आऊँ ।” उसने कहा और तेज़ी से कमरे से बाहर चला गया ।

सदा की भाँति खाने-पीने का प्रबन्ध उसका सुचारु रूप से हुआ था । सबकी रुचि के अनुसार उसने पकवान, मिठाई आदि का प्रचुर प्रबन्ध कर रखा था और जब तक खाना होता रहा, उसने केस की एक बात तक न की । हास-परिहास में खाते-पीते आध घण्टा बीत गया । खाना समाप्त होते ही गरम कॉफी भेज़ पर आ गई और उसे प्यालों में ढालने का काम शिवा के आग्रह के अतिरिक्त भी रेखा ने सँभाल लिया ।

“आप कुछ भूलते नहीं,” विपिन ने प्रशंसात्मक स्वर में रंजन की ओर देखते हुए कहा ।

रंजन ने एक निश्वास छोड़ा—“इन छोटी-छोटी बातों में भूल भले ही न हो, पर जीवन की प्रधान घटनाओं में पग-पग पर भूलता हूँ, यह किसे बताऊँ ।”

“जो छोटी-छोटी बातों में व्यवहार-कुशल है, वह बड़ी-बड़ी बातों में भूल नहीं कर सकता,” शिवा ने कहा ।

रंजन मुस्कराया—“धन्यवाद !”

“कोरे घन्यवाद से तो बात समाप्त न हो सकेगी,” रेखा के स्वर में सहसा शरारत घुस पड़ी, “तुम्हारी और हमारी भूल का मापदण्ड भिन्न है। पाँच सौ के बजाय यदि तुम साढ़े चार सौ फीम ले लो, तो तुम्हारी दृष्टि में वह एक भयंकर भूल होगी।”

रंजन फिर घबराया। क्या यह मेरे साथ किया हुआ वादा भूल रही है? यदि कोई दूसरा अवसर होता, तो कोई बात न थी। वह दो-दो, तीन-तीन-रेखाओं से पार पा सकता था। पर आज स्थिति बहुत ही नाजुक थी। एक वाक्य, एक शब्द, बल्कि एक संकेत उसके खेल को बना-बिगाड़ सकता था। उसने रेखा को कुछ जवाब नहीं दिया। उसके अगले कथन की प्रतीक्षा में चुप रहा। पर सौभाग्य से ठीक उसी समय रेखा की दृष्टि कलाई पर बँधी घड़ी पर जा पड़ी। अपने प्याले में बची हुई काफी को एक घूंट में पीकर वह उठ खड़ी हुई।

“मुझे तो अब छुट्टी दीजिए,” उसने कहा। सबको नमस्कार किया और तेजी से कमरे से बाहर चली गई। रंजन की जान में जान आई।

“हमें भी अब जाना ही होगा,” शिवा ने कहा, ‘रात बहुत हो चली है।’

“बहुत अच्छा, पर कॉफी का एक-एक प्याला तो और लीजिए,” उनके न-न करते रहने पर भी उसने उनके प्यालों में काफी बना दी और कहने लगा, “आज जो आपने कष्ट किया है, उसके लिए हृदय से आभारी हूँ।”

“कष्ट तो आपको हुआ है,” विपिन ने कहा।

“आप-जैसे मित्र के लिए अवसर आने पर कष्ट और असुविधा सहने की शक्ति मुझमें हो, यही वर माँगता हूँ,” कहते-कहते रंजन का गला थोड़ा भर आया, “मेरी बातों को फेंक न देना।”

“सो कैसे हो सकता है,” विपिन का स्वर सच्चे स्नेह से ओत-प्रोत था, “आप-जैसे हितैषी मिलते ही कहाँ है?”

रंजन का हृदय खिल उठा। उसने वह अंकुर बो दिया था, जो समय पर अवश्य प्रस्फुटित होगा, इसमें अब उसे कोई संदेह न था। तब शिवा उठ खड़ी हुई। विपिन ने भी उसका अनुसरण किया और रंजन से छुट्टी लेकर बे

सड़क पर आ पहुँचे। शिवा बिना हाँ-हूँ किये विपिन द्वारा प्रस्तुत अपने सुहृद रंजन की प्रशंसात्मक उक्तियाँ सुनती, गहरे सोच में डूबी हुई भाई के पग के साथ पग मिलाए चली जा रही थी।

१६

अर्जो देने के लिए कचहरी जाने से पहले वकील ने स्नेहलता को यह जानने के लिए टेलीफोन किया कि विपिन ने अंतिम निश्चय क्या किया है ?

“वह क्या करना चाहता है, मुझे तो उसने बताया नहीं,” स्नेहलता ने जवाब दिया।

“यदि वह आपके पक्ष में बयान दे दे, तो मामला बहुत सीधा हो जायगा। आप उससे पूछ क्यों नहीं लेती ?”

“उससे पूछ लूँ ?” स्नेहलता एक क्षण के लिए असमंजस में पड़ गई।

“हाँ, पूछ लीजिए। इसमें हर्ज ही क्या है ?” वकील ने प्रोत्साहन दिया।

इस बीच स्नेहलता असमंजस पर पार पा गई थी। निश्चयात्मक स्वर में वह बोली—“नहीं, मैं नहीं पूछूँगी। आप साधारण ढंग से अर्जो को चलने दीजिए।”

“किंतु इससे विलंब तो होगा ही, साथ ही विपिन के गुमराह होने का भी भय है, यह तो न भूलिए।”

“कौन जाने, वह अब तक गुमराह ही हो चुका हो। रात को वे दोनों भाई-बहन देर से लौटे थे। शायद उसी उदीयमान वकील रंजन के यहाँ से आए हों।”

“संभव है,” वकील के स्वर में निराशा थी, “तो आप पूछना नहीं चाहती ?”

“नहीं। मैंने अपना कर्तव्य-पालन कर दिया और भविष्य में करती रहूँगी। उसका कर्तव्य क्या है, यह उसे स्वयं निश्चय करना होना। मैं इसमें न पड़ूँगी।”

“किन्तु……” वकील ने फिर आरम्भ किया।

पर स्नेहलता ने उसे आगे न बढ़ने दिया—“आप इस बात को छोड़िए, विलंब की चिन्ता न कीजिए और उसके नाम बाकायदा सम्मन जारी करवाइए । यदि वह मुकदमे में विषमता उत्पन्न करना चाहे, तो उसका कानूनी जवाब दीजिए ।”

“बहुत अच्छा !” वकील ने रिसीवर रख दिया ।

स्नेहलता भी टेलीफोन बन्द करके अपने कमरे की ओर चल दी । टेलीफोन के कमरे से थोड़े अंतर पर ही विपिन का कमरा था । वह हाल में आए हुए किसी फिल्म के गीत की कड़ी गुनगुना रहा था । जाते-जाते स्नेहलता के कानों में भी उसका स्वर पहुँचा । वह मुस्कराई और धीरे-धीरे पग रखती हुई अपने कमरे में पहुँचकर आराम-कुर्सी पर अधलेटो-सी ज पड़ी और आँखें मूंदकर सोच में डूब गई । आज उसे कचहरी के क्षेत्र में भी उतरना पड़ा । किस लिए ? पति द्वारा उसके नाम लिखी हुई जायदाद को पूर्णरूपेण अपने अधिकार में करने के लिए । क्या यह उसके लिए उचित था ? साधारणतया क्या उसे सब-कुछ विपिन के हवाले नहीं कर देना चाहिए था ? ऐसा करने से क्या रोहित के प्रति वह न्याय करेगा ? कदापि नहीं । पर क्या लोभ उसे भी ग्रसित न कर रहा था ? क्या सचमुच मुकदमा जीत जाने पर वह अपने पथ से विमुख नहीं होगी ? उसके पति ने भविष्य के उसके रूप की जो कल्पना की थी, उन भाई-बहन द्वारा पाए कष्टों और पीड़ाओं को सहने के बाद भी क्या वह उसी रूप को यथार्थता में परिणत कर पायगी ? क्यों नहीं ? यदि अपने लिए नहीं, तो उस दिवंगत आत्मा के लिए उसे यह सब-कुछ करना होगा, जिसने इतना महान् विश्वास उस पर किया, इतना विशाल उत्तरदायित्व उसके कंधों पर रख दिया । किन्तु अभी से यह चिन्ता क्यों ? अधिक संभव तो यही है कि विपिन ठीक ही राह पकड़ेगा । आखिर वह उसके पति की संतान है ; पर धन के लालच से लोग उसे विपथगामी भी तो बनाना चाहेंगे, बनाने के प्रयत्न में हैं । यदि उसे अपने-आप पर छोड़ दिया, तो वह गुमराह न होगा, उसे मान्य था ; किन्तु क्या शहद-सी मधुर शब्दावली वाले सलाहकारों से वह बच पायगा, यह संदेहास्पद है । और उसके लिए विपिन को कोई भी सलाह

देना निःसन्देह एक भूल होगी। वह निश्चित रूप से उसका उल्टा अर्थ लगायगा; क्योंकि वह उसकी विमाता जो है। भगवान् ने विमाता को इतना अपयश का भागी क्यों बनाया ?

सोचते-सोचते स्नेहलता के नेत्र सजल हो गए और देखते-ही-देखते उसके नयनों से आँसू ढुलकने लगे। उसने अपनी साड़ी के छोर से झटपट उन्हें पोंछ डाला। फिर वह उठकर दो-एक बार कमरे में टहली और पुनः कठोर मुद्रा धारण करती हुई अपनी कुर्सी पर जा बैठी। नहीं, उसे भायुकता का शिकार नहीं होना होगा। विधि ने उसके लिए जो विधान स्थित कर दिया है, उसे उसी पर चलना होगा। उसे यदि विमाता का पद मिला है, तो सांसारिक यश-अपयश की परवाह किये बिना उसे उसी पद की शोभा बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। इसी में उसका और उसकी जाति का गौरव है।

इतने में बाहर पद-चाप हुई और उसके साथ ही शिवा ने प्रवेश किया। स्नेहलता ने प्यार से उसका स्वागत किया, “आओ, बेटी !”

“माँजी, आप बिल्कुल चुपचाप लेटी हैं। क्या सोच रही हैं ?

“सोच रही हूँ” स्नेहलता ने गंभीर स्वर में जवाब दिया, “कि क्या मैं अपने बच्चों की यथार्थ में माँ बन सकी हूँ, बन सकूंगी ?”

“क्यों नहीं ?” शिवा सामने कुर्सी पर बैठ गई, “इसमें फिसे संदेह है ?”

“स्वयं मुझे !”

“आपकी ?”

“हाँ, और शायद तुमको और विपिन को भी।”

“रोहित को नहीं ?” शिवा की ज़बान से एकाएक फिसल पड़ा।

स्नेहलता के होठों पर व्यंग्य की एक अदृश्य रेखा खेल उठी—“वह अभी निर्बोध बालक है। उसके मानस-पट को संदेह की छाया अभी कलुषित नहीं कर सकती। क्या तुम्हें यह मान्य नहीं ?”

“मुझे मान्य है,” शिवा ने प्रभावित स्वर में उत्तर दिया।

“और क्या हृदय पर हाथ रखकर तुम यह कह सकती हो कि तुम संदेह का शिकार कभी नहीं हुई ?”

शिवा से सहसा कुछ उत्तर न बन पड़ा। थोड़ा रुककर बोली—“कभी-कभी संदेह और भ्रम किसके मन में नहीं उठता ?”

“जब यह मेरे, तुम्हारे और विपिन के मन में एक क्षण के लिए भी नहीं उठेगा, तब मैं अपने जीवन को समझूंगी,” कहते-कहते उसने आँखें मूंद लीं, मानो थक गई हो। फिर आधे क्षण में ही नेत्र खोलकर बोली, “तुम कैसे आई थीं ?”

“रोहित के स्कूल से टेलीफोन आया था कि उसका खाना आज साढ़े बारह के बजाय बारह बजे वहाँ पहुँच जाना चाहिए।”

“तो नौकरों को हिदायत दे दो !”

‘बहुत अच्छा,’ शिवा ने कहा और कमरे से बाहर चली गई।

अगले दिन स्नेहलता के वकील श्री चँवर ने अर्जी दे दी। कचहरी में विपिन तो नहीं गया, किंतु रंजन चँवर के इर्द-गिर्द मँडराता रहा। अर्जी देने के समय भी रंजन अदालत के कमरे में उपस्थित था।

“आप किसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं ?” चँवर ने उससे पूछा, “श्री विपिन का क्या ?”

“नहीं, मैं तो केवल आपकी कला देखने आया हूँ।”

चँवर मुस्कराया, “मेरी कला ! कलाकार का आसन छोड़े तो मुझे बीस वर्ष बीत चुके। मैं तो भई, अब सीधा-सादा सांसारिक पुरुष हूँ। कला का पथ अब आप-जैसे आधुनिक प्रतिभाशाली युवक ही पकड़ सकते हैं।”

“तो आपके विचार में वकालत के अंदर कला का समावेश करना उचित नहीं ?” रंजन ने ज़रा जोश से पूछा।

“उचित-अनुचित की तो बात मैंने नहीं की। कलाकार बनने के लिए जिस मानसिक खेल-कूद की आवश्यकता होती है, वह मुझमें नहीं, मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ।”

रंजन थोड़ा लज्जित हुआ, पर उसे छिपाते हुए कहने लगा—“कला का सहारा लिये बिना मनुष्य सफल वकील बन ही नहीं सकता।”

“कला का सहारा तो शायद हमें भी लेना पड़ता है,” चँवर ने धीरे से कहा ।

रंजन के मुख पर विजय की मुस्कराहट थी—“अब आप मान गए।”

“हाँ,” चँवर एक-एक शब्द पर जोर देता हुआ कहता चला गया, “कला को छिपाना भी तो कला है । हमारी कला भी वैसी ही समझिए. समझे ?”

रंजन हतप्रभ हो गया और इसी बीच चँवर का मुकदमा भी पेश हो गया । वह रंजन को छोड़कर कठघरे की ओर बढ़ गया । उस दिन कोई लंबा-चौड़ा काम नहीं था । कुछ लोगों के नाम, जिनमें विपिन भी था, नोटिस जारी करके जज ने एक मास की तारीख दे दी ।

कमरे से निकलकर चँवर सीधा स्नेहलता को टेलीफोन करने के लिए चल पड़ा और रंजन वकीलों के कमरे में ।

“विपिन के नाम नोटिस जारी हो गया है,” चँवर ने स्नेहलता को सूचना देते हुए कहा, “उसे एक मास की अवधि मिली है ।”

“बहुत अच्छा । अपना भला-बुरा सोचने के लिए यह अवधि पर्याप्त है,” स्नेहलता ने कहा, “कोई और विशेष बात तो नहीं हुई ?”

“केवल यही कि मुकदमा स्थगित होने तक रंजन ने मेरा साथ नहीं छोड़ा ।”

लता मुस्कराई—“इसी की मुझे आशा थी । क्या वह विपिन की प्रेरणा लिये हुए था ?”

“यह कहना कठिन है, किन्तु सब-कुछ जानते-बुझते हुए भी विपिन का आज अदालत में न आना यह तो प्रदर्शित करता ही है कि वह बिल्कुल बेकसूर नहीं ।”

“खैर, कोई बात नहीं । धीरे-धीरे स्थिति स्वयमेव स्पष्ट हो जायगी ।”

“हाँ,” वकील ने हाँ-मैं-हाँ मिलाई और थोड़ा झिझककर बोला—“एक बात और है ।”

“कहिए ?”

“मुकदमा लंबा होता देखता है । क्या यह ठीक न होगा कि एक मुस्त

फीस के बजाय प्रत्येक पेशी के हिसाब से फीस तय हो जाय ।”

स्नेहलता के मस्तक पर किंचित् खीझ के बल पड़ गए; पर उसने शान्त स्वर में जवाब दिया, “मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। आप ही ने पहले एक-बारगी फीस को श्रेष्ठतर समझा था।”

“हाँ, किन्तु...” वह रुका।

“जिस ढंग से आप फीस लेना चाहें, मुझे लिख भेजिए,” स्नेहलता ने बात को समाप्त करते हुए कहा।

स्नेहलता ने रिसीवर रख दिया और बाहर निकल आई। बरामदे में ही उसे विपिन मिल गया।

“टेलीफोन—करने गई थीं आप ?” विपिन ने उड़ती हुई वाणी में पूछा।

“करने नहीं, सुनने गई थी,” लता ने नेत्रों द्वारा विपिन को चीरते हुए कहा, “मेरे वकील का टेलीफोन था।”

“अच्छा !” विपिन के स्वर में उत्सुकता थी।

“तुम्हारा रंजन मुकदमे में खूब दिलचस्पी ले रहा है !” स्नेहलता के स्वर में थोड़ा व्यंग्य था।

“मेरा रंजन !” विपिन ने किंचित् क्रोध और आश्चर्य प्रदर्शित किया, “मैंने तो उसे कोई हिदायत नहीं दी थी।”

“अच्छा ! एक मास की तारीख पड़ी है। इसी बीच तुम्हें पक्का निश्चय करना होगा।”

विपिन ने कुछ जवाब न दिया और स्नेहलता भी उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही अपने कमरे की ओर चल दी। हाँ, उसे अब निश्चय करना ही होगा; पर क्या, यह सोचता हुआ विपिन भी कमरे की ओर बढ़ चला।

२०

तीन-चार दिन बीत गए, किन्तु विपिन कोई भी निश्चय न कर सका। शिवा अब पूर्ण रूपेण भगड़े से पीछे हट जाने के हक्क में थी, पर विपिन उससे सहमत नहीं होना चाहता था। उसे भगड़ा अवश्य करना चाहिए, यह भी जोर

बेकर वह नहीं कहता था। इसी असमंजस में वह पड़ा था कि उसे एक ही डाक से दो पत्र मिले। दोनों दिल्ली से आए थे। एक पत्र था रंजन का और दूसरा चित्रा का। उसने पहले चित्रा का पत्र खोला।

चित्रा ने दो-चार लकीरें ही लिखी थीं, “मुझे मालूम हुआ है कि निकट भविष्य में शिवा और तुम दिल्ली आ रहे हो। कृपया लिखो, कब पहुँचोगे, ताकि मैं स्टेशन पर गाड़ी लेकर आ सकूँ। यहाँ आजकल मौसम अच्छा है। कोठी का एक भाग मैंने तुम दोनों के लिए ठीक-ठाक करवा दिया है। शेष मिलने पर।”

पत्र पढ़कर विपिन आश्चर्य-चकित रह गया। उसने स्वप्न में भी दिल्ली जाने की बात नहीं सोची थी। इसमें रहस्य क्या है, यह सोचते हुए रंजन का पत्र खोलने लगा। उसकी दो-चार लाइनें पढ़ते ही रहस्य खुल गया। रंजन ने लिखा था, “मैं कल यहाँ आया हूँ और यहाँ के दो-एक चोटी के वकीलों से आपके केस की बात की है। उनका मत आशा और उत्साह से परिपूर्ण है, पर वे आपसे बातचीत करना चाहते हैं। इसलिए यदि आप अति शीघ्र यहाँ आ सके, तो बहुत ठीक रहे। शिवा जी को साथ अवश्य लाइएगा; क्योंकि जिस पैनी सूझ और क्षमता से वह प्वाइंट को पकड़ती है, हम उसे नहीं छू सकते। इसलिए भविष्य के कार्यक्रम का निश्चय करते हुए उनका दृष्टिकोण हमें सदा सामने रखना चाहिए। कृपया लिखिए, आप दोनों कब यहाँ पहुँचेंगे? बिलंब न कीजिए। आपका उत्तर आते ही मैं आपके ठहरने का सारा प्रबन्ध कर दूँगा। शिवा जी से मिलने के लिए मेरी माताजी भी बहुत उत्सुक है। आशा है, आप निराश न करेंगे।”

उसने पत्र समाप्त ही किया था कि शिवा भी आ पहुँची।

“किसका पत्र है, भैया?” शिवा ने पूछा।

“यह पत्र है रंजन का और एक पत्र चित्रा का भी आया है।” उसने दोनों पत्र शिवा की ओर बढ़ा दिए।

शिवा पास की कुर्सी पर बैठ गई तथा उन्हें पढ़ने लगी। विपिन सोच में डूबा शिवा की ओर देखने लगा। रंजन कितना अच्छा है ! यथार्थ में वह सुहृद

का रूप धारण कर रहा है । यहाँ भी मुकदमे से जानकारी प्राप्त करने के लिए वह स्वयमेव कचहरी पहुँचा और दिल्ली में भी हमारी ही चिंता में व्यस्त है । निश्चय चाहे हम कुछ भी करें, उसके निमंत्रण की अवहेलना हमें नहीं करनी चाहिए । एक बार दिल्ली जाना ही होगा । वहाँ न जाना कृतघ्नता होगी । देखें शिवा क्या कहती है ।

इसी बीच शिवा ने दोनों पत्र पढ़ लिए । रंजन का पत्र पढ़ते-पढ़ते उसके ओठों पर व्यंग्य की एक मुस्कान खेलने लगी, जो विपिन की दृष्टि से छिप न सकी । उसने दोनों पत्र समाप्त करके तिपाई पर रख दिए और भाई की ओर देखा उसकी मुस्कान अभी मिटी न थी ।

“मुस्करा रही हो ?” विपिन ने कहा ।

“हाँ, दोनों पत्रों की विभिन्न शैलियों ने ऐसा करने को बाध्य किया ।”

“क्या मतलब ?” विपिन के स्वर में थोड़ी खीसा थी ।

“सचाई और चतुराई को एक साथ हृदयंगम करते हुए मनुष्य किंचित् अनुत्तुलित हो ही जाता है ।

“तो तुम्हें रंजन के पत्र में चतुराई दीखी है ?”

“वह किसे नहीं दीखेगी ? उसने इतने मोटे ढंग से बात की है कि शायद वह स्वयं भी उसे छिपाना नहीं चाहता ।”

“किसे ?”

“अपने स्वार्थ को ।”

“तो तुम्हें उसके पत्र में स्वार्थ की गंध आई है”, विपिन का स्वर कटु हो चला, “जहाँ कि मुझे उसका पत्र सौहार्द से ओत-प्रोत प्रतीत हुआ । खंर, छोड़ो इस बात को । यह बताओ कि मेरे साथ दिल्ली चलोगी ?”

“तो आपने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया है ?”

“हाँ !” विपिन ने ऐसे कहा, मानो शिवा ने उसे कोई चुनौती दी हो, जिसे वह स्वीकार कर रहा हो ।

“तब तो मुझे जाना ही होगा ।”

“मैं तुम्हें मजबूर नहीं कर रहा, यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ,” विपिन

का स्वर उत्तेजित था ।

“बहुत अच्छा !” शिवा का स्वर आवश्यकता से अधिक शांत था ।

विपिन उठकर कमरे में टहलने लगा । शिवा पास वाली कुर्सी पर बैठ गई । शिवा आवश्यकता से अधिक वहम और अविश्वास का शिकार क्यों हो रही है, विपिन इसे उधेड़-बुन रहा था । भैया को रंजन में इतना आकर्षण क्यों दीख रहा है कि सब-कुछ भूलकर उसके इशारों पर नाचने को तैयार हो गए हैं, शिवा को यह चिन्ता थी । रंजन के मन के भीतर का स्वार्थ और शायद पाप, जो उमे स्पष्ट दीख रहे हैं, भैया क्यों नहीं देख पाते ? यह उन्हें कौन दिखा सकता है और कैसे ? चित्रा ? शायद हाँ ! शिवा को कुछ ढाढ़स बँधा । दिल्ली में यदि रंजन है, तो चित्रा भी तो हैं । दिल्ली जाने में उसे जो आपत्ति थी, वह एक सीमा तक दूर हो गई ।

‘क्या शिवा के अविश्वास में कुछ भी तथ्य है,’ विपिन सोच रहा था ‘आखिर संसार में सभी तो देवता हो नहीं सकते । मानव में गुणों के साथ दोषों का होना भी तो अनिवार्य है । रंजन ने यह तो कभी कहा नहीं कि वह आदर्श है । हाँ, व्यवहार-कुशल, सांसारिक पुरुष होने का दावा शायद वह करता है । और जिस परिस्थिति में विपिन पड़ा है, उसे रंजन-जैसे कुशल कर्त्ता की आवश्यकता है, न कि स्वप्नद्रष्टा आदर्शवादी की । दिल्ली तो उन्हें अवश्यमेव जाना होगा । पर वे ठहरेंगे कहाँ ? चित्रा के घर ? उसे रंजन के निमन्त्रण की बात किसने बता दी ? यदि उसके अनजाने चुपके से दिल्ली हो आते, तो शायद ठीक रहता ।’

“कब चलोगे दिल्ली ?” सहसा शिवा ने पूछा ।

विपिन कुछ चौंक उठा—“तुम्हारी क्या सलाह है ?”

“जो तुम्हारी है । कल चले चलो । आज चित्रा को तार दे दो !”

“चित्रा को ?” विपिन का स्वर अनिश्चित-सा था ।

“तो तुम उसके यहाँ नहीं जाना चाहते ? मैं तो वहीं ठहरेगी ।”

“ठहरना तो मुझे भी शायद वहीं पड़ेगा, किन्तु...” इसके आगे विपिन ने कुछ नहीं कहा ।

“वह शायद तुम्हारे और रंजन के षड्यंत्र में बाधा डाल दे, यह सोच रहे हो ?”

“षड्यन्त्र कैसा ?” विपिन के स्वर में किंचित् आश्चर्य था ।

“उसकी कोई रूप-रेखा तुम्हारे मस्तिष्क में बन नहीं पाई है, यह मैं मानती हूँ; किन्तु वह दुःस्वप्न की भाँति तुम्हारे मस्तिष्क के कोरों पर मँडरा नहीं रही, इस पर भी मैं विश्वास नहीं कर सकती। दिल्ली-यात्रा में मुझे यही भय दिखता है ।”

“तुम्हारा भय निर्मूल है !” विपिन ने जोर से कहा ।

शिवा ने एकाएक कुछ जवाब नहीं दिया । कोमल स्नेह-स्निग्ध मुद्रा से आधा क्षण भाई की ओर देखा और फिर बोली—“भैया !”

“कहो,” अब की बार विपिन का स्वर भी कोमल था ।

“एक बात मानोगे ?”

“क्या ?”

“अभी से रंजन को सुहृद का पद न दे दो । उसकी बातचीत, उसके रंग-ढंग को कुछ दिन ध्यानपूर्वक देखो, तब किसी निश्चय पर पहुँचो । क्या ऐसा करोगे ?”

“हाँ, किन्तु...”

“किन्तु-वितु कुछ नहीं, तुम्हें ऐसा करना ही होगा,” शिवा के स्वर में सच्ची प्रार्थना थी, “यह वचन देना ही होगा ।”

“वचन मैं दिये देता हूँ पर तुम भूल में हो ।”

“हो सकता है । वचन के लिए धन्यवाद !

कुछ देर दोनों चुप रहे । फिर विपिन बोला—“माँ से पूछना चाहिए ?”

“माँ से पूछे बगैर जाना क्या ठीक होगा,” शिवा ने कहा ।

“तो यह काम तुम्हें ही करना होगा । क्या कहोगी ?”

“पूछूंगी, और क्या ?”

“कैसे ?”

“सीधे-सादे शब्दों में,” शिवा मुस्कराई ।

“वह तो मैं जानता हूँ। मेरा मतलब यह नहीं था। मैं चाहूँगा कि रंजन की बात उसे न बताई जाय। चित्रा के पत्र को आग्रह का रूप दे देना।”

“बहुत अच्छा। अभी पूछ आऊँ?”

“अभी?”

“क्यों, क्या हर्ष है?” शिवा बोली, “मैं अभी चली।”

भाई के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शिवा तेजी से द्वार की ओर बढ़ गई।

२१

शिवा जब माँ के कमरे में पहुँची, तो वह वहाँ न थी। नौकर कमरे की सफाई कर रहा था।

“माँ जी कहाँ हैं?” उसने नौकर से पूछा।

“साथ वाले कमरे में हैं।”

साथ वाले कमरे का परदा हटाकर शिवा ने अन्दर झाँकी, तो आश्चर्य-चकित रह गई। कमरे में बिछी हुई चटाइयों पर दस-बारह मँले-कुचले बच्चे, जिनमें कुछ लड़के और कुछ लड़कियाँ थीं, तथा एक अधेड़ावस्था का पुरुष बैठे भोजन कर रहे थे। दो नौकरों की सहायता से स्नेहलता बहुत ही स्नेह और श्रद्धा से भोजन स्वयं परस रही थी। शिवा आधा क्षण यह दृश्य देखती रही, फिर कमरे में धुस गई। उसके धुसते ही स्नेहलता की दृष्टि उस पर पड़ी। शिवा ने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया। स्नेहलता ने मुस्कराकर उसका स्वागत किया।

“मैं भी कुछ मदद करूँ, माँ जी?” शिवा ने पूछा।

“बड़े शौक से,” स्नेहलता ने अनुमति दी।

शिवा ने एक नौकर के हाथ से रायते से भरा चीनी का बड़ा बर्तन ले लिया और प्रत्येक के आगे पड़ी हुई चीनी की चमचमाती प्लेटों में बड़े चम्मच से उसे परसने लगी। जब शाक, दाल, रायता आदि परसा जा चुका, तो नौकर गरम-गरम पुरियाँ ले आया। बच्चे आनन्द-विभोर होकर भोजन पर टूट पड़े

और अर्धेड़ावस्था दाता पुरुष प्रान्त, किंतु थोड़ा हिचकिचाते हुए खाने लगा । लगभग पन्द्रह मिनट तक खाने का सिलसिला चलता रहा और यह सारा समय स्नेहलता और उसकी देता-देखी शिवा एक-एक भोजन करने वाले को विशेष ध्यानपूर्वक खिलाती रहीं । भोजन समाप्त हो जाने पर बाहर के बरामदे में लाइफ बॉय साबुन से सबके हाथ धुलवाए गए । इसके बाद सबको लेकर स्नेहलता अपने कमरे में आई । कमरे के एक कोने में तिपाई पर कपड़ों का एक बड़ा-सा बंडल पड़ा था । उसकी ओर संकेत करते हुए उठाने अर्धेड़ावस्था के पुरुष को कहा — “मास्टर जी, उस बंडल में प्रत्येक बच्चे के लिए दो-दो जोड़े वस्त्र हैं और दो-दो साबुन की टिकियाँ हैं । ये इनको बाँट दीजिएगा । आपको इन्हें शिक्षा देने के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि इनमें से प्रत्येक के वस्त्र साफ रहें । तीसरे दिन इन्हें कपड़े धोकर बदलने होंगे । एक मास के बाद इसी दिन आग फिर इन्हें इधर लाइएगा । तब मैं देखूंगी, इन्होंने क्या सीखा और इनमें कितनी सफाई आई है ।”

“बहुत अच्छा, माता जी !” मास्टर ने कहा, “अब अनुमति दीजिए ।”

मास्टर तथा बच्चों ने हाथ जोड़कर स्नेहलता और शिवा को नमस्कार किया और चले गए ।

“अब कहो !” स्नेहलता ने शिवा से पूछा ।

“पहले आप बतलाइए कि ये लोग कौन थे ? मैं ठीक तरह से समझ नहीं पाई ।”

“ये थे पास के गाँव के अपढ़ गरीब बच्चे । मैं चाहती हूँ, ये थोड़ा-बहुत पढ़-लिखकर साफ-सुथरा रहना सीख जायँ । शहर के बच्चों की ओर तो इधर बनी दो-एक सामाजिक संस्थाओं का ध्यान गया है, किंतु गाँव के बच्चों के प्रति वे अभी तक विमुख हैं । इसलिए मैंने स्वयं ही इस ओर छोटा-सा पग उठाया है ।”

“आप धन्य है !” शिवा के मुँह से सहसा निकल पड़ा ।

किंतु स्नेहलता ने इस प्रशंसा की ओर ध्यान नहीं दिया और कहती चली गई, “अभी तो मैंने एक ही गाँव से श्रीगणेश किया है । पर सोच रही हूँ कि

यदि इस प्रयास में थोड़ी सफलता मिली, तो तीन-चार गांवों में एक साथ परीक्षण आरम्भ कर दूँगी।”

“अकेली ही ?”

“क्यों नहीं। समय भी मेरे पास बहुत है और साधन भी हैं। “हाँ, यदि कोई सच्चे हृदय से मेरा साथ देना चाहे, तो मैं उसका स्वागत करूँगी। खैर, इस पर फिर बात होंगी। अब बताओ, क्या बात है ?”

शिवा थोड़ी झिझकी, फिर बोली—“चित्रा का पत्र आया है।”

“अच्छा, क्या लिखा है उसने ?”

“कुछ दिनों के लिए दिल्ली आने का निमंत्रण दिया है। क्या हो आयें ?”

“दिल्ली का निमंत्रण ! यह क्यों ? क्या मेरे साथ केस लड़ने की सलाह के लिए तो नहीं ? नहीं, चित्रा ऐसी सलाह कभी नहीं दे सकती। यों ही बुलाया होगा। पर वहाँ जाने पर कुछ लोग विपिन को कुमार्ग की ओर ले जाने का प्रयत्न तो शायद करेंगे ही।’ यह सब-कुछ स्नेहलता निमिष-मात्र में सोच गई, फिर बोली—“हो आओ। दोनों जाओगे ?”

“हाँ !” शिवा ने संतोष की एक साँस ली।

“कल जाओगे ?”

“कल ही की सलाह है।”

“बहुत अच्छा ! विपिन से कहना कि वहाँ जाकर, यदि हो सके तो, किसी अच्छे जानकार से अपने काम-काज के विषय में पूछ-ताछ कर ले।”

“बहुत अच्छा !”

“कितने दिन ठहरने की इच्छा है ?”

“यही कोई दस-बारह दिन।”

“तो सात सौ रुपए में काम चल जायगा ? रहोगे तो तुम दोनों चित्रा के यहाँ ही ?”

“हाँ ! पर आपके ऊपर अतिरिक्त व्यय का भार डालने की नीयत से मैं नहीं आई थी,” शिवा के स्वर में कृतज्ञता तथा प्रशंसा थी।

“मैं जानती हूँ, किन्तु मेरा जो कर्तव्य है, वह तो मुझे पालन करना ही

हैं। मैं अभी चैंक भिजवा दूँगी।”

“धन्यवाद !” शिवा खड़ी हुई।

“जाने से पहले मुझसे मिलकर जाना,” स्नेहलता ने कहा, “मुझे चित्रा के लिए एक सन्देश देना है।”

“बहुत अच्छा !” शिवा माँ को नमस्कार करके चली गई।

विपिन उसकी प्रतीक्षा में बैठा एक जासूसी उपन्यास पढ़ रहा था। शिवा के विलम्ब पर बार-बार भुँभुला रहा था। इसलिए उसका मन पढ़ने में नहीं लग रहा था। जब शिवा लौटी, तो पुस्तक उसने तिपाई पर फेंक दी और भूकुटि चढ़ाकर कहा, “तुमने तो देर की हद कर दी।”

“हाँ, कुछ देर हो गई। माँ के साथ काम करवाने लग गई थी।”

“वह कौन सा इतना जरूरी काम था ?” विपिन ने थोड़ी उत्सुकता से पूछा।

“कुछ अतिथि आए हुए थे। उनको भोजन करवाना था,” शिवा का स्वर गम्भीर था।

“अतिथि कौनसे ?”

“पास के गाँव के कुछ गरीब बालक-बालिका थे।”

“गरीब बालक-बालिकाएँ ! वह क्यों ?”

“इसलिए कि वे भी हमारे जैसा ही हृदय रखते हैं।”

“ओह, अब समझा !” विपिन के स्वर में तीखा व्यंग्य था, “अब हमारी माँ जी समाज-सुधार की ओर अग्रसर हुई हैं—उसके द्वारा सस्ती प्रशंसा लूटने के लिए।” कहते-कहते विपिन खिलखिला कर हँसा।

“भैया, मुझे तुम्हारी ओर से चिंता हो रही है,” शिवा का स्वर थोड़ा कठोर था।

“कहीं मेरा मस्तिष्क तो विकृत नहीं हो चला, यह सोचकर ? छोड़ो इस बात को। दिल्ली जाने के विषय में क्या कहती है ?”

सहर्ष जाने की अनुमति दे दी और साथ ही····” शिवा ने अभी वाक्य भी ससाप्त नहीं किया था कि नौकर ने प्रवेश किया। उसके हाथ में एक चेक था,

जो उसने शिवा को पकड़ा दिया और लौट गया। शिवा ने अपना अधूरा वाक्य समाप्त किया, “यात्रा के खर्च के लिए यह सात सौ रुपए का चेक भेजा है।”

शिवा ने चेक भाई की ओर बढ़ा दिया। विपिन ने चेक की ओर देखते हुए पूछा—“तुमने रुपया माँगा था ?”

“नहीं !”

“इस नारी के स्वभाव को पूरी तरह समझना कठिन है। मैं समझता हूँ, परस्पर विद्रोही भावनाओं की यह खान है। इससे झगड़ना बहुत ही कठिन होगा।”

“अवश्य झगड़ोने क्या ?”

“मने यह तो नहीं कहा, किन्तु क्या जिना झगड़े हम पार लग सकेंगे, प्रश्न तो यह है ?”

“तो इस प्रश्न का उत्तर है ‘अवश्य’ !”

विपिन मुस्कराया, “मेरी कितनी इच्छा होती है कि मेरे मन में भी तुम्हारी तरह विश्वास जम जाय। किन्तु उसे जमा पाऊँगा, इसकी मुझे आशा नहीं।”

“क्यों नहीं ?”

“कौन जाने,” विपिन सहसा बहुत गंभीर हो उठा और फिर बोला, “तुम और मैं इतने भिन्न क्यों हैं, शिवा ? क्या तुम अपने पिता का प्रतिरूप हो और मैं अपनी माता का ? मेरी माता ! पिता को हम दोनों ने देखा है पर माता की एक बहुत ही धुंधली-सी स्मृति मेरे मानस-पट पर आज भी अंकित है और वह इतनी मधुर तथा सुन्दर है कि मुझे पूर्ण विश्वास है, जो-कुछ हमने अपनी माँ से ग्रहण किया है, वह अवश्य सत्य और सुन्दर होगा।” कहते-कहते विपिन का गला भर गया।

“इसमें क्या संदेह है।” शिवा ने कहा।

विपिन ने शिवा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अपनी कुर्सी से उठकर विचार-मग्न कमरे में टहलने लगा। एक मिनट के बाद फिर अपनी कुर्सी पर आ बैठा और बोला—“तुमने इस रुपए के लिए माँ का धन्यवाद दे दिया है क्या ?”

“हाँ ।”

“क्या मुझे भी धन्यवाद करना चाहिए ?”

“चाहिए तो !”

“अब कहाँ होंगी ?”

“अभी तो अपने कमरे में थीं ।”

“तो जाता हूँ,” विपिन ने कहा और धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गया ।

२२

अगले दिन दिल्ली जाने से पहले शिवा माँ के पास पहुँची । वे अपने कमरे में खड़ी थीं ।

“हो गई तैयारी ?” माँ ने खड़े-खड़े ही पूछा ।

“हाँ । आपसे आज्ञा लेने आई हूँ ।”

कमरे के कोने में एक तिपाई पर एक काफी बड़ा खाकी रंग का लिफाफा पड़ा था । स्नेहलता ने आगे बढ़कर उसे उठा लिया और उसे लेकर शिवा की ओर आ गई ।

“यह मेरी ओर से एक छोटी सी भेंट चित्रा को दे देना,” उसने शिवा को लिफाफा पकड़ाते हुए कहा ।

“क्या है, माँ जी ?” लिफाफा लेते हुए शिवा ने पूछा ।

“एक साड़ी और ब्लाउज़-पीस है । देखो तो कैसे है ?”

शिवा ने दोनों चीजें लिफाफे में से निकाल लीं और ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखा । साड़ी नीले रंग की बढ़िया जॉर्जेट की थी । उस पर मशीन द्वारा नहीं, बल्कि किसी मजे हुए किन्तु अज्ञात कलाकार की कूची द्वारा स्वाभाविक रंगों में गुलाब के फूल और सुन्दर बेल-बूटे चित्रित थे । शिवा ने ऐसी साड़ी कभी नहीं देखी थी । उसे देखकर वह मुग्ध हो गई । उसने पूछा — “माँ जी, यह कहाँ से ली ?”

“लीलाराम के यहाँ से । उनके पास एक ही पीस आया था, जिसे मैं

खरीद लार्ड ! तुम्हें यह अच्छी लगी ?”

“बहुत । कितनी कोमल जॉर्जेट है, कितनी सुन्दर चित्रकारी है ! चित्रा पर यह खिलेगी भी खूब !”

“तुम पर भी तो कम नहीं खिलेगी,” स्नेहलता ने कहा, “तुम्हारे लिए भी ऐसी ही एक साड़ी का आर्डर में दे आई हूँ । तुम्हारे दिल्ली से लौटने पर तैयार होगी ।”

“मेरे लिए ?” शिवा आनन्द से गद्गद् हो गई, “हू-ब-हू ऐसी ही ?”

“थोड़ा फर्क चाहे हो ।”

“उसकी कोई बात नहीं ।”

“ब्लाउज-पीस कैसा है ?” लता ने पूछा ।

शिवा साड़ी में ही इतनी निमग्न हो गई थी कि उसका ध्यान ब्लाउज-पीस पर गया ही न था । अब उसने उसका निरीक्षण किया । वह था तो जरी का, किन्तु रेशम से भी अधिक मुलायम था ।

“यह भी बहुत सुन्दर है,” शिवा ने कहा ।

“अच्छा, तो ये दोनों चीजे मेरे आशीर्वाद के साथ चित्रा को भेंट कर देना ।

“बहुत अच्छा !”

“जा कैसे रहे हो ?”

“शिमला से कालका मोटर द्वारा और कालका से दिल्ली तक गाड़ी में ।”

“सीटें आदि रिजर्व हो गई ?”

“हाँ !”

“चित्रा को सूचित कर दिया है ? यदि नहीं, तो मैं टेलीफोन पर उसे सूचना दे दूंगी ।

“धन्यवाद ! रात भैया ने टेलीफोन कर दिया था ।”

“चलो, यह भी ठीक हुआ । सँभलकर जाना !” कहते-कहते स्नेहलता थोड़ा आगे बढ़ गई । स्नेह से शिवा के सिर पर हाथ फेरा और उसकी पीठ सहलाई । शिवा ने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया और द्वार की ओर चल

जब वह अपने कमरे में पहुँची, तो विपिन किंचित् उतावली से कमरे में टहल रहा था। कलाई पर बँधी हुई घड़ी की ओर देखता हुआ बोला — “तुमने काफी देर लगा दी। हाथ में क्या है ?”

“बातचीत समाप्त होने पर ही आ सकती थी। यह माँ ने चित्रा के लिए भेंट दी है।”

“अच्छा !”

“देखो तो कैसे हैं ?” शिवा ने साड़ी तथा ब्लाउज़-पीस विपिन के हाथ में पकड़ा दिए।

विपिन ने उड़ती हुई दृष्टि से उसे देखा और बोला — “अच्छी है।”

“अच्छी नहीं, बहुत अच्छी है। माँ जी मेरे लिए भी ऐसी ही साड़ी का आर्डर दे आई हैं।”

“अच्छा !” विपिन थोड़ा मुस्कराया, “यह माँ रागी मेरी बहन और मेरी चित्रा को मुझसे विमुख करके ही चैन लेगी !”

“भैया,” शिवा के स्वर में सच्चा दुःख और थोड़ा क्रोध था, “प्रत्येक बात को तुम विकृत दृष्टिकोण से क्यों देखते हो ? इतने स्नेह सने व्यवहार में भी तुमको बुराई ही दीखती है !”

किंतु विपिन ने शिवा के दुःख और क्रोध की ओर ध्यान न दिया और बोला—“ये बातें रास्ते में निश्चित कर लेंगे। अब हमें चलना चाहिए। कुली सामान लेकर काफी देर हुई जा चुके हैं।”

शिवा ने थोड़ा मुँह फुलाकर कहा—“चलो, मैं तो तैयार ही हूँ। क्या तुम माँ से मिलकर नहीं जाओगे ?”

विपिन ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह उतावली से कमरे से बाहर चला गया और दो ही मिनट में लौट आया, “अब चलो। मिल आया।”

इस बीच शिवा ने एक अटैची-केस में वह साड़ी तथा थोड़ा दूसरा सामान रखकर उसे तैयार कर लिया था। विपिन ने अटैची-केस उठा लिया।

“धन्यवाद !” शिवा ने कहा और भाई के साथ कोठी से बाहर निकल आई।

दोनों धीरे-धीरे चुपचाप मोटर-स्टैंड की ओर चल पड़े। जब इसी तरह काफी दूर चलते गए, तो विपिन बोला—“तुमने तो खूब चुप्पी साधी है।”

“मैंने या तुमने ?” शिवा ने कहा, “यात्रा से घबराहट तुम्हें है और भुँभला मुझ पर रहे हो।”

“इसमें घबराने की कौन सी बात है। कौन सी पृथ्वी-प्रदक्षिणा करने जा रहे हैं।”

“तो फिर हँसते-खेलते चलो। कुछ नहीं, तो चित्रा के स्वप्न देखते ही आनन्द-विभोर होते चलो,” शिवा के स्वर में शरारत थी।

विपिन हँसने लगा, “तुम अपनी जिह्वा को काबू में नहीं रख सकती क्या ? यदि मैंने कुछ कह दिया, तो ?”

“मुझे तुम कह ही क्या सकते हो।” शिवा ने दूसरे ही क्षण स्वर बदल दिया, “क्षमा माँगती हूँ, भैया ! तुम नहीं, तो मैं ही चित्रा भाभी के स्वप्न देखती चलूँगी।”

“इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं।”

“कभी-कभी मैं सोचती हूँ, भैया”, शिवा सहसा गम्भीर हो चली, “कि तुम्हारे कौन से पुण्यों के फल के कारण चित्रा-जैसी साथिन तुम्हें मिल रही है।”

“चित्रा आकाश-कुसम-सी सुन्दर, ओस-सी निर्मल, स्वर्ग की अनिष्ट देवी, विशाल हृदया, सुलक्षणा, सुदर्शना, चित्रा यह, चित्रा वह—यह सब ठीक, पर क्या तुम्हारा चित्रा से ब्याह कर देता।”

शिवा भी खिलखिला कर हँसने लगी। इसी बीच वे दोनों मोटर-स्टैंड पर पहुँच गए। उनके पहुँचने से पहले ही कुलियों और उनके नौकर ने उनका सामान मोटर में ढंग से रखवा दिया था। वे दोनों मोटर में जा बैठे। एक मुसाफिर उनसे पहले ही बैठा था और चौथे की प्रतीक्षा थी। वह मुसाफिर अधेड़ावस्था पार किये हुए एक स्थूलकाय बातूनी पुरुष था।

“शिमला-कालका-यात्रा में आपका जी तो नहीं घबराता ?” उसने विपिन से पूछा।

“नहीं, और आपका ?”

“साहब, क्या पूछते हैं, कुछ दिन पहले तक तो मुझे कुछ भी नहीं होता था; पर पिछली बार तो मेरा बू बुरा एज हुआ कि क्या कहूँ। समुद्र-यात्रा तथा हवाई यात्रा द्वारा यूरोप-अमरीका तक हो आया हूँ, पर कभी कुछ नहीं हुआ। यहाँ के हिल-स्टेजनों के अनेक चक्कर काट चुका हूँ, पर सदा फूल-सा ताजा बना रहता था। किन्तु इस शिमले की यात्रा ने मुझे हरा दिया। जो-कुछ खा-पीकर चला था, सब बाहर। आज लगभग भूखे ही यात्रा कर रहा हूँ। केवल दो टोस्ट, दो अण्डे, थोड़ा-सा दलिया, दो कप दूध, थोड़े से फल, एकाध टुकड़ा मिठाई का, यही खाया है। देखें, यात्रा कैसी रहती है।”

अपनी हँसी रोकते हुए विधिन बोला — “शिमला-कालका की सड़क में मोड़ बहुत तीखे हैं। इसीलिए आप अपने को सँभाल नहीं लके।”

उसने घृणा-मिश्रित स्वर में प्रतिवाद किया, “शिमला-कालका सड़क के मोड़ ? मैंने ऐसे-ऐसे तीखे मोड़ों पर मोटर द्वारा तफ़र किया है, जिनके सामने इस सड़क के मोड़ सीपी लकीर-से लगते हैं। तीखे मोड़ों की नहीं, यह समय की बात है।” एकाएक वह दार्शनिक हो गया।

ठीक उस समय वह अंतिम मुसाफिर भी आ पहुँचा। और वह थी फ्रॉक पहने एक देशी मेम। मुँह का काला रंग तो पाउडर, रुज और लिपस्टिक की सहायता से किंचित् छिप गया था, किन्तु अर्द्ध ढँकी बाहें और हाथ उसके आबनूस से काले रंग की दुहाई दे रहे थे। वह नाक चढ़ाए हुए मोटर को ओर बढ़ी आ रही थी। पास खड़े हुए ड्राइवर की ओर देखकर बोली, “यही है तुम्हारी मोटर ? इसमें से बू क्यों आ रही है ?”

“पेट्रोल की बू तो प्रत्येक मोटर से आती है।”

“पेट्रोल की बू !” मेम जरा तीव्र स्वर में बोली, “तो तुम्हारे खयाल में हम पेट्रोल की बू को नहीं जानता।

“यह पेट्रोल की बू नहीं, तो आदमी की बू ही हो सकती है,” ड्राइवर ने मुस्कान छिपाते हुए कहा, “मेम साहब, अब बैठिए, ताकि चलें।”

“सब्र करो, हम अभी बैठता है,” मेम साहबा ने कहा और एक बार मोटर

में बैठे दोनों मुसाफिरों की ओर अभिमान-भरी दृष्टि से देखा और फिर धीरे-धीरे अपने स्थान पर जा बैठी। उसके बैठते ही ड्राइवर ने गाड़ी चला दी।

२३

अगले दिन दिल्ली के स्टेशन पर जब विपिन और शिवा ट्रेन से उतरे, तो चित्रा उनके स्वागत के लिए प्लेटफार्म पर खड़ी थी। रेखा भी उसके साथ थी। जब नमस्कार तथा प्रतिनमस्कार समाप्त हो गए, तो शिवा ने रेखा को सम्बोधित करते हुए कहा —“तुमने भी कृपा की है। धन्यवाद !”

“हाँ। जब विपिनजी का टेलीफोन आया, तो मैं चित्रा के पास ही बैठी हुई थी। वहाँ शिमले का क्या हाल है ? स्केंडल प्वाइंट पर तो खूब चहल-पहल होगी ?”

“हाँ, आत्म-प्रदर्शन का रोग उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। दिल्ली का क्या हाल है ?”

“अभी तब-कुछ दीख जायगा,” अब के चित्रा बोली, “यह तो बताओ, तुम लोगों ने मुझे तो बताया नहीं और रंजन से यहाँ आने की सारी बात पक्की कर ली !”

“सो कैसे ?” विपिन के स्वर में आश्चर्य था।

“यदि मुझे सौभाग्य से पता न चल जाता, तो यहाँ आकर भी शायद तुम लोग मेरी ओर से विमुख ही रहते।”

“मैंने कोई बात पक्की नहीं की थी, चित्रा !” शिवा स्पष्ट करने लगी, “इस विषय में रंजन का तथा तुम्हारा पत्र हमें इकट्ठे ही प्राप्त हुए थे।”

“सच ?”

“बिलकुल !” विपिन बीच में बोल उठा, “और तुम्हारा पत्र, जो मैंने स्वभावतया पहले खोला, पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ।”

“अब कहो, रेखा ?” चित्रा ने रेखा की ओर उलहने भरी मुद्रा से देखा।

“यह रंजन इतना चालाक है कि किसी दिन अपनी गरदन पर छुरी चला देगा।” रेखा के स्वर में खीझ थी, “अभी उससे पूछूंगी।”

इस बीच कुलियों ने सामान गाड़ी के डिब्बे से बाहर निकालकर सिरों पर उठा लिया था। उन्हें साथ लेकर सभी प्लेटफार्म से बाहर चल दिए। चित्रा ने सामान शोफर के हवाले करके उसे तांगे में खोड़ी पहुँचाने का आदेश दिया और उन्हें बाहर खड़ी हुई अपनी मोटर में ले गई।

“तुम चलाओगी इसे ? क्या दिल्ली की भीड़-भाड़ में इसे चलाते हुए तुम्हें भय नहीं होता ?” शिवा ने पूछा।

“आरम्भ में तो अवश्य घबराती थी, किन्तु अब अभ्यस्त हो गई हूँ।”

कहते-कहते चित्रा ने मोटर स्टार्ट कर दी और कुछ ही मिनटों में उन्हें अपनी कोठी ले पहुँची। चित्रा के माता-पिता कोठी के बड़े बरामदे में उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे। शिवा और विपिन ने उग दोनों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

“पहले चाय पी लो,” चित्रा की माँ ने कहा, “मुँह-हाथ तो तुम गाड़ी में ही धो चुके होगे ?”

“हाँ !”

वह सबको खाने वाले कमरे में ले गई। मेज तरह-तरह के खाद्य-पदार्थों से सुसज्जित थी। चाय की प्यालियाँ भी ढंग से लगी हुई थीं। उनके बैठते-बैठते गर्म चाय तथा दूध भी नौकरों ने प्रस्तुत कर दिए।

“तुम्हारी माँ जी का क्या हाल है ?” चित्रा की माँ ने विपिन से पूछा।

“अच्छी तरह से है,” विपिन ने उदासीन स्वर में कहा।

“आपको नमस्कार भेजा है उन्होंने,” शिवा ने मधु-मिश्रित स्वर में कहा।

“और मुझे ?” चित्रा ने किञ्चित् उत्सुकता से पूछा।

“तुम्हारे लिए वह चीज भेजी है कि देखते ही उछल पड़ो !”

“अच्छा, क्या है वह ?”

विपिन मुस्कराया—“साड़ी के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?”

“अच्छा”, चित्रा को विपिन का कथन उचित नहीं जँचा, “साड़ी क्या ठीक नहीं होती ? मुझे तो साड़ी ही भाती है। तुमको तो शायद आकाश-कुसुम ही लुभा सकें।”

विपिन लज्जित हुआ, पर लज्जा को छिपाते हुए जरा ऊँचे स्वर में हँसने लगा। इतने में साथ वाले कमरे से टेलीफोन की घण्टी बज उठी।

“यह रंजन का फोन होगा,” रेखा ने कहा।

“देखती हूँ,” चित्रा बोली और टेलीफोन वाले कमरे की ओर गई। वह दो ही मिनट में लौट आई और बोली, “हाँ, रंजन का ही फोन था। स्टेशन से बोल रहा था।”

“स्टेशन से ?” रेखा ने प्रश्न किया।

“हाँ, इन लोगों को लेने के लिए गया था, पर रास्ते में उसकी मोटर बिगड़ गई, इसलिए देरी से अभी वहाँ पहुँचा है।”

“उसे किसने बताया कि हम इस ट्रेन से आ रहे हैं ?” शिवा ने पूछा।

चित्रा ने रेखा की ओर देखा। रेखा के कान थोड़े लाल हो गए। वह बोली—“इसकी कसूरवार मैं हूँ।”

“अभी यहीं आ रहा है,” चित्रा ने सूचित किया।

अभी वे चाय के मध्य में ही थे कि रंजन वहाँ पहुँच गया। चित्रा के माता-पिता को नतमस्तक होकर नमस्कार करके शेष सबको ‘हलो, हलो’ करते हुए उसने एक कुर्सी संभाल ली।

“तुम लोगों को चाहिए कि कुछ क्षण तो मेरी प्रतीक्षा करते !” रंजन ने रेखा और चित्रा की ओर देखते हुए कहा।

चित्रा तो चुप रही, किन्तु रेखा बोली—“वह क्यों ? तुम ही क्यों नहीं समय पर पहुँच गए ?”

“मेरी मोटर……”

“बिगड़ गई, जानती हूँ। उसकी संभावना रखकर क्यों नहीं चले ? तुम्हारे जैसे छकड़े के स्वामी के लिए तो यह और भी आवश्यक था।”

“छकड़ा !” रंजन बिगड़े हुए स्वर में आश्चर्य प्रकट करते हुए कहने लगा, “तुम्हारी दृष्टि में तीन वर्ष चली हुई ऑस्टिन अब छकड़ा हो गई ! अभी उस दिन इसके मुँहे दस हजार मिल रहे थे।”

“रूप या पैसे ? यदि पैसे भी मिलते हों, तो विलंब न करो, इसे बेच डालो !”

सब खिलखिलाकर हँसने लगे। चित्रा की माँ ने रंजन से सहानुभूति प्रकट की—“छोड़ो भी, रेखा, इस बात को। इतनी बुरी गाड़ी रंजन की नहीं है। आखिर देखो, कुछ ही मिनटों में स्टेशन से यहाँ आ गया है।”

इससे रंजन को प्रोत्साहन मिला—“यह क्या समझें इस कार की खूबियाँ, आँटी। आजकल के नए मॉडल जो आ रहे हैं, उन खिलौनों से यह सौ गुनी अच्छी है।”

“निःसंदेह !” रेखा व्यंग्य से बोली, “अब उसकी गुण-गाथा छोड़ो। कुछ खा-पी तो लो !”

रेखा एक प्याला खींचकर उसके लिए चाय बनाने लगी और रंजन का ध्यान मिठाइयों ने आकर्षित किया। पिस्ते की बर्फी का एक टुकड़ा मुँह में डालकर उसने उसी का दूसरा टुकड़ा भी उठा लिया। इस बीच रेखा चाय का प्याला बना चुकी थी। उसे रंजन की ओर बढ़ाती हुई बोली, “पिस्ते की बर्फी माना कि स्वादु होती है, पर और पदार्थ भी तो पड़े हैं। उनकी ओर भी तो ध्यान दो !”

धीरे-धीरे सबकी बारी आयगी। सबसे बढ़िया सबसे पहले, अपना तो यह सिद्धान्त है।”

“यह उचित हुआ कि बने भी वकील हो। कहीं कल्पना-साहित्य-सृष्टा बन जाते, तो भूखों मरते !” चित्रा ने कहा।

“वह कैसे ?”

“वकील सबसे बढ़िया वस्तु फीस को हाथ में लेकर तब काम आरम्भ करता है; किंतु कहानी, नाटक तथा उपन्यासकार सबसे अधिक प्रभावोत्पादक क्लाइमेक्स वाला स्थल अपनी रचना के अन्त में देता है। तभी तो यह कहा जाता है कि जो बालक मधुर वस्तु भोजन के अन्त तक सँभाले रखे, वही सफल कहानीकार बन सकता है।”

“बहुत खूब,” शिवा, विपिन तथा रेखा के मुँह से एक साथ निकला।

चित्रा के माता-पिता रहे तो चुप, किंतु उनके मुख भी गर्व से खिल उठे ।

“तुम नहीं मानते इसे ?” रेखा ने चुनौती-भरे स्वर में रंजन से पूछा ।

“इन्कार भी नहीं करता । वैसे इसमें चमत्कार अधिक, किन्तु सत्य आधा भी नहीं ।”

“पूर्ण सत्य कहाँ होता है, यह भी तो सुनें,” इस बार प्रश्न शिवा की ओर से उठा था ।

इससे रंजन चौंका, पर कुछ जवाब न दिया । मुस्कराकर बात टालते हुए कहने लगा, “सत्य और असत्य की परीक्षा हम सांसारिक मनुष्य क्या कर सकते हैं । यह तो संतों के लिए ही हम छोड़ दें, तो ठीक है,” फिर विपिन की ओर देखकर पूछा, “अभी कुछ काम तो नहीं तुम्हें ?”

“नहीं,” विपिन ने जवाब दिया ।

“तो चलो, थोड़ा घूम आयें ।”

विपिन ने चित्रा तथा उसके माता-पिता की ओर देखा, और जब उनके चेहरों पर स्वीकृति की झलक पाई, तो बोला—“चलो !”

“खाने के समय तक अवश्य आ जाना,” चित्रा की माँ ने कहा, “तुम भी खाना यहीं खाना, रंजन !”

“अवश्य आ जाऊँगा, ” विपिन ने कहा ।

“मैं तो क्षमा ही माँगूँगा । मैं आज कानून-मंत्री के यहाँ निमंत्रित हूँ,” रंजन ने कहा और विपिन को साथ लेकर कमरे से बाहर चला गया ।

२४

चित्रा की कोठी से बाहर निकलकर विपिन और रंजन दोनों रंजन की कार में आ बैठे ।

“अब कहाँ चले ?” रंजन ने पूछा ।

“मैं तो आपके हाथ में हूँ; जहाँ इच्छा हो, ले चलो !”

रंजन कहने लगा—“मैं सोच रहा था कि सबसे पहले आपको उसी कानूनी

सलाहकार के पास ले चलूँ, जिसके सामने चेंबर, उमेश आदि अभी नौ सिखिये हैं ।”

“तो चलिए !”

रंजन ने मोटर स्टार्ट कर दी और उसका मुँह शहर की ओर मोड़ दिया । कुछ ही देर में मोटर शहर की भीड़ में जा पहुँची । उस भीड़ में उलझता, उससे बचता रंजन अपनी मोटर को एक गली के बाहर ले पहुँचा । उसे वहाँ रोककर रंजन ने विपिन को उतरने को कहा । उसके पीछे ही रंजन भी उतर पड़ा और विपिन को साथ लेकर गली में घुस गया ।

गली के मध्य में बाईं ओर को एक बहुत पुराना मैला-कुचैला मकान था । उसी में रंजन विपिन को लेकर घुस गया । छोटा सा आँगन पार करके तंग तथा किञ्चित् अँधेरी सीढ़ियाँ थीं । उन पर वे दोनों चढ़ने लगे । उनके समाप्त होते ही वे एक कमरे में जा पहुँचे, जो काफी बड़ा था और जिसके चारों ओर पुस्तकों से ढसाढस भरी आल्मारियाँ खड़ी थीं । फर्श पर एक पुरानी दरी बिछ रही थी । जहाँ-तहाँ पुस्तकों के ढेर लगे थे । कमरे के आरम्भ में फर्श पर दीवार के सहारे कागजों से घिरा एक बूढ़ा-सा व्यक्ति बैठा कुछ तेजी से लिख रहा था । उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से नवागंतुकों की ओर देखा ।

“वकील साहब हैं ?” रंजन ने प्रश्न किया ।

मुन्शी ने हाँ में सिर हिला दिया और कमरे के अन्त में से दीखते हुए द्वार की ओर संकेत किया । वे दोनों उसी ओर चले गए और द्वार पार करके दूसरे कमरे में घुस गए । वहीं पुस्तकों से भरी एक मेज के निकट पड़ी हुई कुर्सी पर बैठे वकील साहब किसी पुराने दस्तावेज़ का निरीक्षण कर रहे थे । वे एक मैला-सा कुर्त्ता और धोती पहने थे । सिर के सफेद बाल रूखे थे और मुँह में पास पड़े हुए हुक्के की नली थी । मेज के एक ओर बढ़िया सूट पहने एक युवक कुर्सी पर बैठा ध्यानपूर्वक वकील की ओर देख रहा था । उन दोनों के घुसते ही वकील और युवक की दृष्टि ऊपर उठी ।

“हलो !” युवक रंजन की ओर देखकर बोला । वकील के होठों पर एक हल्की-सी मुस्कान की छाया पड़ी और उसने दोनों को मेज के इर्द-गिर्द पड़ी

कुर्सियों पर बैठने का संकेत किया। युवक ने पूछा, “तो मैं फिर कल इसी समय आ जाऊँ ?”

“कल ?” वकील ने दस्तावेज से दृष्टि हटाकर युवक की ओर देखा, “मौखिक सम्मति चाहते हो, तो कल आ जाना, अन्यथा परसों।”

“आपकी फ़ीस क्या होगी ?”

“यदि लिखवाकर लेनी है, तो १००) और यदि ज़वानी पूछ-ताछ करनी है, तो ५०)।”

“धन्यवाद !” युवक ने कहा, “परसों तक आप सम्मति लिख रखेंगे ?”

“अवश्य !” वकील ने कहा और रंजन की ओर देखकर पूछा, “आप कहिए ?”

युवक इस बीच उठ खड़ा हुआ था। जाने से पहले थोड़ा रुका और भिन्न-कते हुए पूछा, “यदि आपको कचहरी चलने का कष्ट दे, तब ?”

“तब एक हजार रुपया !” वकील ने कहा।

“इसका मतलब यह हुआ……”

वकील ने उसे वाक्य समाप्त न करने दिया, “हाँ, हाँ, इसका मतलब ठीक ठीक यही है कि मैं कचहरी-वचहरी न जा सकूँगा।”

इसके अनन्तर युवक ने कुछ नहीं कहा। वकील को नमस्कार तथा रंजन की ओर मुस्कराते हुए देखकर वह चला गया।

“यह मेरे मित्र विपिन जी है, जिनका परिचय मैं आपको दे चुका हूँ।”

“विमाता से जिनका भगड़ा है,” वकील ने उड़ती हुई दृष्टि से विपिन की ओर देखा, “हाँ मैंने इनके केस पर विचार कर लिया है। अजी साहब, जब आपने बात करने से पहले ही चेक दे दिया, तो क्यों नहीं आपको तरजीह दूँगा। इस लौंडे को देखा था। निकाह की शर्तों की भाँति झीस का किस्सा ले-बैठा था और सब-कुछ कह-सुनकर भी कोरे हाथ चलता बना।” वकील ने हुक्के के दो-तीन कश जल्दी-जल्दी खींचे — “खैर छोड़ो उसको। आपका केस इस्पात-सा मज़बूत तो नहीं, किन्तु लड़ा जा सकता है। आप उससे लड़ेंगे ?”

रंजन ने गम्भीर स्वर में जवाब दिया, “मैं तो हूँगा ही। उमेश जी भी होंगे शायद।”

“उमेश। तो ठीक है। शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में वह पटु है। विमाता का केस किसके सुपुर्द है?”

“उसकी देख-भाल श्री चँवर कर रहे हैं।”

“चँवर, दुबला-सा, लंबा-सा व्यक्ति है न?” वकील के मुख पर किंचित चिंता थी।

“हाँ। आप उन्हें जानते हैं?”

“जानता हूँ। वह बातों का नहीं, कानून का कीड़ा है। विमाता ने खूब सलाहकार चुना है।”

“तब?” रंजन ने संदिग्ध दृष्टि से वकील की ओर देखा।

“तब कुछ नहीं। खाकसार के सामने तो वह भी नौसिखिया ही है।”

रंजन का मुख खिल उठा और विपिन भी प्रसन्न हो गया। रंजन ने कहा—“आप हमें लिखकर पूरी सम्मति देने की कृपा कीजिएगा?”

“किंतु……” वकील रुका।

“फ्रीस आप जो कहेंगे, दे देंगे।” रंजन ने विपिन की ओर देखा। विपिन ने सिर हिला दिया।

“आप मुझे समझे नहीं। मैं फ्रीस की नहीं, फुरसत की बात करना चाहता था। आपका काम है लंबा और मेरे अन्नदाता हैं कई। मुझे दस दिन की मोहलत दे सकते हैं?”

किंतु विपिन के केस में अगली तारीख आठ ही दिन के अनन्तर पड़ती थी। अतः रंजन प्रार्थनात्मक स्वर में बोला—“दस को काटकर सात दिन नहीं हो सकेंगे क्या?”

वकील कुछ देर चुप रहा, सोचता रहा। फिर बोला—“अच्छा सात ही सही।”

“अब कृपया बताइए कि क्या पत्र-पुष्प आपको भेट करने होंगे।”

“काम देख लो, कितना है और कैसा कठिन है। आपसे एक हजार।”

“एक हजार ।”

“हाँ, यदि शाम तक भेज देंगे, तो काम शुरू कर दूंगा ।” यह कहकर वकील ने मेज़ पर पड़ा हुआ दूसरा लिफाफा उठा लिया ।

“बहुत अच्छा ।” रंजन उठ खड़ा हुआ और उसके साथ ही विपिन भी । दोनों ने वकील को नमस्कार किया—“शान को हम फिर आधेँगे ।”

दोनों मकान की सीढ़ियाँ उतरकर और आंगन पार करके गली में आ पहुँचे ।

“खूब स्थान पर लाए आग मूँके !” विपिन ने रंजन के साथ उस सँकरी गली में चलते हुए कहा ।

रंजन थोड़ा सुरकराया, फिर गंभीर स्वर में बोला, “इसके बाह्य रूप-रंग पर न जाओ । इससे बड़ा कानून-गूढ़ आपको कहीं न मिलेगा । यहाँ छिपकर बैठे-बिठाए कम-से-कम मासिक पाँच हजार रुपए की इन लाला की आय है । और एक पुत्र के अतिरिक्त, जो एक उच्च सरकारी अफसर है, आपका इस संसार में कोई नहीं ।”

“तो इतने रुपए को ये क्या करते हैं ?”

“दीन विद्यार्थियों, विधवाओं आदि में बाँट देते हैं ।

विपिन ने अविश्वास-भरे स्वर में कहा, “सच ?”

“बिल्कुल !”

इतने में वे दोनों बाज़ार में पहुँच गए और मोटर में जा बैठे । रंजन ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा — “अभी तो हमारे पास लगभग एक घंटा और है । चलो, कुछ देर मेरे यहाँ चलो ।”

“बहुत अच्छा ।” विपिन ने अनुमति दी ।

रंजन ने मोटर स्टार्ट कर दी और विपिन सोच में डूब गया । अब तो पीछे न हट सकूँगा । हमारे केस में निःसंदेह बल है और हमारा पक्ष सच्चे न्याय की दृष्टि से भी ठीक है यदि उसके पिता यह अद्भुत वसीयत न कर जाते, तो उनकी वह लाखों की सम्पत्ति मेरी और रोहित की होती । इसी माँ रानी को उसमें से केवल रहन-सहन तथा गुजारे-मात्र के लिए थोड़ा-बहुत मिल

सकता। उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों, स्वाभाविक व्यवहार, मृदुलता तथा धन-पाश में फँसाने की चेष्टा की उसे अवहेलना करनी ही होगी। इसी में उसका तथा शिवा का कल्याण है। विपिन अभी सोच में ही डूबा हुआ था कि मोटर शहर को पीछे छोड़कर बड़ी सड़क पर आ पहुँची। इससे ठंडी हवा के झोंके विपिन के बालों से छेड़-छाड़ करने लगे।

“शहर से निकल आए हम ?”

“हाँ !” रंजन ने कहा, “आप किस स्वप्न-सृष्टि में पहुँच गए थे ? अब तो कुछ ही क्षणों में हमें घर पहुँचा समझो।”

“अच्छा !”

सचमुच कुछ ही क्षणों में रंजन की मोटर उन्हें एक छोटी सी कोठी के सामने ले पहुँची। रंजन ने मोटर को कोठी के बाहर ही खड़ा कर दिया और विपिन को उतरने का संकेत किया।

“अभी थोड़ी देर में लौटना होगा, इसलिए इसे यहीं छोड़ रहा हूँ।” रंजन ने कहा और विपिन का हाथ पकड़े हुए उसे अपनी कोठी में ले गया।

रंजन का बैठने वाला कमरा आरम्भ के बरामदे के पीछे ही था। दोनों उसमें घुस गए। कमरा था तो छोटा, किन्तु ढंग से सजाया गया था। फर्श पर एक बढ़िया कालीन बिछा था, जिसके चारों ओर दो सोफा-सेट रखे थे। मध्य में बिल्लौर की भाँति चमकती हुई एक मेज़ थी, जिस पर एक सुन्दर फूलदान में नरगिस के कुछ फूल रखे थे। रंजन विपिन को लेकर एक सोफे पर बैठ गया और हाथ बढ़ाकर पास की दीवार पर लगे बिजली के बटन को दबाया। इससे एक क्षण में ही नौकर आ उपस्थित हुआ।

“काँफी !” रंजन ने नौकर को कहा। फिर विपिन की ओर देखकर वह बोला, “अब कहिए, मैंने कोई अनधिकार चेष्टा तो नहीं की ?”

“अनधिकार चेष्टा !” विपिन के मुख पर आश्चर्य के चिह्न थे, “सो कैसे ?”

“बिना आपसे पूछे वकीलों से सलाह-मशविरा और थोड़ा-बहुत व्यय करने में। किन्तु अभी विशेष कुछ नहीं हुआ है। व्यय पाँच सौ से अधिक नहीं

हुआ। यदि आप चाहें, तो यहीं सब-कुछ समाप्त हो सकता है। शाम को अब वकील के यहाँ नहीं जायेंगे और पाँच सौ रुपए के लिए भी मैं आपको कष्ट न दूंगा; क्योंकि उसे आपसे लेने के लिए नहीं, बल्कि एक मित्र के नाते मेने खर्च किया है। किन्तु ...” रंजन रुका।

विपिन ने पूछा, “किन्तु क्या?”

“यदि आप अब भी केस न लड़ें, तो आप एक स्वर्ण-अवसर खो देंगे।”

“सचमुच?”

“हाँ, क्योंकि जितनी कानूनी सामग्री अब हमारे पास आ रही है, वह आपकी विमाता के दाँत अवश्य खट्टे कर सकेगी। कहिए?”

“हम केस अवश्य लड़ेंगे,” विपिन ने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

“आप फिर अच्छी तरह से सोच लें,” अपनी जीत को पक्का करने की नीयत से रंजन ने पुनः शंका उठाई, “यदि आप फिर भावुकता का शिकार हो गए, तो उचित न होगा।”

“भावुकता का शिकार?”

“हाँ, चित्राजी का आप पर जो प्रभाव है, मैं भली-भाँति जानता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि जो-कुछ वे कहेंगी, वह आपकी भलाई को दृष्टि में रखते हुए। किन्तु मैं यह कहने की क्षमा चाहूँगा कि वह—वह क्या प्रत्येक आधुनिक नारी कुछ गजों से परे नहीं देख सकती।”

“तब?”

“तब यही कि जब तक हम युद्ध-क्षेत्र में कूद न पड़ें, आपको अपना निश्चय किसी को भी नहीं बताना होगा, यह वचन आपसे चाहता हूँ।”

“शिवा को भी नहीं?”

“नहीं। मैं शिवा जी और चित्रा जी में कोई भेद नहीं समझता। कहिए, यह वचन देते हैं? यदि हाँ, तो मैं आपके साथ हूँ; यदि नहीं, तो आप जानें और आपका काम जाने।” यह कहते-कहते रंजन का स्वर थोड़ा शुष्क हो उठा।

विपिन ने सहसा कुछ उत्तर न दिया। उसके मस्तिष्क में कई एक भाव परस्पर एक साथ चौंक गए। उस क्षण का किया हुआ निश्चय उसकी

जीवन-धारा में एक महत्त्वपूर्ण असंतोषजनक उथल-पुथल कर देगा। यह उसे स्पष्ट दीखने लगा। पर क्या उथल-पुथल ही जीवन नहीं? पुरुषत्व प्राप्त करने के लिए नदी की उताल तरंगों से होड़ लगाना क्या आवश्यक नहीं? एक ओर चिन्ता-रहित शांत, किन्तु दूसरों के टुकड़ों पर पलने वाला जीवन था और दूसरी ओर था संघर्ष, जिसमें सर्वस्व खो जाने की आशंका थी। वह किसे चुने? उसकी दृष्टि रंजन के विस्फारित चमकते हुए नेत्रों ने मानो उसे ऐसे बाँध लिया, जैसे सपेरे की बीन साँप को बाँध लेती है। वह धीरे से बोला, “मैं वचन देता हूँ।”

“धन्यवाद!” रंजन ने कहा और उसके मुख पर का तनाव एकाएक मृदुलता में परिणत हो गया।

ठीक उसी समय नौकर काँफी ले आया और दोनों मित्र उसमें उलझ गए।

२५

उस दिन मुकदमे की अगली तारीख थी। जब चेंबर अपने कागज़-पत्र सँभालता हुआ अदालत के कमरे में घुसा, तो देखा कि रंजन पहले से ही एक कुर्सी पर बैठा है। उसने मुस्कराकर चेंबर का स्वागत किया और पास वाली कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। चेंबर ने बैठते हुए पूछा, “क्या आज कोई मनो-रंजक केस खींच लाए हैं या हमारे लिए ही कुछ फुलझड़ियाँ प्रस्तुत करेंगे?”

रंजन हँसा—“फुलझड़ियों का युग अभी दूर है। धूप-दीप-नैवेद्य से ही यदि न्यायदेव प्रसन्न हो जायें, तो हमारे-जैसे नौसिखिए सौभाग्य मानें।”

चेंबर भी हँसने लगा—“धूप-दीप की आड़ में ही तो आप-जैसे प्रतिभाशाली पटाखे छोड़ते हैं।”

“धन्यवाद!” रंजन ने पुनः बात को टाला, “यदि आपकी कृपा-दृष्टि बनी रही, तो इस योग्य भी शायद हो ही जायें। आप क्या अकेले ही स्नेहलता जी का मुकदमा लड़ेंगे?”

चेंबर का माथा ठनका। विपिन इस धूर्त के पंजे में जा फँसा मालूम होता

है, उसने सोचा और बोला—“एक छोटी-सी दरख्वास्त के लिए क्या एक वकील कम है ?”

रंजन के होठों पर मक्कारी की एक लकीर खिंच गई—“वकीलों की संख्या केस के छोटे-बड़े होने पर तो निर्भर नहीं होनी चाहिए।”

“और किस बात पर होनी चाहिए ?”

“मुकदमा लड़ने वाले की सामर्थ्य पर।”

चँवर अवाक् रह गया। इस दृष्टिकोण वाला वकील विपिन को निःसन्देह रसातल ले पहुँचेगा। किंतु उसे समझा ही कौन सकता है, चँवर ने यह सोचते हुए रंजन पर व्यंग्य किया, “मुझे ऐसी शिक्षा नहीं मिली और इसके लिए मैं अपने अभिभावकों का आभारी हूँ।”

किंतु रंजन को यह व्यंग्य न छू सका। बोला—“यह सब-कुछ तो अब भी सीखा जा सकता है। यदि इस दास को अपने चरणों में स्थान दे सकें, तो वह आपको इस दिशा में निराश नहीं करेगा, यह विश्वास दिलाता हूँ।”

चँवर का मन रंजन के प्रति ग्लानि से भर गया, पर अपने व्यवसाय के नवोदित इस धूमकेतु के पतन की थाह पाने के लिए उसने पूछा—“किन्तु आप तो विपक्ष की ओर से पेश होने जा रहे हैं शायद ?”

रंजन ने इसका उल्टा अर्थ लगाया। थोड़ा प्रसन्न होकर बोला—तो इससे क्या बनता-बिगड़ता है ? हम इन माँ-बेटे के हाथ बिक तो नहीं गए हैं। यदि आप मेरे साथ सहयोग करें तो हम दोनों मालामाल हो सकते हैं।”

चँवर का मुख क्रोध से तमतमा उठा। इतनी क्षुब्धता, इतना स्वार्थ, इतनी गिरावट ! अपने-आपको सँभालता हुआ वह केवल इतना ही कह सका—“बहुत खूब !”

रंजन चँवर की भाव-भंगी से सब-कुछ समझ गया। बात को अपनी चतुरता के जाल में उलझाकर मटियामेट करने की नीयत से थोड़ा मुस्कराया—“आपको जैसा सुना था, वैसा ही पाया। आप-जैसे उच्च स्तर के सज्जनों के पद-चिह्न ही हमारे लिए पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं।”

चँवर ने कुछ जबाब नहीं दिया। इस ठिठाई का वह उत्तर भी क्या दे

सकता था ! किन्तु रंजन ने वहीं बात समाप्त नहीं की । अपनी सफाई में कहता चला गया, “आपके आदर्श की यह पाता-पाता मैं एक शर्त भी जीत गया ; क्योंकि जो-कुछ मैं आपसे कह रहा था, वह एक शर्त से प्रेरित था ।”

चेंबर ने इसकी भी धृष्टापूर्व अवहेलना की और मुंह मोड़कर दूसरी ओर बैठे हुए एक अन्य वकील से बात करने लगा । इसी बीच उसका मुकदमा पेश हो गया । चेंबर उठकर कटघरे में जा खड़ा हुआ । उसके पीछे ही रंजन भी वहाँ पहुँचा और प्रतिद्वन्द्वी वाली ओर जा खड़ा हुआ । जज ने रंजन की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा ।

“मैं,” रंजन ने कहा, “श्यामदेवजी के लड़के श्रीयुक्त दिपिनात्र जी का प्रतिनिधित्व करने के लिए हाजिर हुआ हूँ ।”

“आप अर्जी का विरोध करते हैं ?”

“हाँ !” रंजन ने कहा और विरोध-पत्र जज की ओर बढ़ा दिया, “इस पत्र में कारण लिखित है ।”

जज ने कागज रंजन के हाथ से ले लिया और उसे पढ़ने लगा । पढ़ लेने के अनंतर वह बोला — “तो आपका केस यह हुआ कि श्यामदेव की जायदाद जदी थी ?”

चेंबर मुस्कराया ।

रंजन बोला—“हाँ । (चेंबर को) मुस्कराने से तो बात उड़ नहीं सकती, लाखों की जायदाद हड़प नहीं की जा सकती ।”

चेंबर ने शान्त स्वर में कहा, “और कागज के टुकड़ों पर चंद लकीरें खींच देने से खुद पैदा की हुई जायदाद जदी भी नहीं बन सकती ।”

किन्तु जज ने बहस को वहीं रोक दिया—“तो मैं तनकीहें निकाल देता हूँ ।”

“बहुत अच्छा,” दोनों वकीलों ने कहा ।

जज ने तनकीहें निकाल दीं और दो मास के अनंतर दोनों पक्षों को सबूत पेश करने की आज्ञा लिख दी । दोनों वकील एक-दूसरे से बिना बात किये अदालत के कमरे से बाहर निकल आए । रंजन तो शायद वकील-खाने की

और चला गया; पर चँवर ने लिफाफा मुंशी को पकड़ाकर घड़ी की ओर देखा और मुंशी से पूछा—“कोई और काम है क्या आज ?”

“एक मिसिल देखनी थी।”

“उसे कल देखेंगे। चार तो बजने वाले हैं। मैं जरा स्नेहलता जी के यहाँ जाऊँगा।”

जब चँवर स्नेहलता के यहाँ पहुँचा, तो वह अपने कमरे में चिन्तामग्न बंठी थी। उस दिन कचहरी की कार्यवाही की कुछ भी सूचना उसे नहीं मिली थी। उसी को पाने के लिए वह उत्सुक थी। इतने में नौकर ने प्रवेश किया।

“टेलीफोन आया है क्या ?”

“नहीं, वकील साहब आए हैं।”

“वकील साहब ! अच्छा, उन्हें बैठने वाले कमरे में बिठाओ, मैं आती हूँ।”

नौकर के बाहर निकलते ही वह उठ खड़ी हुई और तेजी से ड्राइंग-रूम में जा पहुँची। चँवर ने उठकर उसे नमस्कार किया और उसके बैठ जाने पर अपनी कुर्सी फिर संभाल ली।

“कहिए, आज क्या हुआ ?” स्नेहलता ने पूछा।

“वही, जिसकी आशंका थी,” वकील ने गंभीर स्वर में कहा, “विपिन ने भागड़ा छोड़ दिया है।”

“वह तो दिल्ली में है।”

“पर रंजन जो उसका प्रतिनिधित्व करने पहुँच गया था।”

“क्या है उसका केस ?”

“वे कहते हैं, श्यामदेव जी की जायदाद जदी थी, इसलिए उन्हें वसीयत करने का कोई अधिकार न था।”

स्नेहलता सूखी हँसी हँसी—“और वह भी क्या सकते थे !”

“आपका रुपया देना ठीक नहीं हुआ।”

“हाँ, किन्तु जो-कुछ हुआ है, उसके लिए मैं तैयार ही थी।”

“यह तो ठीक है,” वकील थोड़ा रुका, फिर कहता चला गया, “पर विपिन बहुत बुरे हाथों में जा फँसा है। रंजन जितनी निम्न कोटि का मनुष्य है

उससे कहीं निम्न नैतिक स्तर का वह वकील है ।”

“विपिन को वैसा ही वकील मिल सकता था ।”

“मैं आपको क्या बताऊँ,” वकील धीरे-धीरे कहने लगा, “आज बातों-बातों में उसने मुझे भी आपके प्रति विमुख करने का प्रयत्न किया ।”

“क्या कहता था ?” स्नेहलता मुस्कराई ।

“यदि मैं उसका पथ पकड़ लूँ, तो वह धन-धान्य से मेरा घर भर देगा ।”

“अर्थात् ?” लता की समझ में एकाएक बात नहीं आई ।

“यही कि केस को इस ढंग से चलाया जाय कि न आपकी भलाई हो न विपिन की; और हम दोनों रुपया बनाते चले जायें ।”

“अभी बच्चा है, इसीलिए उसने ऐसा प्रस्ताव किया ।”

“यह तो ठीक है, पर उसका मस्तिष्क किस दिशा की ओर प्रवाहित है, इसका तो पता लगता ही है । ऐसा आदर्श-रहित मनुष्य कहाँ रुकेगा, इसका भी क्या निश्चय । क्या-क्या भूठ वह नहीं गढ़ेगा, कौन कह सकता है ।”

“आप इस बात की चिन्ता न करें । ज्वार-भाटे द्वारा आकाश तो नहीं छुआ जा सकता,” स्नेहलता का स्वर शांत था, “आप पूरे बल से केस लड़ते जायें ।”

“बहुत अच्छा !”

“और,” लता ने सहसा लौह-नारी का रूप धारण कर लिया तथा उसका स्वर निश्चय से ओत-प्रोत हो गया, “देखिए, अंतिम मोर्चे तक केस को लड़ते जाइए । सुलह की बात किसी भी शर्त पर स्वीकार न कीजिए ।”

वकील भी उसके निश्चय से प्रभावित हो गया — “ऐसा ही होगा ।”

“यदि वे दो मुकदमे आपके विरुद्ध खड़े करें, तो आप चार से जवाब दें । धन की चिन्ता न करें । मामला धन की कोटि से ऊपर उठ गया है ।”

वकील प्रशंसात्मक स्वर में बोला — “आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन होगा । अगली तारीख के लिए मैं अभी से तैयारी आरम्भ कर दूँगा इसी केस के लिए एक मुंशी मैंने रख लिया है ।”

“धन्यवाद !”

“अब अनुमति दीजिए ।” वकील उठ खड़ा हुआ ।

“चाय तो पी लीजिए ।”

“चाय,” चैबर थोड़ा असमंजस में पड़ा, फिर बोला, “कचहरी से सीधा आपके यहाँ आ गया था । कुछ लोग शायद मेरे दफ्तर में प्रतीक्षा में बैठें हों, इसलिए क्षमा माँगूँगा । वैसे चाय मैं पीता भी नहीं ।”

“जैसी आपकी इच्छा !”

वकील ने नमस्कार किया और कमरे से बाहर चला गया । स्नेहलता कुछ देर ज्यों-की-त्यों बंठी रही, फिर नौकर को आवाज दी ।

“आज्ञा कीजिए,” नौकर ने कहा ।

“देखो, ज्विन और शिवा वाले सेट में ताला लगाकर चाबी मुझे दे जाओ । वे अभी लौट नहीं रहे ।”

“बहुत अच्छा,” नौकर ने कहा और चला गया ।

इससे थोड़ी ही देर बाद रोहित भागता हुआ वहाँ पहुँचा और आते ही पूछने लगा—“अभी, भैया और जीजी के कमरों में ताला क्यों लगा दिया ?”

“इसलिए कि उनका सामान सुरक्षित रहे । वे अब शायद कई दिन तक यहाँ नहीं आयेंगे ।”

“यया दिली ही रहेंगे ?”

“कह नहीं सकती ।”

“यहाँ क्यों नहीं आयेंगे ?”

“क्योंकि तुम्हारे आदर्श भैया और स्नेहमयी जीजी मुझसे रूठ गए हैं ।”

“आप उन्हें बना क्यों नहीं लेती ? लिख दे, मेरे राजा बेटा मान जाओ !”

स्नेहलता पहले तो थोड़ी मुस्कुराई, फिर उसके मुख पर गम्भीरता छा गई, “लिख तो दूँ, किन्तु वे इसकी परवाह कहाँ करने चले हैं । मेरा यह सौभाग्य कहाँ कि वे मेरी बात मान ले,” कहते-कहते स्नेहलता का गला भर आया । अपने पर प्रभुत्व पाने के लिए सहसा वह उठ खड़ी हुई और बोली, “चलो, अब तुम्हारे रूप का समय हो गया और मुझे भी एक प्याला चाय का पीना है ।”

रोहित उठ खड़ा हुआ । उसे लेकर वह खाने वाले कमरे में चली गई और नौकर को रोहित के लिए दूध और अपने लिए चाय प्रस्तुत करने का आदेश दिया । दूध पीकर रोहित तो बाहर लॉन में खेलने चला गया; किंतु उसकी माँ चाय का तीसरा प्याला बनाकर उसमें से उठते हुए धुएँ की कुण्डलियों का निरीक्षण करती हुई वहीं-की-वहीं बैठी रही । इतने मधुर स्नेह तथा हृदय से प्रवाहित, उष्ण श्वासों द्वारा पोषित अमृत के घट एकाएक इतने विषले क्यों बन गए, वह सोचने लगी—‘सारा दोष दुष्टों की प्रेरणा को भी तो नहीं दिया जा सकता । माना, रंजन बुरा है; किन्तु चित्रा तो भली है, इससे भी कौन इन्कार कर सकता है । रंजन यदि विपिन को प्रभावित कर सकता है, तो चित्रा के संकेतों पर भी तो वह नाचता है । और यह निश्चित है कि चित्रा से आशीर्वाद लेकर विपिन कुपथगामी नहीं हुआ । यदि वह इस विपरीत पथ का पथिक बना है, तो चित्रा की अवहेलना करके ही उसने ऐसा किया होगा । स्वार्थ यों ही नेत्र-हीन होता है; किन्तु जहाँ दो स्वार्थी मिल जायँ, वहाँ हृदयहीनता भी आ जाती है । यही रंजन और विपिन के मिलाप का फल है । अमावस्या का अंध-कार धूम्र-शिखा से पर्वत के गले जा मिला है । इस अन्धकार को सत्य द्वारा प्रेरित विजय की प्रखर ज्योति ही छिन्न-भिन्न कर सकती है । क्या उसे उस ज्योति का दान मिलेगा ? वह सत्य का पथ पकड़ रही है । उसके हृदय में कहीं भी मलिनता नहीं और न बदला लेने की ही भावना है । इसमें रत्ती-भर भी संशय नहीं । तब भगवान् उसके पथ को आलोकित करते हुए विजय की जयमाल से विभूषित करेंगे । और विजय पा जाने पर भी उसके हृदय में इन तीन भाई-बहनों के प्रति व्यवहार में भिन्नता न आय, यह वह मन-ही-मन अपने भगवान् से माँगने लगी । इस बीच उसकी चाय की प्याली बर्फ-सी ठंडी हो गई । उसने उसे उठाया और दो-चार बड़े-बड़े घूंटों में समाप्त करके उठ खड़ी हुई और बाहर लॉन में रोहित के पास चली गई । दो पाली-पोसी हुई संतानों के विमुख हो जाने पर रोहित के प्रति उसका आकर्षण एकाएक बढ़ गया । और सहारा ही क्या था !

उसी रात दिल्ली में चित्रा के घर सब लोग बिजली की प्रखर ज्योति से प्रकाशित दूध-सी श्वेत चादर से ढकी खाने की मेज़ पर बैठे, तो टेलीफोन की घण्टी जोर से बज उठी।

“देखो तो चित्रा,” चित्रा की माँ ने कहा, “यह किसने कुसमय में टेलीफोन कर दिया है?”

चित्रा उठी, टेलीफोन वाले कमरे में गई और एक ही मिनट में लौट आई। विपिन को सम्बोधित करती हुई बोली, “तुम्हारे लिए शिमले से कॉल है।”

“अच्छा!” विपिन ने ऐसे कहा, मानो वह इस कॉल की प्रतीक्षा में ही। हो वह जल्दी से उठा और टेलीफोन वाले कमरे की ओर चल दिया।

इस बीच मेज़ पर खाना आ गया था, किन्तु विपिन के चले जाने कारण उसे आरम्भ नहीं किया गया। विपिन की प्रतीक्षा में सब लोग इधर-उधर की बातचीत करने लगे। कोई तीन-चार मिनट के अनंतर विपिन ने आकर अपनी कुर्सी सँभाली, तब खाना परसता आरम्भ हो गया। शिवा और चित्रा ने उसकी ओर उत्सुकता से देखा, पर विपिन चुप रहा। शिवा से न रहा गया। उसने पूछ ही लिया—“किसका फोन था?”

“रंजन का,” विपिन ने कहा और चाहा कि बातचीत वहीं समाप्त हो जाय। पर कहाँ? रंजन ने फोन किया है, यह सुनकर सबके कान खरे हो गए और उत्सुकता पर फड़फड़ाने लगी।

“रंजन का!” चित्रा के स्वर में आश्चर्य था, “वह शिमला कब गया?”

“आज ही क्या माँ के केस की तारीख नहीं थी?” शिवा ने पूछा।

दोनों के जवाब में विपिन कहने लगा—“वह शिमला परसों गया था। माँ के केस की तारीख आज ही थी।”

“भैया, तुमने कुछ गड़बड़ तो नहीं छेड़ दी?” शिवा की बाणी में चिन्ता थी।

“गड़बड़? मैं तो उसे गड़बड़ नहीं समझता,” विपिन ने शांत रहने का प्रयत्न किया।

“तुमने क्या किया है ?” इस बार चित्रा बोली, “कहीं माँ की अर्जों का विरोध तो नहीं आरम्भ कर दिया ?”

“सो तो करना ही था,” विपिन ने ऐसे कहा, मानो कुछ हुआ ही न हो।

“करना ही था !” चित्रा दंग रह गई।

“भैया, यह तुमने क्या किया ?” शिवा के मुँह से निकला। वह और भी कुछ कहने जा रही थी कि चित्रा का संकेत पाकर चुप हो गई।

इस बीच मेज़ पर खाना पूरी तरह लग गया और सब लोग खाने में व्यस्त हो गए। चित्रा ने विशेष प्रयत्न से बातचीत के विषय को बदल दिया। इससे विपिन किंचित् चकित, पर साथ ही प्रसन्न भी हुआ।

“एटम-बम का भविष्य क्या होगा ?” चित्रा ने प्रश्न उठाया।

“एटम-बम हमारी इस सभ्यता का अभिशाप बनेगा,” चित्रा के पिता ने कहा, “और संसार का विध्वंस कर देगा।”

“पर क्या एटम-बम-जैसी कोई चीज़ बन भी सकी है या नहीं ?” विपिन ने सन्देह प्रकट किया।

चित्रा व्यंग्य से बोली—“इसमें भी कोई सन्देह है क्या ? उसके अस्तित्व के विषय में आज प्रश्न उठाना क्या अर्थहीन नहीं ?”

“मैं समझता हूँ, एटम-बम का हौआ संसार में दो मुख्य दलों ने अपनी-अपनी रक्षा के लिए खड़ा किया है,” विपिन अपना दृष्टिकोण विस्तारित करता हुआ कहने लगा, “एटम-बम-जैसा कोई शस्त्र बनाने में पिछले महायुद्ध में जर्मनी को एक सीमा तक सफलता अवश्य मिली थी।”

“और उन्हीं द्वारा बनाए हुए दो-तीन बम,” चित्रा ने तिरस्कार-भरे स्वर में कहा, “इन्हें मिल गए थे, जिनका परीक्षण इन्होंने हिरोशिमा और नागासाकी के जापानियों की ध्वंस-लीला करके किया।”

विपिन के सिवा सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

“निःसन्देह,” विपिन ने चित्रा के तिरस्कार और सबकी हँसी की अवहेलना करते हुए कहा, “असल बात यही है। यदि जर्मनी के वे वैज्ञानिक, जिन्होंने इस दिशा में खोज की थी, चाहें, तो एटम-बम-जैसा शस्त्र अवश्य तैयार हो

जायगा। पर वे आज ऐसी परिस्थिति में चले गए हैं कि उस ओर ध्यान नहीं देंगे। इसलिए एटम-बम का भय तो निर्मूल है; पर मनुष्य उसके बिना ही ध्वंस-लीला आरम्भ कर देगा, यह मैं मानता हूँ।”

“चलो, यही सही, और इसके विरुद्ध आवाज तो उठानी ही चाहिए,” चित्रा ने कहा।

“आवाज तो हमने उठाई ही है,” विपिन बोला।

“हमारी आवाज को कौन सुनता है ?” चित्रा के पिता कहने लगे, “तुमुल कोलाहल को चीरकर चैन की बंसी का मधुर स्वर शायद उसके बनाने वाले के कान तक भी न पहुँच सके।”

“और उस बंसी के स्वर की मधुरता तो वह सुन सकता है, जिसे अपनी आवाज के प्रतिरिक्त किसी दूसरे की आवाज सुनने की फुरसत हो। अपना-अपना ढोल पीटने वाली पश्चिमीय शक्तियों को यह अवकाश कहाँ ?” चित्रा ज़रा जोश से कहने लगी, “पर उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रगाढ़ निद्रा से जागकर पूर्व ने अभी पहली अँगड़ाई ली है। ज्यों ही हम पूर्णरूपेण निद्रा को त्यागकर देशों की समिति में अपना स्थान प्राप्त करेंगे, उन्हें हमारी शरण में आना ही पड़ेगा।”

“हियर, हियर !” विपिन ने कहा। किन्तु चित्रा ने इस ओर ध्यान नहीं दिया, “इसलिए कोई सुने या न सुने, हमें अपनी टोक नहीं छोड़नी चाहिए।”

“मैं आपसे बिल्कुल सहमत हूँ,” शिवा ने चित्रा की हाँ-में-हाँ मिलाई और चित्रा के माता-पिता के मुख पर अभिमान की लाली दौड़ गई।

इस बीच में खाना लगभग समाप्त हो गया और नौकरों ने फल मेज पर रख दिए। एकाध फल लेकर चित्रा के पिता उठ खड़े हुए। उसकी माता ने भी पति का अनुसरण किया और फिर धीरे-धीरे सब उठ खड़े हुए।

जब शिवा और विपिन अपने कमरे में पहुँचे, तो चित्रा भी वहाँ जा पहुँची। उसने जो प्रभुत्व अपने ऊपर पाया था, वह जाता रहा। उसने ज़रा क्रोधित स्वर में विपिन को संबोधित किया—“अब कहो ?”

विपिन उसके स्वर से थोड़ा घबराया और फिर बोला—“क्या कहूँ ?”

“जो कुपथ तुमने पकड़ा है, उसकी कहानी छिपाने से तो काम नहीं चलेगा।”

विपिन आधा क्षण चुप रहा, फिर जरा दृढ़ स्वर में बोला—“कुपथ है या सुपथ, यह समय ही बतायगा; पर यदि मैं यह पथ न पकड़ता, तो मैं शायद जीवन-भर पश्चात्ताप की ज्वाला में जलता रहता। अपने लिए न सही, पर शिवा के स्वत्वों के लिए यदि मैं अभी युद्ध न छोड़ देता, तो मैं अपने-आपको कभी क्षमा न कर सकता।”

“भैया,” शिवा ने बाधा दी, “मेरे कंधों पर अपने इस कार्य का दायित्व न रखो। मैं यह भार न सँभाल सकूंगी।”

इससे पहले कि विपिन कुछ जवाब दे, चित्रा बोली—“माता कि जो कुछ तुमने किया है, वह ठीक है; पर एक बात क्या भूल गए हो कि तुमने मेरे साथ क्या वादा किया था?”

“वादा!” विपिन ऐसे कहने लगा मानो उसने इस प्रश्न का उत्तर भी सोच रखा हो, “भावुकता से प्रेरित वादे का मूल्य क्या होता है, यह क्या तुम्हें भी समझाना होगा?”

“मुझे भी?” चित्रा का स्वर व्यंग्य से ओत-प्रोत हो चला, “आज चाहे तुम मुझे सरस्वती का अवतार ही क्यों न बना दो, पर तुम कहीं पहुँच न पाओगे। भूठी प्रशंसा का एक स्तर होता है, उसकी भी एक सीमा होती है। जिस आचार्य से तुम यह शिक्षा लेकर आए हो, वह तुम्हारे-जैसे नव-विद्यार्थी को भले ही प्रभावित कर ले; किन्तु इधर उसकी साथ निष्ठी में भिले कई दिन हो चुके हैं। असत्य को मधुरता और चतुरता की चाशनी में लपेटकर बेवने वाले व्यापारी से अधिक इस दिल्ली की विशाल नगरी में उसका मूल्य नहीं। इसलिए - ”

“इसलिए क्या?” विपिन सहसा बोल उठा।

“यही कि तुमने जो कुपथ पकड़ा है, उस पर अवश्य बढ़ो। मैं तुम्हें अब रोकूंगी नहीं, किन्तु उसकी दुर्गमता से पार न पाकर जब तुम पराजित और क्लान्त मेरे निकट आओगे, तो मेरे हृदय में तुम्हारे लिए किञ्चित् भी रिक्त स्थान न होगा। घायल हृदय प्रेम का पाठ पढ़ ही कैसे सकता है। हो सकता

हैं कि तुम्हें मुझे खो । ”

“ठहरो, ठहरो !” विपिन ने दुःखित स्वर में चित्रा को रोकने का प्रयत्न किया, पर वह नहीं रुकी; कहती चली गई ।

“मुझे खो देने की भी चिन्ता न हो । यदि ऐसा है, तो इसे अपना सौभाग्य समझो; क्योंकि जो-कुछ आज तुमने किया है, उसके अनंतर तुम्हारी मूर्ति मेरे हृदयासन पर अवस्थान नहीं पा सकती । वह छिन्न-भिन्न होकर सदा के लिए विलीन हो गई है ।”

विपिन घबरा उठा । उसका कार्य चित्रा के हृदय में विद्रोह की यह भावना उत्पन्न कर देगा, उसने स्वप्न में भी न सोचा था । थोड़ी-बहुत ताड़ना करके वह उसे क्षमा कर देगी, उसने सोचा था । आखिर उसने चित्रा के प्रति तो कोई अपराध नहीं किया था, फिर वह क्यों उससे इतना तीखा व्यवहार कर रही है ? उसकी घबराहट ने क्रोध और खीझ का स्थान ले लिया । असंतुष्ट स्वर में बोला, “तुम्हारा यह क्रोध-प्रदर्शन मेरी समझ में नहीं आया । जो-कुछ मैं करने जा रहा हूँ, उसमें क्या तुम्हारी भलाई नहीं है ?”

“तुम्हारी दृष्टि में भलाई का मापदण्ड है धन,” चित्रा भी खीझ उठी, “मेरा दृष्टिकोण भिन्न है । मैं धन से अधिक मनुष्य के आचार-विचार को महत्त्व देती हूँ ।”

“इसलिए कि तुम्हारे पास धन की कमी नहीं,” विपिन ने मानो फिर चोट की ।

“और तुमको स्नेहलता जी भूखों मार रही थीं ! इसलिए उन्होंने पलक मारते ही तुम्हें बीस हजार रुपये दे दिए,” चित्रा का एक-एक शब्द विष से बुझा हुआ था ।

“भैया !” शिवा ने प्रार्थनात्मक भाव से भाई की ओर देखा ।

“तो तुम दोनों क्या चाहती हो ?” विपिन थोड़ा पसीजा ।

“मैं चाहती हूँ भैया, तुम इस गृह-कलह का पथ छोड़ दो,” शिवा ने कहा ।

“और मैं चाहती हूँ,” चित्रा बोली, “कि तुम्हारे इस गृह-कलह का अन्त

क्या होता है, वह देखूँ। जिस दुर्गा-सी महान् देवी के साथ तुम युद्ध करने चले हो, किस भाँति वह तुम्हारे दाँत खट्टे करती है, किस भाँति तुम उसके सम्मुख घुटने टेकते हो और किस भाँति पग-पग पर पराजित होते हो, उस एक-एक घटना को मैं देखना चाहती हूँ। इसलिए तुम अवश्यमेव आगे बढ़ो और उस इस्पात की चट्टान से टकराओ। तभी तुम्हें होश आ सकता है, तभी तुमको पता लगेगा कि मूल्य मिलते हुए आराम और विलास को ठुकराना किसे कहते हैं !”

ज्यों-ज्यों चित्रा यह कहती चली गई, त्यों-त्यों विपिन का मुँह लाल होता गया। जब चित्रा ने अपना अन्तिम वाक्य समाप्त किया, तो वह उत्तेजित स्वर में बोला—“बहुत अच्छा !”

यह कहकर वह तेजी से कमरे से बाहर चला गया। उसके एक ही क्षण के अनन्तर चित्रा भी चली गई। शिवा ज्यों-की-त्यों बैठी रही और सोचने लगी। पिता की स्थावर सम्पत्ति का एक भाग पाने की आशा में भैया कितना बड़ा रत्न खो रहे हैं, यह वे क्यों नहीं समझते ? चित्रा को अब वे न पा सकेंगे, यह निश्चित था; क्योंकि चित्रा की विमुखता उसके हृदय की पुकार का फल थी। अभी जो-कुछ हुआ है, उसके अनन्तर इस घर में उनका रहना उचित नहीं है, और आज जो कुछ शिमला में हुआ है, उसके अनन्तर पिता के घर के द्वार भी बन्द हो गए। वहाँ कौन सा मुँह लेकर वे जा सकते हैं ? उसकी अर्जों का विरोध करने के बाद माँ की दृष्टि का कौन सामना कर सकता है ? इसलिए भैया के कार्य की सबसे प्रथम उलझन होगी नए मकान की तलाश और मकानों की कमी के कारण उसका जल्दी मिलना असम्भव है। उन्हें कई दिनों तक किसी होटल में धक्के खाने पड़ेंगे। और चारा भी क्या था ? भैया, पता नहीं, कहाँ चले गए। आर्य, तो उनसे इस विषय में बातचीत करूँ। तभी शायद अपनी भूल का ज्ञान उन्हें हो। वह उन्हीं और ऐसे अन्य कई विचारों में बड़ी देर उलझी रही, तब कहीं विपिन लौटा। आते ही एक कुर्सी पर बैठ गया।

“भैया, अब यहाँ रहना तो ठीक न होगा,” शिवा ने कहा।

“हाँ, कल कूच की तैयारी करो !”

“कहाँ जाना होगा ?”

“शिमला ।”

“शिमला ? वहाँ कहाँ ?” शिवा ने ज़रा चकित होकर पूछा ।

“अभी तो रंजन वाले क्लार्क होटल के सेट में जायेंगे । बाद में कोई और प्रबन्ध कर लेंगे ।”

“रंजन के सेट में ?”

“हाँ !” विपिन ने कहा “वह कल तक यहाँ पहुँच जायगा । उसका सेट बुरा तो नहीं ?”

“बुरे की बात में नहीं कर रही थी ।”

“और क्या ?”

“यह सब-कुछ सन्तोषजनक नहीं ।”

“सन्तोषजनक !” विपिन मुस्कराया, “क्या सन्तोष ही जीवन का अभि-
शाप नहीं ? यदि सन्तोष से मुझे मोह होता, तो मुझे क्या पड़ी थी इस ‘इस्पात
की चट्टान’ से टक्कर लेने की ? ‘इस्पात की चट्टान’ !” विपिन का स्वर व्यं-
ग्यात्मक हो उठा ।

“रंजन के सेट में कितने दिन रह सकते हैं ?”

“जब तक वह रखेगा,” विपिन ने शुष्क स्वर में कहा ।

शिवा ने कुछ जवाब नहीं दिया । वह उठकर कमरे में टहलने लगी । कोई
दो-एक मिनट इसी भाँति डग भरने के अनन्तर वह रुकी और पुनः अपनी कुर्सी
पर जा बैठी ।

“भैया,” वह भीठे स्वर में बोली, “क्या यह मुकदमा लड़ना अब आवश्यक
हो गया है ? क्या अब भी हम पीछे नहीं हट सकते ?”

“नहीं,” विपिन खिलखिलाकर ऐसे हँसा, जैसे उसका मस्तिष्क थोड़ा
विकृत हो चला हो, “यह कैसे हो सकता है ? यदि ऐसा हो जाय, तो चित्रा
हमारे जीवन का सबसे बड़ा तमाशा कैसे देखेगी ?”

“तमाशा ?”

“हाँ, वह पग-पग पर मेरी पराजय और माँ की विजय को देखना चाहती

है। सो तो अपनी प्रेयसी को दिखाना ही होगा। मैं कच्चा प्रेमी थोड़े ही हूँ कि उसे निराश कर दूँ !”

“भैया,” शिवा का गला भर आया, “ऐसे न कहो।”

विपिन बहन की ओर देखकर थोड़ा मुस्कराया और फिर अपनी कुर्सी की पीठ पर सिर फेंककर आँखें मूँद लीं, मानो इतना थक गया हो कि अनन्त कोसों की यात्रा पैदल करके आया हो।

२७

जब विपिन और शिवा की मोटर शिमला के मोटर-ग्रड्डे पर पहुँची, तो रंजन उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था। उसे देखकर दोनों थोड़ा चकित, पर साथ ही प्रसन्न भी हुए।

“आपने यह कष्ट क्यों किया ?” शिवा ने पूछा।

“अभी क्या आपकी दृष्टि में मैं कष्ट, क्षमा और धन्यवाद की परिधि में ही हूँ ? क्या हमारा सम्बन्ध इनसे ऊपर नहीं उठ गया ?” रंजन का स्वर मधुर तथा उलहना-भरा था।

“क्यों नहीं ?” विपिन कृतज्ञता-भरी वाणी में कहने लगा, “एकाध कृपा हो, तो धन्यवाद भी हो सकता है; किंतु जहाँ...”

“अजी छोड़ो इन बातों को,” रंजन ने विपिन को वहीं रोक दिया, “मुझे लज्जित न करो। कहिए, यात्रा में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?”

“बिल्कुल नहीं !”

उन्होंने सामान कुलियों के हवाले करके उन्हें क्लार्क होटल पहुँचने का आदेश दिया और स्वयं धीरे-धीरे होटल की ओर चल पड़े। सड़क के दोनों ओर गगनचुम्बी पाइन के वृक्षों से टकराती हुई सितम्बर की ठंडी-ठंडी हवा उनसे छेड़-छाड़ करने लगी।

“बिल्ली तो इसकी तुलना में भट्ठी है, भट्ठी !” शिवा ने अपने केशों को हाथों से सँवारते हुए कहा।

“निःसंदेह !” रंजन ने जवाब दिया, “मुझे तो कल ही फिर वहाँ लौटना होगा ।”

“इतनी जल्दी क्यों ?” विपिन ने पूछा ।

“इसलिए कि केस का अधिकतर काम वहीं हो सकता है । और इतने बड़े केस के लिए दो मास की अवधि है ही क्या ? यदि अभी से इसमें जुटा न जाय, तो बात नहीं बन सकती, विशेषतया तब जब कि प्रतिद्वन्द्वी के पास धन और अन्य साधनों की कमी नहीं है । तभी तो चँवर अभिमान से मुस्करा रहा था ।”

“कब ?” विपिन ने पूछा ।

“परसों, कचहरी में ।”

“आपसे बातचीत हुई थी ?”

“हाँ, पहले तो वह समझता रहा कि मैं यों ही मनोरंजन के लिए वहाँ पहुँचा हूँ ; किन्तु जब मैंने विरोध-पत्र दाखिल किया, तो उसके हाथों के तोते-उड़ गए । मुफ्त में केस जीतकर वह सस्ती वाह-वाही और महँगी फीस लूटना चाहता था ।”

“फीस तो शायद अब उसे पहले से अधिक ही मिलेगी ।”

“किन्तु वाह-वाही तो न मिल सकेगी ; क्योंकि मैं मुकदमे को इस ढंग से चलाऊँगा, जिसका ज्ञान उसे तब होगा, जब अवसर ही बीत चुका हो । वर्षों केवल कचहरी में खाक छानने से तो कानून नहीं आ जाता, मुकदमे नहीं जीते जा सकते ।”

“यह तो ठीक है,” विपिन ने रंजन को प्रोत्साहन दिया ।

“उनकी हार और जीत मस्तिष्क की क्षमता पर निर्भर है,” रंजन कहता चलता चला गया, “शतरंज के खेल की भाँति जीत के लिए एक क्षुद्र-से-क्षुद्र चाल पर भी पूर्णरूपेण विचार करने की आवश्यकता होती है ।”

“क्या सचमुच हम मुकदमा जीत लेंगे ?”

“अवश्य,” रंजन ने बलपूर्वक कहा, “परसों तक मुझे संदेह था, यह ठीक ; पर विरोधी-दल का दम-खम है, वह अब मेने देख लिया है, उसकी थाह पा चुका हूँ । उसका पूरा जवाब मेरे पास है ।”

विपिन प्रसन्नता से खिल उठा। शिवा के हृदय में भी आशा का बीज अंकुरित हुआ। जो आश्वासन रंजन दिला रहा था, उसे यों ही फेंका नहीं जा सकता था। आखिर वह कानून को खूब अच्छी तरह समझता है और कई-एक चोटी के कानूनदाओं से सम्मति भी ले चुका है। और जब कि केस लड़ना ही आरम्भ कर दिया है, तो हृदय में निराशा पालना भी ठीक नहीं। वैसे यदि देखा जाय, तो जो-कुछ उसका भाई करने जा रहा है, उसे बिल्कुल गलत भी तो नहीं कहा जा सकता। एक ओर है माँ का मौखिक आश्वासन और दूसरी ओर है केस जीतने पर अपने पिता की आधी जायदाद पर अटल अधिकार। उसके साथ ही यदि वे न्याय का द्वार खटखटाने से अभी चूक जायें तो यह अवसर पुनः मिल नहीं सकता। यह सब सोचते-सोचते शिवा के मन को कुछ संतोष हुआ और रंजन के प्रति कृतज्ञता भी जागृत हुई। हृदय के एकांत कोने में रंजन के लिए घृणा का जो एक बिन्दु अंकित हुआ था, वह लगभग मिट सा गया। इतने में क्लार्क होटल आ गया। रंजन उन दोनों को अपने सेट में ले गया।

इससे थोड़ी ही देर बाद कुली भी सामान ले आए। सामान को संभालकर रंजन और विपिन को बातों में उलझे हुए छोड़कर शिवा तैयार होने के लिए गुसलखाने में चली गई।

आध घंटे के अनंतर नहा-धोकर जब वह बाहर आई, तो दोनों मित्र अभी तक बातचीत में ही संलग्न थे। वह एक कुर्सी संभालती हुई बोली—“आपकी बातचीत का सिलसिला तो अटूट दीखता है।”

“हम तो तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे थे,” विपिन उठ खड़ा हुआ कहने लगा, “मैं दस मिनट में आता हूँ।”

“हाँ, जल्दी कीजिए, ताकि चाय के लिए और देर न हो।”

विपिन भाग गया। उसके जाने के बाद रंजन ने शिवा की ओर देखा। वह हल्के मोतिया रंग की बढ़िया सिल्क की साड़ी पहने थी। ग्लाउज कासे रंग का था। बाल भली भाँति सँवारे हुए थे। गालों पर फीकी सी लालिमा बौड़ रही थी, जो होठों के गुलाबीपन को मानो तीव्रता प्रदान कर रही थी।

रंजन के होठों पर मुस्कान की एक छाया खेल उठी। उसे दबाकर वह गंभीर स्वर में बोला—“दिल्ली की भट्टी-सी गर्मी आप पर तो कुछ प्रभाव नहीं डाल सकी।”

“कैसे ?” शिवा ने जरा चकित स्वर में पूछा।

“उल्टा आपके रंग को उसने अधिक निखार दिया।”

“रंग को निखार दिया है ?” शिवा ने चीरते हुए नेत्रों से रंजन की ओर देखा। उसका चेहरा पूर्णरूपेण गंभीर था और शिवा की दृष्टि की तीक्ष्णता में भी ज्यों-का-त्यों बना रहा।

“हाँ,” रंजन शांत स्वर में कहता चला गया, “स्वर्ण मानो कुन्दन बन गया है,”

शिवा के हृदय की गति किंचित् प्रसन्नता, किंचित् उत्तेजना से थोड़ी बढ़ गई। उसके दर्पण ने भी आज उसे संतोष दिया था। वहाँ भी उसे अपने चेहरे के प्रति मोह हुआ था और रंजन ने भी वही बात पकड़ ली। उसके प्रति मन ने जो करवट थोड़ी देर पहले ली थी, उसमें मधुरता और कोमलता आ गई। थोड़ा लज्जाती हुई वह मुस्कराई और बोली—“आप मुझे बना रहे हैं क्या ?”

“आपको बनाने का साहस शायद बड़े-से-बड़ा व्यक्ति भी सौ बार सोचकर करे और सो भी वह, जो आपको जानता न हो। मैं आपको जानता ही नहीं, बल्कि आपके तेज को, आपकी आत्मा की महानता को भली भाँति समझता हूँ। अतः आप मेरे साथ यह अन्याय न करें।” रंजन के स्वर की गंभीरता में वही रस था।

शिवा भी अब गंभीर हो चली—“माना बना नहीं रहे; पर आप अतिरंजित चित्र अंकित कर रहे हैं, कल्पना की मनमानी का शिकार हो रहे हैं।”

“अतिरंजना, कल्पना की मनमानी !” रंजन प्रभावित स्वर में कहने लगा, “उनकी आवश्यकता वहाँ पड़ती है, जहाँ यथार्थ में तथ्य न हो; पर जहाँ अतिरंजना स्वयं फीकी पड़ती हो, कल्पना कुण्ठित हो जाती हो, वहाँ इन दोनों अस्त्रों को कौन प्रयोग में ला सकता है ?”

शिवा का शरीर रोमांचित हो उठा। प्रशंसा के जिस स्तर को रंजन ने

अपनाया था, उस पर विश्वास करने का लोभ वह संवरण न कर सकी । कुछ अधिक सुनने की आशा में फिर चेहरे पर एक आकर्षक लज्जाशील मुस्कान फीरेखा खींचकर बोली—“फिर भी……”

“मैं आवश्यकता से अधिक चतुर हूँ, अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए सत्य-असत्य की परवाह नहीं करता और मेरा दृष्टिकोण प्रायः सांसारिक होता है, आपको बताया गया होगा । मुझमें ये सभी दोष हैं, मैं मानता हूँ, पर मैं मनुष्य को भी पहचानता हूँ, यह भी तो मेरे शत्रु मानेंगे ।”

“मैं मतलब नहीं समझी,” शिवा के मुँह से निकल पड़ा ।

“मतलब यही कि मेरे ये दोष उन्हीं लोगों के लिए हैं, जो मुझसे भी अधिक दोषी हैं और मुझसे लोहा लेते हैं । आप-जैसी निर्मल आत्माओं के प्रति मेरे मन में श्रद्धा और सच्ची प्रशंसा के अतिरिक्त कोई दूसरा भाव उत्पन्न ही नहीं हुआ । इसलिए ……”

“इसलिए क्या ?” शिवा पूरी तरह रंजन की बातचीत में रस ले रही थी ।

“इसलिए यही कि आपसे यह विनीत प्रार्थना करूँगा कि मुझे कभी गलत न समझिएगा और यह आश्वासन चाहता हूँ कि यदि कभी मेरी तुच्छ सेवाओं की आवश्यकता आपको पड़े, तो मेरी अवहेलना न कीजिएगा । मुझे सेवा का अवसर अवश्य दीजिएगा ।”

क्या रंजन भावुकता का शिकार तो नहीं हो रहा, शिवा के मन में यह संदेह एकाएक कौंध गया । उसने ध्यानपूर्वक रंजन की ओर देखा ; किन्तु उसके एक-एक हाव-भाव, मुख के एक-एक भाग, मस्तक पर बनी गंभीरता की एक-दो लकीरों ने उसके संदेह को वहीं-का-वहीं दबा दिया । रंजन के प्रति उसे सहसा एक अद्भुत आकर्षण हुआ, जो पहले कभी नहीं हुआ था ; पर अपने भावों पर प्रभुत्व पाती हुई अर्थहीन स्वर में बोली—“धन्यवाद !”

किन्तु रंजन सब-कुछ समझ गया । अपने ध्येय की प्रथम और सबसे कठिन सीढ़ी उसने पार कर ली है, इसका उसे भरोसा हो गया । शिवा के हृदय में वह एक कोमल स्थान पा गया है, उसे स्पष्ट देखने लगा । इस प्रथम विजय द्वारा वह धीरे-धीरे अंतिम विजय—शिवा के हृदय पर पूर्ण आधिपत्य—भी

अवश्य प्राप्त कर लेगा, यह निर्विवाद था। इसलिए उसने इस बातचीत को वहीं समाप्त कर देना उचित समझा। बोला — “अभी तक विपिन आया नहीं।”

“हाँ, उन्होंने बाथ-रूम में आवश्यकता से अधिक देर लगा दी है।”

“खैर, अभी आता ही होगा। यदि अनुमति दें तो चाय का प्रबन्ध अब कर ही दूँ।”

“कर दीजिए।”

रंजन कमरे से बाहर चला गया और शिवा ज्यों-की-त्यों बैठी रही। उसके मुख पर अभिमान खेल रहा था और वह अपने-आप पर अतिशय प्रसन्न हो रही थी। रंजन ने इस ढंग से अपने मोहरे खेले थे कि उसकी विजय शिवा की विजय प्रदर्शित हुई थी। उसी ‘विजय’ के उल्लास में उसे चारों ओर आनन्द और प्रकाश ही दीख रहा था। वह इसी बनावटी वातावरण में डूबी हुई थी कि विपिन तैयार हो गया। शिवा का नवीन रूप उससे छिपा न रह सका।

“क्या सोच रही हो, शिवा?” उसने बहन से पूछा।

“मुकदमा जीतने पर आप कौन से मॉडल की मोटर लेंगे, यह सोच रही हूँ,” शिवा खिलखिलाकर हँसने लगी।

“तो क्या अब तुम भी आशावादिनी हो गई हो? तुम्हें भी केस में बल दीखने लगा?”

“क्यों नहीं?” शिवा उसी आनन्द में ‘मूड’ से प्रवाहित कहती चली गई, “मैं तो समझती हूँ कि हमारा पक्ष किसी भी तरह निर्बल नहीं। किंचित् भी भाग्य ने साथ दिया, तो हम अवश्य जीतेंगे।”

इतने में रंजन लौट आया। विपिन ने शिवा की बात का उत्तर बहन को नहीं, बल्कि रंजन को दिया—“मैं तुम्हें बधाई देना चाहता हूँ!”

“किस बात की?” रंजन ने आश्चर्य प्रदर्शित किया।

“मेरे नहाते-नहाते तुमने जो काया-पलट कर दी है।”

“किसकी?”

“शिवा की। उसे अब अपना पक्ष बलवान् दीखने लगा है।”

रंजन का हृदय खिल उठा। उसका निशाना अचूक बैठा है, इसमें अब

अणु-मात्र भी शंका न रही। मुस्कराकर बोला—“अब केस हमारा है। उसके जोतने में शिवाजी की नैतिक सहायता की ही कमी थी।”

और तब नौकर चाय का सामान ले आया।

२८

मुकदमे की अगली तारीख में अभी लगभग डेढ़ मास बाकी था कि स्नेह-लता के टेलीफोन की घंटी जोर से बज उठी। वह तेजी से कॉल सुनने के लिए गई। रिसीवर कान से लगाने पर पता चला कि दूसरे छोर पर चँवर था।

“कहिए, क्या हुआ?” लता ने पूछा।

“रंजन ने शरारतों का सिलसिला आरंभ कर दिया है।” चँवर ने सूचना दी।

“कैसे?”

“उसने आपके मुन्शी को फौजदारी के मामले में उलझा लिया है।”

लता मुस्कराई—“वह उसको कहाँ मिल गया?”

“क्लार्क होटल के सामने वाली पान की दुकान पर। मुन्शी वहाँ से पान-बीड़ी ले रहा था कि विपिन और रंजन भी वहाँ जा पहुँचे। रंजन ने आपको, मुझको और मुन्शी को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। उधर से मुन्शी भी कुछ तेज़ हो गया।”

“तब?” लता किंचित् उत्सुक हो उठी।

“रंजन ने मुन्शी को इतना उत्तेजित किया, हम सबको वह पाठ पढ़ाने की धमकी दी कि उससे रहा नहीं गया। उसने भी रंजन को खूब आड़े हाथों लिया। रंजन ने इस घटना को अपना रंग देकर आज मुन्शी के विरुद्ध फौजदारी कार्रवाई शुरू कर दी है और मामले में आपको भी घसीट लिया है।”

“मुझको?” लता का स्वर आश्चर्य-चकित था।

“हाँ। कहानी यह बनाई गई है कि आपने सिखा-पढ़ाकर मुन्शी को क्लार्क होटल के बाहर तैनात किया था कि जिस समय विपिन होटल से बाहर निकले, उसकी मरम्मत की जाय। चुनाँचे कल शाम को जब विपिन और रंजन

उस दुकान पर सिगरेट लेने के लिए गए, तो मुन्शी ने विपिन को गालियाँ दीं और मारने का भी प्रयत्न किया, जो राह चलतों के बीच में पड़ जाने से सफल न हो सका।”

“किंतु यह तो सरासर भूठ है,” लता ने कहा।

“हुआ करे,” चँवर के स्वर में व्यंग्य था, “मुकदमा तो आरंभ हो ही गया है। कुछ चाँदी के टुकड़ों के बल पर दो-चार भूठे गवाह मिल ही जायेंगे। बस, केस मजे में चलता रहेगा। कष्ट आपको और विपिन को होगा, पैसे रंज की जेब में पहुँचेंगे।”

लता आधा क्षण चुप रही, फिर बोली—“आप इस केस का पूरे बल से प्रतिरोध करें।”

“प्रतिरोध या कुछ और भी ?”

“और क्या ?”

“क्या हम भी मुन्शी की ओर से उन दोनों पर फौजदारी मामला न चला दें ? एक तो इससे उनका केस कमजोर हो जायगा और दूसरे इन फौजदारी मामलों के लिए उन्हें नया वकील खड़ा करना पड़ेगा। मैं समझता हूँ, हिंसा का जवाब प्रतिहिंसा से बढ़कर कोई नहीं।”

लता आधा क्षण सोच में डूबी रही, फिर निश्चयात्मक स्वर में बोली—“हाँ, हमें यह करना ही होगा। अपनी आत्म-रक्षा के लिए इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं।”

“बन्धुवाद !” चँवर ने कहा, “एक बात और। यदि भविष्य में भी इसी ढंग की कोई घटना हो, तो मैं चाहता हूँ कि पहल हमारी हो।”

“अर्थात् ?”

“यही कि अभियोग लगाकर उन्हें अभियुक्तों की पंक्ति में बिठा दें और तब उनके प्रतिरोध की प्रतीक्षा करें। इससे हमारा पक्ष बलवान होगा।”

“मैं आपके साथ सहमत हूँ। भविष्य में ऐसा ही कीजिएगा। धर्मयुद्ध से तो काम न चलेगा।” लता सूखी हँसी हँसी।

टेलीफोन से छुट्टी पाकर लता अपने कमरे में लौट आई और सोच में डूब

गई। मामला आशा से अधिक विषम हो रहा है। रंजन इतना दुष्ट है, वह न समझती थी। क्या इतना पढ़-लिखकर भी मनुष्य इतना नीच हो सकता है? क्या वकालत का व्यवसाय झूठ पर ही अवलंबित है? क्या अन्याय किये बिना न्याय नहीं प्राप्त हो सकता? ये और ऐसे ही अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठे और उसके हृदय में मनुष्यत्व के प्रति घृणा की एक लहर दौड़ गई। यह भगड़ा जो उसके रूप में एक विद्रूप उत्पन्न कर रहा था, उसके प्रति भी ग्लानि की एक रेखा उसके हृदय में खिंच गई। किंतु अब इस घृणा और ग्लानि से डरते तो कुछ बन न सकता था। इनको उसे ऐसे पीना होगा, जैसे महादेव शंकर ने विष-पान किया था। सांसारिक कुरूपताओं से मुंह छिपाने पर तो वे सौंदर्य में परिणत नहीं हो सकतीं। उनको ठोक-पीटकर ही ठीक किया जा सकता है। अतः उसे अब लड़ना ही होगा। यह सब सोचती हुई वह उठी और कमरे में टहलने लगी, किंतु उसका मन शांत न हुआ। उसने कलाई पर बंधी हुई घड़ी की ओर देखा। लगभग दो बजे थे। रोहित के स्कूल से लौटने में अभी डेढ़ घंटा बाकी था। उसने नौकर को आवाज दी।

“आज्ञा दीजिए!” नौकर ने कहा।

“शोफर को मोटर बाहर निकालने के लिए कहो।”

“बहुत अच्छा!” नौकर ने कहा और तेजी से चला गया।

मोटर तैयार होने की सूचना दस ही मिनट में आ गई। इस बीच वह भी तैयार हो चुकी थी, धीरे-धीरे कोठी से निकलकर बाहर गाड़ी में आ बैठी।

“कहाँ चलना होगा?” शोफर ने पूछा।

“पहले बाज़ार। वहाँ से कुछ मिठाई और खिलौने खरीदने होंगे। उसके बाद उसी भरनों के निकट वाले गाँव में। वहाँ के बच्चे कितने सुन्दर तथा सुसंस्कृत हैं।”

मोटर पहले लता को बाज़ार के निकट ले पहुँची वहाँ से उसने कुछ मिठाई, फल, खिलौने और खाली लिफाफे खरीदे। उन्हें अपने निकट मोटर की पिछली सीट पर रखकर उसने शोफर को गाँव की ओर बढ़ने का आदेश दिया। फिर वह प्रत्येक लिफाफे में स्वयं फल, खिलौने, मिठाई आदि डालने लगी। कोई

पन्द्रह मिनट में ही वह इस काम से छुट्टी पा गई। तब उसने आँखें मूंदकर विश्राम करने की नीयत से सिर पीछे फेंक दिया। इसी प्रकार पन्द्रह मिनट और बीत गए। इस बीच मोटर गाँव के निकट जा पहुँची। उसने आँखें खोलकर बाहर भाँका। गाँव के बाहर सड़क के किनारे एक झरना था। उसका स्फटिक-सा निर्मल जल फेन बनाता, ऊपर से नीचे गिरता हुआ एक पतली-सी पहाड़ी नदी के रूप में बहा जा रहा था। उसके झरने पर गाँव के पाँच-छः बालक-बालिकाएँ खेल रहे थे। दो-एक युवतियाँ पानी भर रही थीं। मोटर खड़ी होते ही बच्चे उछल पड़े।

“रानी जी !” वे किलकारी भरते हुए बोले, “खिलौनों वाली रानी जी !”

दो-तीन बच्चे मोटर की ओर बढ़े और दो-एक अपने सखा-साथियों को रानी जी के आने का शुभ संवाद सुनाने गाँव की ओर भागे। पाँच ही मिनट में वहाँ बच्चों का जमघट लग गया। सब लता को, जो अब तक मोटर से निकलकर झरने के निकट आ पहुँची थी, घेरकर खड़े हो गए।

“यह बताओ, पिछले दिनों में तुममें से किसी ने झूठ तो नहीं बोला ?”

“नहीं।” एक स्वर में उसे उत्तर मिला।

“ठीक कहते हो ?” लता ने उन बच्चों के झुंड को अपने नेत्रों से तौलते हुए कहा, “यदि किसी ने झूठ बोला हो, तो अपने-आप निकलकर बाहर आ जाय।”

आधा क्षण सन्नाटा रहा। फिर एक आठ-नौ वर्ष का बालक धीरे-धीरे बाहर निकल आया।

लता मुस्कराई—“तुमने क्या झूठ बोला था ?”

वह बालक थोड़ा झिझका, फिर धीरे से कहने लगा—“माँ ने मुझे दो आने बाल लाने के लिए दिये थे, उनका मैंने गुड़ मोल लेकर खा लिया और माँ को झूठ-झूठ कह दिया कि पैसे खो गए। आगे से ऐसा न करूँगा।”

“शाबाश !” लता ने कहा, “मे तुम्हारे इस साफ वक्तव्य से बहुत खुश हुई हूँ। फिर तुम ऐसा कभी नहीं करोगे, मैं जानती हूँ।”

बच्चे का मुख खिल उठा और वह पुनः अपने साथियों में जा मिला।

लता ने फिर पूछा—“क्या जब मैं पिछली बार आई थी, तब से लेकर तुम सबने अपने माता-पिता की आज्ञा मानी है ? किसी ने उनको तंग तो नहीं किया ?”

सब बच्चों के नेत्र एक बारह-तेरह वर्ष के हट्टे-कट्टे लड़के की ओर उठ गए। इससे पहले कि वे कुछ कहें, उसने धूरकर सबकी ओर देखा। उसके नेत्रों में चुनौती थी, जिससे सब बालक डर-से गए। लता सब-कुछ समझ गई। उस लड़के को सम्बोधित करती हुई बोली—“तुम्हारा नाम रसीला है न ?”

“जी !”

“सच-सच बताओ, तुमने क्या किया है ?”

“हम नहीं बतायेंगे,” लड़का ढिठाई से बोला, “यदि इनमें से कोई बतायगा, तो मैं उसका फिर फोड़ दूंगा।”

लता शांत स्वर में बोली—“यदि तुम ऐसा करोगे, तो एक दोष को छिपाने के लिए तुम दूसरे दोष के भागी बनोगे। फिर उसे छिपाने के लिए तुम्हें तीसरा कुर्म करना पड़ेगा और फिर चौथा। यह सब-कुछ करके तुम्हारे मन में ग्लानि उत्पन्न होगी और तुम अपने किये पर पछताओगे।”

लड़का चुप रहा। उसकी बात का बालक पर असर हुआ है। लता समझ गई और बोली—“सच बताओ, जो-कुछ तुमने किया है, उसका तुम्हें पछतावा नहीं ?”

“क्यों नहीं,” बालक फूट पड़ा, “पर ये लोग मुझे चिढ़ाते क्यों हैं ? यदि ये मुझे चिढ़ाते नहीं, तो मैंने अम्मा से अब तक क्षमा मांग ली होती।”

“अब भी मांग लो, तो सब ठीक हो जायगा।”

“बहुत अच्छा,” बालक ने प्रसन्न होकर कहा, “मैंने माँ को केवल...” बालक भिन्नका।

“जो-कुछ तुमने किया, उसे बताने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। बस, तुम माँ से क्षमा मांग लेना।”

यह कहकर लता मोटर की ओर बढ़ गई। बच्चों ने उसका अनुसरण

किया। एक को छोड़कर उसने मोटर में से लिफाफे निकाल लिए और बच्चों में बाँट दिए।

“अब आप कब आयेंगी ?” बच्चे प्रसन्नता से उछलते हुए पूछने लगे।

“यदि तुम अच्छे बालक बनोगे, तो जल्दी ही आऊँगी।”

“हम सब अच्छे बालक बनेंगे।” बच्चों का स्वर सत्यता से श्रोत-प्रोत था।

लता उनसे छुट्टी लेकर गाड़ी में आ बैठी, तो कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा। रोहित के स्कूल से लौटने का समय हो चला था। उसने शोफर को शीघ्र वापस चलने का आदेश दिया। मोटर उसे लेकर उड़ चली। जब वह घर पहुँची, तो रोहित उसकी प्रतीक्षा में बैठा था।

“ममी, आप कहाँ चली गई थीं ?” उसने उलाहने-भरे स्वर में पूछा।

“मैं गई थी तुम्हारे-जैसे बच्चों से मिलने।”

“बच्चों से ! क्यों ?”

“उन्हें कुछ मिठाई और खिलौने देने।”

“मिठाई और खिलौने ?” रोहित के स्वर में उत्सुकता थी।

हाँ, उनके माता-पिता उन्हें ये दे नहीं सकते और उनका जी भी इन पदार्थों के लिए तरसता है।”

“आप मेरे लिए भी मिठाई और खिलौने लाई हैं क्या ?”

“क्यों नहीं। तुम्हारा लिफाफा बाहर मोटर में पड़ा है। वहाँ से उठा लो !”

रोहित भागा हुआ गया और एक ही मिनट में लिफाफा लेकर उछलता हुआ लौट आया। लता ने देखा कि थोड़ी सी मिठाई, फल और दो-एक खिलौने पाकर धनकुबेर माता-पिता के बेटे रोहित के मुख पर भी वही प्रसन्नता थी, जो उन दरिद्र बालकों के मुख पर झलकी थी। इससे लता का मन किंचित् शांत और स्वस्थ हुआ।

बैठी थी कि उसके पिता ने प्रवेश किया। उसने उड़ती हुई दृष्टि से अपनी बेटो की ओर देखा और पूछा—“तुम्हारी ममी कहाँ हैं?”

“ममी?” चित्रा ने पिता की ओर ऐसे देखा, मानो किसी स्वप्न से जाग रही हो। बोली, “यहीं कहीं होंगी,” थोड़ा रुककर, “शायद कहीं बाहर गई है।”

चित्रा के इस व्यवहार से डॉक्टर का माथा ठनका। वह अपनी बेटो की ओर बढ़ गया और पास वाली कुर्सी पर बैठते हुए किंचित् चिंता-भरे स्वर में पूछने लगा—“तुम ठीक तो हो? क्या बात है?”

“बात?” चित्रा ने पिता को ध्यानपूर्वक देखा और बोली, “शायद कुछ भी नहीं; पर हो सकता है, काफी विषम परिस्थिति हो गई हो।”

“कैसे?” पिता की चिंता बढ़ गई।

“मुझे लगता है” चित्रा स्थिति को स्पष्ट करने लगी, “कि रंजन की कुमंत्रणा सफल हो गई है और विपिन ने स्नेहलता जी से युद्ध छेड़ दिया है।”

“क्या विपिन का कोई पत्र आया है?”

“नहीं, और यही बात भय उपजाती है। अभी थोड़ी देर हुई, रंजन सड़क पर मेरे पास से होकर निकल गया। लाख प्रयत्नों द्वारा भी उसका ध्यान मैं अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा उसने जान-बूझकर किया है।”

“हो सकता है, क्योंकि उसके जैसा धूर्त मिलना कठिन है,” पिता ने पुत्री को हाँ-मैं-हाँ मिलाई।

“इसलिए मैं सोच रही हूँ,” चित्रा ने होठों पर झूठी मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए कहा, “बो-एक दिन के लिए शिमले हो आऊँ, ताकि निश्चित रूप से स्थिति का पता लगा सकूँ। और यदि सचमुच मेरा स्वप्न भंग हो चुका है, तो उसका मोह छोड़ूँ।” कहते-कहते चित्रा का गला थोड़ा भर आया।

“स्वप्न-भंग?” पिता ने ऐसे कहा, मानो बात पूरी तरह समझ में न आई हो।

“हाँ,” चित्रा अपने भावों को छिपाती हुई इस-बार खुलकर मुस्कराई,

“क्योंकि यदि विपिन ने अपनी माँ के विरुद्ध अर्जो दे दी है, तो मेरी इससे अधिक अवहेलना वह कर ही नहीं सकता था।”

“किंतु...” पिता थोड़ा रुका।

“अभी उस दिन उसने मेरे अनुरोध पर यह प्रतिज्ञा की थी कि वह गृह-युद्ध में नहीं पड़ेगा। और जो मनुष्य प्रतिज्ञा भंग कर सकता है, उस पर विश्वास ही कैसे हो सकता है।”

“किंतु हो सकता है, तुम्हारा अनुमान ठीक न हो।”

“हाँ, हो सकता है, और मैं भगवान् से यही प्रार्थना कर रही हूँ; परन्तु रंजन की चतुर योजनाओं से विपिन बच निकलेगा, यह आशा भी नहीं की जा सकती।”

“तो आज रात की गाड़ी से चलो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।”

चित्रा खिल उठी—“बहुत अच्छा !”

“मैं अभी ट्रेन में सीटें रिजर्व करवाने का प्रबन्ध करता हूँ। सेसिल होटल वालों को भी टेलीफोन करता हूँ।”

“और मैं भटपट तैयार हो जाती हूँ।”

डॉक्टर टेलीफोन वाले कमरे की ओर चल दिया और चित्रा अपने कमरे की ओर भागी। चूँकि रेल-अधिकारियों से उसकी जान-पहचान थी, इसलिए उसे सेकंड क्लास के दो बर्थ तत्काल मिल गए। तब उसने शिमले के लिए कॉल बुक की। उसमें भी अधिक देर न लगी। इसलिए लगभग घंटे-भर बाद जब चित्रा पिता के कमरे में आई, तो उसे यह जानकर सन्तोष हुआ कि रेल-गाड़ी में और होटल में भी उनके लिए स्थान सुरक्षित है।

चित्रा कहने लगी—“किंतु ममी अभी तक नहीं आई, उनसे भी सलाह कर लेते, तो ठीक रहता।”

“जाने तक अवश्य आ जायेंगी। यहीं पास में कहीं गप-शप करने गई होंगी।”

वह अभी यह कह ही रहा था कि चित्रा की माँ भी आ गई। उसने कमरे में घुसते ही दोनों पिता-पुत्री की ओर उत्सुकता से देखा।

“डंडी और मैं आज रात की गाड़ी से दो-तीन दिन के लिए शिमला जा रहे हैं, ममी !”

माँ ने आश्चर्य से बेटी की ओर देखा—“शिमला जा रहे हैं ! बहुत शीघ्र निश्चय किया है । मैं कुछ ही क्षणों के लिए घर से बाहर निकली हूँ कि पिता-पुत्री ने षड्यंत्र रच डाला ! और यदि मैं भी जाना चाहूँ, तो ? पर जा क्यों रहे हो ?”

चित्रा ने माँ को परिस्थिति से परिचित करा दिया और बोल—“आप भी चलिए !”

माँ ने सिर हिला दिया—“न, मैं न जा सकूंगी । दो-तीन दिन के लिए कालका-शिमला की कष्टदायक यात्रा मुझसे न बन पड़ेगी । तुम दोनों ही हो आओ । मैं तुम्हारे खाने-पीने का प्रबन्ध करने जाती हूँ ।”

यह कहकर माँ कमरे से बाहर चली गई और उसके पिता ने भी उसका अनुसरण किया । चित्रा कुछ क्षण कमरे में ज्यों-की-त्यों खड़ी रही, फिर बाहर लॉन में चली गई । वहाँ ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी । उसके दो-एक भोंकों से ही उसका मन कुछ स्वस्थ हुआ । लॉन की हरी-हरी घास पर वह टहलने लगी और सोचने लगी । क्या सचमुच वर्षों से पोषित उसका सुस्वप्न छिन्न-भिन्न हो जायगा ? यदि सचमुच विपिन ने वह पथ पकड़ लिया है, जिसकी उसे आशंका है, तो वह उसे कभी क्षमा न कर सकेगी । उसे सदा के लिए छोड़ना होगा, छोड़ना ! उसके हृदय में एक हलवल हुई । क्या वह उसे त्याग सकेगी ? त्यागना तो होगा ही । प्रतिज्ञा-भंग करने के अनंतर वह उसे अंगीकार भी कैसे कर सकती है । पर शायद उसका भय निर्मूल ही हो और विपिन अपने वचन का पालन कर रहा हो । यह सब-कुछ सोचती हुई वह पुनः अपने कमरे की ओर चल पड़ी ।

किंतु उसका भय निर्मूल नहीं था, यह बात अगले ही दिन स्पष्ट हो गई । जिस कार में वे कालका से शिमला पहुँचे, वह काफी तेज थी । इसलिए सेसिल होटल में वे लगभग साढ़े दस बजे ही पहुँच गए । ग्यारह बजे तक चित्रा मुंह-हाथ धोकर तैयार हो गई । अपने पिता को नित्य-कर्म से निपटने के लिए छोड़-

कर वह होटल के टेलीफोन पर पहुँची और स्नेहलता को फोन किया। स्नेहलता उसकी आवाज सुनकर गद्गद हो गई।

“तुम कब आईं, बेटा ?” लता ने पूछा, “मुझसे कब मिलोगी ?”

“अभी पहुँची हूँ। मैं आप ही की ओर आ रही हूँ।”

“तो चली आओ। खाना यहीं खाना होगा तुम्हें। साथ में कोई और भी है ?”

“डैडी है। पर मैं उनकी प्रतीक्षा न कर सकूंगी,” चित्रा किंचित् रुकी, “क्या विपिन और शिवा घर पर ही है ?”

“नहीं,” लता भी थोड़ा झिझकी, “वे तो मेरे यहाँ अब नहीं रहते।”

“आपके यहाँ नहीं रहते ! क्यों ?”

“शायद इसलिए,” टेलीफोन का तार भी लता के स्वर की करुणा को छिपा न सका, “कि उन्होंने मेरे विरुद्ध अदालती कार्रवाई आरम्भ कर दी है।”

चित्रा के हृदय में आशा की जो एक लकीर बाकी बची हुई थी, वह सहसा मिट गई। दुःख-भरे स्वर में बोली—“आखिर वे नहीं माने ! खैर, कोई बात नहीं। मैं अभी आती हूँ।”

उसने रिसीवर स्थान पर रख दिया और अपने कमरे में लौट गई। उसके पिता बाथ-रूम से बाहर निकल रहे थे। उन्होंने उत्सुकता से चित्रा की ओर देखा और पूछा—“कुछ पता चला ?”

“पूरा।” चित्रा के स्वर में शुष्क व्यंग्य था, “हमारे वीर ने अपनी माँ पर कानूनी आक्रमण कर दिया है।”

“यह उसने बुरा किया है।”

“निःसंदेह, और यह भी निर्विवाद है कि वह ऐसी मुंह की खायगा, जिसकी उसे स्वप्न में भी आशा नहीं होगी। उसने इस्पात की उस चट्टान से टक्कर ली है, जिस पर लाख सिर पटकने पर भी वह उसका बाल बाँका न कर सकेगा। और जिस रंजन के भरोसे उसने यह दुस्साहस किया है, वही उसका अभिशाप बनेगा।”

“उसे क्या समझाना नहीं चाहिए ?” पिता ने सुझाव रखा।

“उसे समझाने की घड़ी कब की बीत चुकी है। उसके प्रति पूर्ण उदासीनता ही अब हमें उचित है। और डेडी, मैं अभी स्नेहलताजी के यहाँ जा रही हूँ। मैं खाना भी वहीं खाऊँगी।”

“बहुत अच्छा !” पिता ने अनुमति दी।

चित्रा उसी क्षण कमरे से और फिर होटल से बाहर निकलकर बड़ी सड़क पर आ गई। उसने स्नेहलता की कोठी की राह पकड़ ली। सड़क की बाईं ओर वह धीरे-धीरे चलने और हृदय में उठने वाले बवंडर पर प्रभुत्व पाने का प्रयत्न करने लगी।

जब वह क्लार्क होटल के निकट से होकर गुज़री, तो ठीक उसी समय शिवा और विपिन अपने कमरे में बैठे अपने मुनहले भविष्य के स्वप्न देख रहे थे। रंजन के रंग से रंजित उनके मस्तिष्कों में केवल विजय ही छाई हुई थी। स्नेहलता की जीत का किंचित् भी भय अब उन्हें न रहा था। रह भी कैसे सकता था, जब रंजन-जैसा शब्दों का जादूगर और न्याय-पंडित अदालत में उनका प्रतिनिधित्व कर रहा हो। स्नेहलता का व्यक्तित्व, उसके वकील की योग्यता, कानूनी दृष्टि से उसके पक्ष का सौष्ठव, उसकी अनंत धन-राशि आदि उन्हें ऐसे दिखते थे, मानो धूल के कण हों, जो रंजन की एक ही फूँक से या तो उड़कर वातावरण में विलीन हो जायेंगे अथवा उनके अनुगामी बन जायेंगे। विपिन तो आरम्भ से ही रंजन-भक्त था; किन्तु शिवा भी उससे अब प्रभावित हो चुकी थी, यह निःसन्देह था। उसको अब यह पूर्ण विश्वास था कि उसने शुरू में रंजन को समझाने में भूल की थी। वे दोनों इन्हीं विचारों में निमग्न थे कि होटल के चपरासी ने कमरे में प्रवेश किया। दोनों ने प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

“आपका टेलीफोन है,” चपरासी ने कहा, “दिल्ली की कॉल है।”

“मेरे लिए या इनके लिए ?” विपिन ने प्रश्न किया।

“दोनों में से जो भी चाहे, वह कॉल ले सकता है।”

“तुम्हीं सुन आओ,” शिवा ने कहा, “रंजन का टेलीफोन होगा।”

“तुम क्यों नहीं जाती ?”

“मुझे कोई आपत्ति नहीं,” शिवा ने कहा और उठकर चल दी।

विपिन उठकर कमरे में टहलने लगा और पिछली खिड़की द्वारा कार्ट रोड पर जाते हुए इक्के-दुक्के पथिक की ओर अन्यमनस्क भाव से देखने लगा। कोई पाँच मिनट के अनंतर शिवा लौट आई। उसका मुख प्रसन्नता से दमक रहा था।

“क्यों, क्या कहता था ?” विपिन ने पूछा।

“कल यहीं आ रहा है, यही सूचना देना चाहता था।”

“बस ?”

“हाँ! ” कहकर शिवा पास वाली कुर्सी पर बैठ गई।

“कुछ तो और कहता होगा ?”

“यही, इधर-उधर की बातें और मौसम का हाल,” शिवा ने उत्तर दिया और तिपाई पर पड़ा हुआ पत्र उठा लिया।

“अच्छा, मैं ज़रा सिगरेट ले आऊँ,” विपिन ने कहा और बाहर चला गया।

शिवा खुलकर मुस्कराई, क्योंकि रंजन ने उससे इधर-उधर की बातें नहीं की थीं, बल्कि अपने कलात्मक ढंग से शिवा के रूप-लावण्य और तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशंसा की थी। ‘सुन्दरे किं न सुन्दरं’ रंजन द्वारा कहा हुआ वाक्य अब तक उसके कानों में मधुरता लिये हुए गूँज रहा था। वह एकाएक उठकर साथ वाले कमरे में चली गई, जो शृङ्गार-गृह था और बड़े आइने में अपने प्रति-बिंब को सिर से पाँव तक देखने लगी। वह निःसंदेह सुन्दर थी और उसकी वेश-भूषा चित्ताकर्षक थी। रंजन ने जो-कुछ कहा था, उसमें उसे किंचित् भी अतिरंजना का भास न हुआ, उल्टा अपने मोहक व्यक्तित्व के प्रति एक मोह, एक विजयोत्प्लास जाग्रत हुआ। यदि कोई उससे यह कहता कि रंजन ने अपनी चतुर योजना द्वारा उसके हृदय को पराजित कर दिया है, तो वह न केवल उसके अविश्वास का, बल्कि तिरस्कार का भाजन भी बनता।

इस बीच विपिन सिगरेट ले आया। शिवा को कमरे में न पाकर वह ऊँचे स्वर में बोला—“शिवा, तुम किधर चली गई ?”

“इधर ही हूँ, भैया !” शिवा ने उत्तर दिया और अपने भावों को छिपाने के प्रयत्न में पुनः अपनी कुर्सी पर आ बंठी और विपिन के सिगरेट के धुएँ से बनते हुए कुंडलों को स्वप्निल नेत्रों से देखने लगी ।

३०

जब चित्रा ने स्नेहलता के कमरे में प्रवेश किया, तो वह उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा में बंठी थी । उसने मुस्कराकर चित्रा का स्वागत किया और अपने निकट ही सोफे पर बैठने का संकेत किया । चित्रा ने आगे बढ़कर बड़ी श्रद्धा से झुककर स्नेहलता के चरण छुए और उसके पास बैठ गई ।

“माँ जी,” चित्रा ने बिना किसी प्रस्ताव के कहना आरंभ किया, “मैं आपसे एक वर माँगने आई हूँ।”

“कहो !”

“विपिन के कारण आप मुझे अपनी बेटी का पद दे चुकी हैं।”

“निःसंदेह !” स्नेहलता प्रसन्न हुई ।

“वह पद मुझसे छीन न लेना, यही प्रार्थना आज करने आई हूँ।”

“यह कैसे हो सकता है,” स्नेहलता ने आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, “विपिन चाहे कुछ भी करे, मेरे निकट वह सदैव मेरा बेटा बना रहेगा और उसके व्यवहार से अपने प्रति मेरे भावों में अंतर आने का स्वप्न भी न देखो, बेटी।” कहते-कहते स्नेहलता का गला भर आया ।

चित्रा पुलकित हो उठी और बोली—“आपने मेरा आशय पूरी तरह नहीं समझा । मैं तो वर इसलिए माँगने आई थी कि आप तक पहुँचने के लिए मुझे विपिन का माध्यम अब न मिल सकेगा । मेरा और उसका पथ आज से विभिन्न हो गया है । अब मेरे जीवन में उसका कोई अस्तित्व नहीं रहा ।”

“ऐसा न कहो, बेटी ! मुझ अभागिनी के लिए अपना सोने का भविष्य न बिगाड़ो।”

“मेरा सोने का भविष्य,” चित्रा के स्वर में व्यंग्यात्मक कड़वाहट थी, “तो उसी समय नष्ट हो गया, जब मुझे यह पता चला कि विपिन ने मेरे साथ किये

हुए बाढ़े को धूल में मिला दिया है।”

“किंतु बेटो, जो-कुछ उसने किया है, उसे उसके दृष्टिकोण से देखो।”

“उसके दृष्टिकोण से तो देखती हूँ, किंतु उसे किसी कसौटी पर तो कसना होगा। यदि उसके दृष्टिकोण में स्वार्थ और धन-लोलुपता के अतिरिक्त कुछ और भी दीखे, तो उसका वचनघात भी शायद क्षम्य कहा जा सके।”

किंतु लता ने फिर बाधा दी—“मनुष्य परिस्थितियों का दास है, यह तो मानोगी ?”

“मानती हूँ।” चित्रा ने सिर हिला दिया।

“विपिन भी इस समय कुछ अद्भुत परिस्थितियों में उलझ गया है। ज्यों ही वह अपने-आपको उनसे छुड़ा पायगा, पुनः सीधी राह पर आ जायगा।”

चित्रा के मुँह से एकाएक फिसल पड़ा—“तब क्या आप पुनः उसे गोद में छिपा लेंगी ?”

“अवश्य,” स्नेहलता ने निःसंकोच कहा, “और तुम ?”

“मे,” चित्रा के स्वर में भी कोई संदेह न था, “अब उसे न अपना सकूंगी। उसने जो-कुछ किया है, उसके प्रति मेरा एक-एक रोम विद्रोह कर उठा है। इसलिए विशेष प्रयत्न भी अब मुझे उसकी ओर आकर्षित न कर सकेंगे।”

“किसी के प्रयत्न भी नहीं ?”

चित्रा ने सहसा कुछ जवाब न दिया, ध्यान से स्नेहलता की ओर देखा और निश्चयात्मक स्वर में बोली—“नहीं।”

“तुम्हारे अपने प्रयत्न भी नहीं ?”

“नहीं,” चित्रा का स्वर फिर कहर हो गया, “मेरे प्रयत्न ही तो मेरी राह के काँटे बन रहे हैं। मैं जितना ही उसके व्यवहार में औचित्य पाने का प्रयत्न करती हूँ, उतना ही अनौचित्य उसमें दिखता है। नहीं, माँ जी, मैं उससे इतना दूर जा पड़ी हूँ कि आयु पर्यन्त द्रुत गति से चलने पर भी उस तक न पहुँच सकूंगी।”

“यदि मैं तुमसे अनुरोध करूँ कि अपने निश्चय को बदलने का प्रयत्न न छोड़ना, तो मानोगी ?”

‘आपकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु...’

“धन्यवाद !” स्नेहलता ने चित्रा को वहीं रोक दिया, “तुम प्रयत्न किये जाओ, वाकी समय पर छोड़ दो !”

“बहुत अच्छा !” चित्रा ने सिर झुकाकर लता की सीख स्वीकार की ।

“अब तुम्हारे खाने-पीने का प्रबंध करूँ,” कहते-कहते लता उठ खड़ी हुई, “मैं अभी आती हूँ ।”

लता के चले जाने पर चित्रा कुछ देर ज्यों-की-त्यों बैठी रही, फिर उठकर कमरे की खिड़की से बाहर भाँकने लगी । आकाश उस दिन मेघ-रहित था और उसकी नीली निर्मल महानता चारों ओर फैली हुई थी । मेघ के एक-दो टुकड़े इधर-उधर भागकर आकाश से छेड़-छाड़ करने के प्रयत्न में थे; किन्तु वह मानो उन पर मुस्करा रहा था । क्या स्नेहलता भी इस आकाश के समान निर्मल और महान नहीं, चित्रा सोचने लगी । विपिन उसके ऊपर विपत्तियों के मेघ छा देने की दौड़-धूप में है, किन्तु इसका मन उसके प्रति मिला नहीं हुआ । अभी तक वैसा ही निर्मल है, जैसा कि उन कई वर्षों में रहा होगा, जब उस मातृ-विहीन बालक को उसने अपने वक्षस्थल से पुत्र-रूप में लगाए रखा था । विपिन द्वारा प्रस्तुत किये हुए मेघों को वह ऐसे देख रही है, मानो वे छिन्न-भिन्न होने के लिए ही उपजे हों । वह अपनी महानता अपने तक ही सीमित रखना नहीं चाहती । उसे भी अपने रंग में रंजित करना चाहती है । किन्तु वह उसकी महानता को कहाँ छू सकती है ! उसे तो तब संतोष होगा, जब विपिन मुँह की खायगा । वह उसी दिन के लिए जीना चाहेगी । हाँ, विपिन को पराजय का कटु फल चखना ही होगा । एक-एक पग पर स्नेहलता के साथ मिलकर वह उस कृतघ्न विपिन का विरोध करेगी । उसके भविष्य के सुख-स्वप्नों को खाक में मिलायगी । वह जोश में आ गई और खिड़की से दूर हटकर पुनः कमरे में चली आई । तब तक स्नेहलता भी लौट आई थी । उत्तेजना के चिह्न चित्रा के मुख पर भी अंकित थे ।

“श्या बात है, बेटी ?” लता ने थोड़े चिंतित स्वर में पूछा ।

“कुछ नहीं । मैं सोच रही थी,” चित्रा ने अपने ऊपर प्रभुःव पाने का

प्रयत्न किया, “यदि आप मुझे विपिन के विरोध में अपने साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाने की अनुमति दें, तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।”

“इसके लिए अनेक धन्यवाद !” लता मुस्कराई, “मेरा महान् आत्मा-भिमान, जिसे अपनाने का मैं मानती हूँ कि मुझे कोई अधिकार नहीं, मुझे यह कभी भी करने नहीं देगा।”

चित्रा की निराशा स्पष्ट थी—“आप क्यों मुझे इस दिशा से विमुख करना चाहती हैं, मैं खूब समझती हूँ; किंतु आपके प्रयास सफल होंगे, इसमें मुझे संदेह है।”

“यह बात नहीं बेटी !” लता ने कोमल स्वर में कहा।

इतने में खाना तैयार हो जाने की सूचना आ पहुँची। दोनों खाने वाले कमरे की ओर चल दीं।

खाने की मेज़ पर स्नेहलता और चित्रा ने विपिन के विषय में कोई बात नहीं की। वहाँ पर रोहित, उसके स्कूल और उसकी शरारतों के साथ-साथ मौसम की ही बातें होती रहीं। खाने के अनन्तर भी जब तक चित्रा स्नेहलता से छुट्टी लेकर चल नहीं पड़ी, वे इधर-उधर की ही बातें करती रहीं।

जब शाम को चित्रा क्लार्क होटल के निकट से जा रही थी, तो सहसा उसका सामना विपिन और शिवा से हो गया। दोनों किंचित् लज्जित-से उसकी ओर बढ़े।

“तुम कब आई ?” विपिन ने पूछा।

“आज प्रातः आई थी,” चित्रा ने धीरे से जवाब दिया।

“हमें खबर तो कर दी होती ?” शिवा ने कहा।

“कहाँ ?” चित्रा ने सोचा, किंतु कहा नहीं। उसके होठों पर व्यंग्य की एक रेखा खेल उठी। शान्त स्वर में बोली, “आपके घर से ही तो अभी आ रही हूँ।”

“हम तो अब वहाँ रहते नहीं।” विपिन बोला।

“हाँ, अब जानती हूँ, किन्तु यह बात वहाँ पहुँचने पर ही खुली।” चित्रा के स्वर में छिपा हुआ व्यंग्य था।

“यह हमारा सौभाग्य है कि आप यहाँ मिल गई,” शिवा मुस्कराई, “हम यहीं रहते हैं। चलो कुछ देर हमारे पास भी बैठो।”

चित्रा ने बहाना बनाया—“इस समय न जा सकूंगी। मुझे एक जगह आवश्यक काम से जाना है।”

“तो रात का खाना हमारे यहाँ खाओ।” इस बार आग्रह विपिन की ओर से हुआ।

“मुझे खेद है कि मुझे इस आनंद से भी वंचित ही रहना होगा। मेरा रात का खाना पिताजी के एक मित्र के यहाँ है।” चित्रा ने एक ओर झूठा बहाना गढ़ा।

“तुम दिल्ली कब लौट रही हो?” विपिन ने पूछा।

“कल।”

“कल?”

“हाँ। क्यों?”

“मुझे तुमसे कुछ बहुत जरूरी बातें करनी थीं। उनके लिए तो थोड़ा समय तुम्हें निकालना ही होगा।”

“बातों का युग कभी का बीत चुका है। अब तो तुमने कर्म-युग में प्रवेश किया है,” चित्रा की वाणी तीखी छुरी की धार-सी तेज थी, “और जो काम तुम करने जा रहे हो, उसके लिए मुझसे सहानुभूति किसी भी मूल्य पर न मिल सकेगी। सहानुभूति की तो बात ही छोड़ो, यदि कहीं मुझे अनुमति मिल जाती, तो तुमने जो पथ पकड़ा है, उसमें इतने काँटे बिछा देती कि तुम्हारे लिए एक-एक पग चलना भी भारी हो जाता।”

“मैं तुम्हारी बात समझा नहीं।” विपिन हक्का-बक्का रह गया।

“इसे ही अपना सौभाग्य मानो। अब केवल भगवान् से यही प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारी अन्यायपूर्ण छेड़ें हुए गृह-कलह में उस महान् देवी का पथ विजय से प्रालोकित हो, जिसकी चरण-रज छूने के भी हम अधिकारी नहीं।”

“अन्यायपूर्ण!” विपिन ने अपने अन्तर उठते हुए क्रोध को दबाने के प्रयत्न में कहा, “चित्रा, यों बात को तूल न दो। यदि मुझे कुछ ही क्षण का

समय दो तो मैं सारी स्थिति संतोषजनक ढंग से स्पष्ट कर सकता हूँ। मेरी यह बात तो मान लो।”

किंतु चित्रा बिलकुल प्रभावित न हुई। उसने एक बार विपिन की ओर ऐसे देखा, मानो निपट अजनबी हो और बोली — “जिसके पास तुम्हारी व्यर्थ की चिकनो-चुपड़ी बातें सुनने का समय होगा, वह अवश्य तुम्हारी बात मानेगी किन्तु मेरे पास अब वह फुरसत नहीं। इसलिए मैं क्षमा ही चाहूँगी। लो नमस्कार !”

यह कहते-कहते चित्रा उनके पास से होकर तेजी से आगे बढ़ गई। उसे रोकने के लिए विपिन और शिवा की जिद्दाओं पर आए हुए शब्द वहीं-के-वहीं रह गए। जब वह काफी दूर निकल गई, तो शिवा की जबान खुली — “भैया, यह ठीक नहीं हुआ।”

“मैं मानता हूँ, ठीक नहीं हुआ,” विपिन सोव में डूबा हुआ कहने लगा, “किन्तु अभी एक अप्रिय आश्चर्य से उसकी बुद्धि थोड़ी कुंठित हो गई है। प्रातः तक वह परिपस्थिति को ठीक दृष्टिकोण से देखने लगेगी, तब उसकी यह ज़िद जाती रहेगी।”

“आपको यह आशा है ?”

“अवश्य। तुम ऐसा नहीं समझती क्या ?”

“नहीं,” शिवा ने सिर हिला दिया। उसका स्वर निराशा से परिपूर्ण था, “मैं तो समझती हूँ, हमने उसे खो दिया।”

“मैं यह नहीं मानता। खैर, प्रातःकाल तक तो प्रतीक्षा करके देखो।”

“कर देखो।” शिवा ने बुझे हुए स्वर में कहा।

इसके अनंतर दोनों भाई-बहन अपने होटल की ओर चल पड़े।

३१

अगले दिन शिवा और विपिन अभी नहा-धोकर तैयार भी नहीं हुए थे कि सिर से पाँव तक सजा-बजा रंजन आ पहुँचा। मालूम होता था कि कालका पे गाड़ी से उतरने से पहले ही उसने पूरा श्रृंगार कर लिया था। इसलिए जब

उसने कमरे में प्रवेश किया, तो वह आत्म-विश्वास से श्रोत-प्रोत था । उसने शिवा और विपिन को हाथ जोड़ते हुए मुस्कराकर नमस्कार किया । वे भी उसे प्रति नमस्कार करते हुए प्रसन्न हुए ।

“बड़ी जल्दी पहुँच गए आप ?” शिवा ने, जो नहाने के लिए जाने को तैयार थी, मेज पर पड़ी हुई टाइमपीस की ओर देखते हुए कहा—“अभी तो साढ़े दस ही बजे हैं ।”

“हाँ, मुझे स्टेशन से निकलते ही बिलकुल तैयार कार मिल गई ।”

“तभी !” शिवा बोली ।

“मेरे कमरे में तो मानो नवजीवन का संचार हो गया है !” उसने कमरे में रखी हुई वस्तुओं की ओर देखते हुए कहा और प्रशंसात्मक भाव से शिवा की ओर देखा ।

शिवा किंचित् अभिमान से मुस्कराई—“जहाँ नारी का हाथ लगेगा, इतना तो होगा ही । इसके लिए पुष्पांजलि न भेंट करो ।”

रंजन खुश हुआ कि उसका तोर निशाने पर बैठे हैं । बोला—“पुष्पांजलि न सही, कुछ पुष्प तो अर्पण करने ही होंगे ।”

“मुझे तो न भूलो,” विपिन हँसा, “जो-कुछ शिवा ने किया है, उसमें मंने पूरी सहायता की है ।”

“तुम्हें भी अनेक धन्यवाद !” रंजन भी हँसने लगा—“शिवा जी, क्या चाय का एक प्याला भी मुझे नहीं मिलेगा ?”

“क्यों नहीं,” शिवा ने झूठी लज्जा प्रकट की, “भूल के लिए क्षमा माँगती हूँ ।”

शिवा तेजी से कमरे से बाहर चली गई । तब रंजन ने विपिन की ओर ध्यान दिया—“इधर के मोर्चे का क्या हाल है ? शत्रु किस तैयारी में है ?”

“शत्रु की बात तो मैं नहीं जानता, पर ऐसा लगता है कि चित्रा मुझसे रूठ गई है ।”

“चित्रा !” रंजन गंभीर स्वर में कुछ कहने ही जा रहा था कि शिवा लौट आई ।

“चाय अभी आती है,” उसने सूचना दी और पूछा, “चित्रा क्या ?”

“सुना है कि वह रूठ गई है, किंतु मैं इसको विशेष महत्त्व नहीं देता।” रंजन ने कहा।

“क्यों ?” विपिन को थोड़ी आशा बंधी।

रंजन कहने लगा—“क्योंकि वह एक भावुक लड़की है, बहुत ही भावुक और आदर्शवाद की ओर झुकाव लिये हुए। इसलिए उसको मनाना कठिन नहीं। भावुकता और आदर्श-मिश्रित यथार्थवादी भविष्य के चित्र यदि उसके सामने खींचे जायें, तो वह तुम्हारी ही रहेगी, यह निश्चय रखो !”

“सब ?” विपिन के स्वर में सहसा उत्साह भर गया, किंतु वह आधा क्षण भी टिक न सका। दूसरे ही क्षण अर्द्ध निराश स्वर में बोला, “पर बंसे चित्र खींचेगा कौन ?”

“तुम, और कौन ?”

“मुझमें न प्रतिभा है, न जिह्वा में जादू ही कि बंसे चित्र मैं खींच सकूँ,” विपिन ने सिर हिलाते हुए कहा।

“यह काम तो तुम्हें ही करना होगा और तब, जब तीसरे मनुष्य की छाया भी तुम्हारे मध्य में न हो। प्रेम का पथ बिल्कुल एकांत मांगता है और उसमें प्रतिनिधित्व का नियम नहीं। इसलिए इस पर तुम्हें स्वयं ही परिश्रम करना होगा।”

“परिश्रम से तो मैं डरता नहीं, किंतु स्फूर्ति कहाँ से पाऊँ ?”

“उसके लिए प्रार्थना करो। जो बल प्रार्थना में है, और किसी बात में नहीं,” कहते-कहते रंजन ने अनुभव किया कि वह उधार माँगे हुए भाव प्रस्तुत कर रहा है; किंतु वह उन्हें ऐसे ले उड़ा, मानो उसी के मस्तिष्क की उपज हों, “इसलिए कुछ देर एकांत में बैठकर प्रार्थना करो और प्रकृति से स्फूर्ति का दान माँगो। वह तुम्हें अवश्य मिलेगी।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने किंचित् आशा-भरे स्वर में कहा और शिवा की ओर देखा।

“यों न देखो, भैया, मैं नहाने चली,” शिवा ने कहा और कमरे से अपने

शृंगार-गृह में और फिर उससे होती हुई गुसलखाने में चली गई ।

जब तक शिवा नहाती रही, रंजन और विपिन भविष्य के सुस्वप्नों में उलझे रहे । जब वह स्नान करके लौटी, तो विपिन उठ खड़ा हुआ । वह नहाने के लिए चला गया और शिवा अपने शृंगार में लीन हो गई । इस बीच रंजन कमरे में अकेला रह गया । उसने जेब से लाल रंग की मखमल की लगभग चार इंच लंबी और चार इंच चौड़ी एक डिबिया निकाली, जिस पर सुनहले अक्षरों में कुछ अंकित था और उसे कमरे के मध्य में पड़ी हुई तिपाई पर रख दिया । वहाँ एक-दो अखबार पड़े थे, उनको उसने वहाँ से उठा दिया, ताकि तिपाई पर पड़ी हुई डिबिया की ओर ध्यान आकृष्ट हो सके । इसलिए जब शिवा शृंगार-गृह से लौटी, तो उसकी दृष्टि अनायास ही उस डिबिया पर पड़ी ।

“यह क्या है ?” उसने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए पूछा ।

“उठाकर देख लो !”

शिवा ने आगे बढ़कर डिबिया उठा ली और उसे खोला । डिबिया में हीरे के टॉप्स की बहुत ही सुन्दर जोड़ी जगमगा रही थी । शिवा देखते ही मुग्ध हो गई—“ये किसके हैं ?”

“डिबिया में पड़ा हुआ कार्ड देख लो ।”

शिवा ने कार्ड उठा लिया और उसे एक ही साँस में पढ़ गई—‘शिवा के लिए, यदि वह इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कर ले ।’

“मेरे लिए, किंतु...”

“किंतु क्या ? यदि इन्हें लेने में आपत्ति हो, तो स्पष्ट कह दो ।”

“आपत्ति !” शिवा सोच में डूब गई—‘क्या उसे आपत्ति है ? क्या रंजन जो-कुछ उनके लिए कर रहा है, उससे वह उनके इतना निकट नहीं आ गया है कि कानों का यह आभूषण देने का अधिकार उसे प्राप्त हो गया हो ? यदि उसने इन्हें स्वीकार न किया, तो इसका अभिप्राय होगा उसके प्रति विमुखता ।’ किंतु क्या वह अब उसके प्रति उदासीन थी ? ‘नहीं,’ उसके हृदय ने कहा । तब झूठा ऊपरी व्यवहार प्रदर्शित करने से क्या लाभ ? उसे धन्यवाद-सहित यह

भेट स्वीकार करनी चाहिए। ये टॉप्स है भी कितने सुन्दर ! वह बोली — “मे आपत्ति की बात नहीं सोच रही थी। यह सोच रही थी कि आप यदि यह कष्ट करने ही जा रहे थे, तो इतनी महँगी चीज़ नहीं खरीदनी चाहिए थी।”

रंजन का हृदय खिल उठा। गद्गद् स्वर में बोला — “मे चीज़ की महँगाई और सस्तेपन को नहीं देखता, बल्कि उसके कलात्मक रूप की ओर ही मेरी दृष्टि जाती है। यदि आपको ये भाए हैं, तो मेरा चुनाव सफल हो गया।”

“टॉप्स निःसंदेह बहुत ही सुंदर तथा आकर्षक हैं और जिस भाव से आप इन्हें लाए हैं, वह तो अमूल्य है।”

“आप यह समझती हैं ?”

“क्यों नहीं ?”

“तब आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।” रंजन का स्वर मधु-सा मीठा था, “आज मेरे जीवन में एक अद्भुत दिवस आया है।”

“इतने भावुक न बनो।” शिवा की प्रसन्नता भी छिपाए न छिप रही थी। और रंजन का मन ऐसे नाच रहा था, जैसे उसने एक अद्भुत विजय प्राप्त की हो। उसकी विजय में संदेह ही अब कहाँ रह गया था ? दो निशाने बाँधकर उसने तीर चलाए थे। एक था विपिन को माँ से मुकदमा लड़ने के लिए प्रेरित करना और दूसरा था शिवा को प्राप्त करना। दोनों में लगभग आज वह सफल हो गया था। केस का विरोध तो आरंभ हो ही गया था और शिवा अब उसकी उँगली के संकेतों पर नाचेगी, यह स्थिति उसने उत्पन्न कर दी थी। वह मुस्कराया और बोला — “यदि आप अभी इन्हें पहन लें, तो विपिन के लिए एक आनंदप्रद आश्चर्य हम उपस्थित कर देगी।”

“बहुत अच्छा,” शिवा ने कहा और अपने शृंगार-गृह की ओर चली गई। वहाँ उसने पहली सोने की बालियाँ उतारकर हीरे के ये टॉप्स पहन लिए। इनके पहनते ही अपने दर्पण द्वारा उसने देखा कि उसका मुख दमक उठा है। वह अभिमान से भरी बाहर आई और रंजन के सम्मुख खड़ी हो गई।

रंजन ने एक बार उसकी ओर देखा और प्रशंसात्मक स्वर में बोला — “बहुत सुन्दर !”

“क्या ?” विपिन ने, जो कमरे में घुस रहा था, पूछा।

तब विपिन का ध्यान बहन के कानों की ओर गया, जिनमें वे आभूषण जगमगा रहे थे—“निःसंदेह बहुत सुन्दर है।” विपिन ने रंजन की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

रंजन मुस्कराया—“हाँ, दोषी मैं ही हूँ। मैंने ही इन्हें ले आने की धृष्टता की थी, किंतु शिवा जी ने इन्हें स्वीकृत करके मेरी लाज रख ली।”

शिवा हँसने लगी। विपिन भी हँसा और बोला—“बातचीत में अलंकार का प्रादुर्भाव तुम-जैसे किसी वाक्य-शास्त्री से ही हुआ होगा।”

“इतना न बनाओ,” रंजन ने कहा, फिर किंचित् गंभीरता से बोला, “इस शुभ मैत्री के अवसर पर मैं आपको भोज का निमंत्रण देता हूँ।”

“निमंत्रण कैसा ?” शिवा ने आश्चर्य से रंजन की ओर देखा—“हम सब यहाँ इकट्ठे ही भोजन करेंगे।”

“यहाँ नहीं।”

“तब कहाँ ?”

“सेसिल में।”

“सेसिल में ?” विपिन के मुख पर किंचित् चिंता थी, “वहाँ पर तो चित्रा ठहरी हुई है।”

“इसीलिए तो मैंने सेसिल में जाने का प्रस्ताव किया है, ताकि हमारे आनंद पर जो थोड़ी-सी चिंता की छाया पड़ी है, उसे भी दूर कर दें।”

“वह किस तरह ?” विपिन ने पूछा।

“चित्रा को मनाकर।” रंजन ने सीधे स्वर में कहा।

“वह मान जायगी क्या ?” विपिन का स्वर सदिग्ध था।

“क्यों नहीं ?” शिवा और रंजन के मुख से एक साथ ही निकला और दोनों की वाणी उत्साह से भरी हुई थी। किन्तु विपिन उनके उत्साह से अनु-प्राणित न हो सका। उसके हृदय में छाई हुई निराशा में विशेष अंतर न पड़ा।

“चले चलो,” विपिन ने अग्यमनस्क भाव से कहा, “यद्यपि मुझमें तुम दोनों-जैसी आशावादिता नहीं है।”

सेसिल होटल पहुँचने पर विपिन का अनुमान ही ठीक निकला । उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही चित्रा तथा उसके पिता कहीं जा चुके थे । उनका सामान बँधा पड़ा था और होटल वालों को यह हिदायत थी कि सामान को चार बजे वे मोटर-स्टैंड पर पहुँचा दें । इसका मतलब यह था कि वे होटल में लौट नहीं रहे थे ।

“क्या वे कुछ और नहीं कह गए ?” विपिन ने टेलीफोन-क्लार्क से पूछा ।
“नहीं ।”

“रात अथवा प्रातः भी कुछ नहीं कहा था ?”

“यही कहा था कि उनके लिए यदि शिमला से कोई टेलीफोन आय, तो उन्हें सूचित न किया जाय ।”

“मैंने क्या कहा था तुम दोनों से,” जब वे तीनों खाने वाली मेज पर जा बैठे, तो विपिन कहने लगा, “मैं समझता हूँ, मैंने अब उसे खो दिया !”

शिवा और रंजन ने उससे असहमति प्रकट की, किन्तु इससे विपिन को आदवासन न मिल सका ।

३२

दिन-पर-दिन बीतते गए । प्रत्येक दिन जो बीतता था, शिवा और रंजन को एक-दूसरे के निकट से निकटतर करता जा रहा था । इधर इन दोनों की प्रेम-समस्या जितनी ही सुलभ रही थी, स्नेहलता द्वारा किये हुए केस में उतनी ही विपिन के दृष्टिकोण में विषमता उत्पन्न हो रही थी । रंजन के लाख प्रयत्न भी स्नेहलता के पक्ष को किंचित् भी निर्बल न कर सके थे । उसके द्वारा छोड़े हुए छोटे-छोटे केस उस बड़े केस की छट्टान पर ऐसे टकरा रहे थे, मानो विशालकाय हाथी पर फूलों की छड़ियाँ पड़ रही हों । इससे विपिन की चिन्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी । रंजन को भी संतोष न था । हृदय के अंतस्थल में उसे भी जीत की कोई आशा न थी । हाँ, ऊपर से उसका मूल मंत्र अभी तक आशा और प्रोत्साहन से ही ओत-प्रोत था । उस दिन दोपहर के भोजन के उपरांत तीनों कमरे में बैठे थे । शिवा और रंजन की कुर्सियाँ एक-दूसरे के

सम्मुख थीं और विपिन की एक ओर को। बातचीत का मुख्य विषय था नया आया हुआ चित्र और बातचीत में मुख्य भाग लेने वाले थे रंजन और शिवा। दोनों को वह चित्र प्रेम की अमर ज्योति से प्रज्वलित दिखा था और विपिन को प्रेम का अरोचक खिलवाड़-सा लगा था। किन्तु विपिन ने अपने दृष्टिकोण पर जोर नहीं दिया था। उसका मस्तिष्क तो अपने भविष्य के ताने-बाने बनने में लगा था। उसका भविष्य समाया हुआ था माँ से छेड़े हुए मुकदमे में, जिसके अंतिम निर्णय की तिथि बहुत निकट आ रही थी। इसलिए शिवा और रंजन के रोमांस को मानो छिन्न-भिन्न करते हुए उसने मुकदमे को बातचीत में ला घुसेड़ा।

“अब मैं समझता हूँ, केस का फ़ैसला जल्दी ही हो जायगा।”

“हाँ।” रंजन ने अंतिम संक्षिप्त सा उत्तर दिया और चाहा कि वह बात-चीत आगे न चले, किन्तु विपिन को चैन कहाँ !

“कब तक निर्णय की आशा की जा सकती है ?” विपिन ने पूछा।

“एकाध सप्ताह के भीतर ही अब फ़ैसला हो जाना चाहिए।” रंजन ने जवाब दिया।

“फ़ैसला क्या होगा, यह बात मुझे दिन-रात चिंतित करती रहती हूँ।”

“फ़ैसला होगा हमारे हक़ में,” शिवा ने अभिमान से रंजन की ओर देखा, “इसलिए चिन्ता व्यर्थ है।”

“हमारे हक़ में ?” विपिन का स्वर संदिग्ध था।

“क्यों नहीं ?” शिवा ने फिर रंजन की ओर देखा, जिसका मतलब था। बोलो, चुप क्यों हो ?

रंजन को मानो स्फूर्ति मिली—“मेरी तो अब भी यही राय है और आरंभ में भी यही राय थी कि यह केस हमारा है। मैं यह माना हूँ कि सब-जज ने दो-चार बातें ऐसी की हैं, जिनसे संदेह हो सकता है; किन्तु मेरे निकट वे ही बातें प्रदर्शित करती हैं कि वह निर्णय हमारे पक्ष में देगा।”

“क्यों ?”

“मैं समझता हूँ, स्नेहलता के पक्ष में दो-चार बातें करके वह अपने मन के

भाव छिपा रहा है ।”

“बिलकुल ठीक,” शिवा ने रंजन की हाँ-में-हाँ मिलाई, “यह एक मनो-वैज्ञानिक सत्य है, जिसे हमें नहीं भूलना चाहिए ।”

“निःसंदेह,” रंजन के स्वर में और भी जोर आ गया, “इन छोटे जजों की मनोवृत्ति अद्भुत होती है ।”

“एक बात और,” शिवा को मानो सहसा कुछ सूझा हो, “कल मैंने माँ को देखा था ।”

“तब ?” विपिन ने पूछा ।

“उसका चेहरा मुरझाए पत्ते-सा पीला और कड़वा था ।”

“अच्छा !” रंजन ने शिवा को प्रोत्साहन दिया ।

“जिसका कारण, मैं समझती हूँ, उसके सिर पर मँडराती हुई पराजय है ।”

“पराजय ?” विपिन के मुख पर मानो सरस्वती आ बैठी हो, “अथवा विजय की असारता इसका कारण है, कौन कह सकता है ?”

“विजय की असारता !” रंजन व्यंग्य से मुस्कराया—“इसमें वेदांत न घुसेड़ो विपिन, और यह भी निश्चय रखो कि जीत हमारी होगी ।”

“बहुत अच्छा,” विपिन ने रंजन और शिवा के उत्साह से उत्साहित होने की कोशिश करते हुए कहा और चुप होकर एक दूसरी लहर में बह गया ।

कुछ देर तीनों चुप रहे, फिर शिवा बोली—“भैया, अब क्या सोच रहे हो ? सारा दिन केस की बात भली नहीं लगती ।”

“अब केस की ओर ध्यान नहीं ।”

“तब क्या सोच रहे हो ?”

विपिन ने शिवा के प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं दिया । पूछने लगा—“भला तुमने चित्रा को पिछला पत्र कब लिखा था ?”

शिवा मुस्कराई—“चार दिन हुए । अच्छा, अब समझी हूँ । भैया, तुम उसकी चिन्ता न करो । वह आपकी ही रहेगी ।”

“मेरी ?” विपिन के स्वर में कोई भी आशा न थी, “इसमें तो कपोत-नीति को छोड़ो ।”

“कपोत-नीति कैसे ?”

“तथ्य से मुख मोड़कर । क्योंकि तुम्हें पत्रों में मीठी-मीठी बातें लिख देती है, इसका यह तो अभिप्राय नहीं कि मेरे प्रति उसकी विमुखता मिट गई ।”

“विमुखता बनी हुई है, यह भी कहाँ से निष्कर्ष निकलता है ?”

“विमुखता ?” अब की बार रंजन बोला, “मैं समझता हूँ कि विमुखता न इधर है, न उधर । केवल भिन्न दोनों हृदयों पर आ बैठी है । उससे ऊपर उठने पर ही बिगड़ी बन सकती है ।”

“मैं तो तैयार हूँ, किन्तु उसका महान् आत्माभिमान कहीं मुझे चर-चर न कर दे, यही मुझे भय है ।”

“यह सब भूल है, राह रोके खड़ा मनोमालिन्य द्वारा निर्मित काल्पनिक स्तम्भ है । मन में निर्मलता आते ही वह स्वयमेव छू-मंतर हो जायगा ।”

“किसके मन में ?” विपिन ने प्रभावित स्वर में पूछा ।

“दोनों के मन में ।” रंजन कहता चला गया, “किन्तु तुम उसके मन को छोड़ो । तुम अपने मन को निर्मल करो, उसका मन स्वयमेव निर्मल हो जायगा । तुम अपने अभिमान को भूलो, अपने अहम् पर विजय प्राप्त करो, तो वह अपने-आप तुम्हारी ओर खिंच आयगी ।”

“अब तो तुमने वेदांत के पृष्ठ उलटने शुरू कर दिए,” सिखा का स्वर किंचित् शरारत-भरा था—“तुम जिस क्षेत्र के योद्धा हो, उसी के अन्तर्गत रहो, तो ठीक है । चित्रा भैया की है और भैया चित्रा के है, यह अमर सत्य है । ज्यों ही भैया दिल्ली उसके पास पहुँचेंगे, वह प्रेमाश्रुओं से इनके चरण पखारेगी, यह निश्चित है । भैया, क्या जाओगे नहीं उसके पास ?”

“जाऊँगा क्यों नहीं ? उसके सिखा मेरा ठिकाना ही कहाँ है ?” विपिन ने गद्गद् स्वर में कहा, “किन्तु अभी वहाँ जाने में देर है ।”

“देर है ?”

“हाँ, जब तक केस का फँसला नहीं होता, तब तक न जा सकूँगा । उसके अनन्तर सीधा उसी के पास जाऊँगा ।”

“फँसला चाहे कुछ भी हो ?” अब के प्रश्न रंजन की ओर से हुआ ।

“हां।” विपिन के स्वर में किंचित् भी हिचकिचाहट न थी, “जीत होने पर उसे अपने उत्साह द्वारा मना लूंगा और हारने पर मेरी करुणा उसे द्रवित कर देगी।”

“यदि ...” रंजन कहता-कहता रुक गया।

“यदि क्या?” विपिन ने आग्रह से पूछा।

“यही कि यदि हार की तुम्हें आशा है, तो अभी जाओ, नहीं तो ...” रंजन फिर रुका।

“नहीं तो क्या?”

“नहीं तो शायद अवसर ही बीत जाय।”

“कैसे?” शिवा ने पूछा। उसका स्वर चिंतित था।

रंजन ने सहसा कुछ जवाब न दिया, उठकर कमरे में टहलने लगा। फिर धीरे-धीरे बोला—“अभी यदि तुम चले जाओ और अपना केस वापस लेने का वादा चित्रा से करो, तो निराश न होगे, यह निश्चित है।”

“और यदि मुकदमे के निर्णय के बाद जाऊँ, तब?”

“तब की कौन जाने! किसी का आत्माभिमान तब तक शायद इतना घायल हो चुका हो कि समस्त औषधियाँ धूल के समान हो जायँ।”

“अभी थोड़ी देर पहले तो तुम कुछ और कह रहे थे, मन की निर्मलता का पाठ पढ़ा रहे थे।”

“वह मेरा दूसरा रूप था।”

“सच्चा रूप कौन सा है?” शिवा ने प्रश्न किया।

“जो अब तुम लोगों के सामने है।”

“यदि तुम मेरी जगह होते, तो क्या करते?” विपिन ने पूछा।

“मुकदमे के निर्णय तक रुकता।”

“क्यों?”

“इसलिए कि मैं भय और जोखिम से खेलने वाला बंदा हूँ। अभी कार्य करने से निश्चितरूपेण केवल एक पारितोषिक चित्रा मिल सकती है; किन्तु रुकने से या तो सर्वस्व पाने की संभावना है या सर्वस्व खोने की।”

“मुकदमा जीतने पर चित्रा नहीं मिलेगी ?”

“नहीं ।”

“हारने पर ?”

“नहीं ।”

शिवा और विपिन अवाक् रह गए । विपिन ने ज़रा चकित स्वर में पूछा—
“बात ठीक तरह से समझ में नहीं आई । क्या स्पष्ट कर सकोगे ?”

“क्यों नहीं ?” रंजन सुस्कराया—“तुम्हारी हार और जीत दोनों में चित्रा की हार है; क्योंकि उसके कथन के विपरीत भी तुम केस लड़ते रहे, मानते हो ?”

“हां ।”

“अब भी तुम मुकदमा छोड़ दो, तो चित्रा की जीत है, इससे इन्कार करोगे ?”

“नहीं ।”

“इसलिए अभी तुम चले जाओ, तो चित्रा के आत्माभिमान की रक्षा होती है, अन्यथा नहीं,” कहते-कहते रंजन ने कलाई पर बंधी हुई घड़ी की ओर देखा और बोला, “मुझे अभी एक जगह ज़रूरी काम से जाना है, चाय के लिए मेरी प्रतीक्षा न करना ।”

रंजन तेजी से कमरे से बाहर चला गया । दोनों भाई-बहन एक दूसरे की ओर देखते रहे । फिर शिवा ने पूछा—“भैया, अब क्या करोगे ?”

“मैं तो रामभत्ता हूँ, केस के निर्णय तक रुकना होगा । तुम क्या कहती हो ?”

“मैं आपसे सहमत हूँ । अब मुकदमे से हाथ खींचना ठीक न होगा । अब मुकदमा वापस लेने से किसी के आत्माभिमान की रक्षा भले ही हो जाय, किन्तु और तो कोई भी लोभ न होगा शायद ।”

“यही मैं भी सोच रहा हूँ । माँ तो अब मानने से रही । हमने उसको दुःख भी तो कम नहीं दिया । पराजय को छिपाने के लिए केस वापस लिया जा रहा है, यही वह समझेगी । वह क्या सारा संसार यही कहेगा । नहीं,

मुकदमे को अब किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ा जा सकता। यदि छोड़ना ही था, तो पहले छोड़ दिया होता। इतना रुपया तो न बर्बाद होता।”

“भैया, क्या सब रुपया समाप्त हो गया ?” शिवा ने पूछा।

“यही दो-चार सौ बचा होगा।”

“दो-चार सौ बचा होगा।”

“दो-चार सौ ! यदि हार गए तो क्या होगा ?” शिवा का स्वर फिर चिंतित हो उठा।

“फिर जो होगा, देखा जायगा। मेरा तो सिर चकराने लगा है। कौन क्या है, यह समझ नहीं पाया हूँ। रंजन का कौन सा रूप सत्य है, यह एक नई पहेली उठ खड़ी हुई है। मेरा कर्तव्य क्या है, यह भूल रहा हूँ। चलो, हम भी घूमने चले !”

“चलो !” शिवा ने भाई के साथ सहमति प्रकट की।

दोनों उठकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर चले गए।

उस दिन शिवा और विपिन ने भी चाय होटल से बाहर ही पी। जब घूमकर दोनों लौटने लगे, तो घना अंधकार हो चला था। कुछ ही दूरी पर उन्हें होटल की ओर लौटता हुआ रंजन भी मिल गया। उसके साथ विपिन का एक बहुत पुराना मित्र था। वे दोनों बड़े प्रेम से मिले और कंधे-से-कंधा मिलते हुए पुराने युग की बातों में निमग्न और रंजन तथा शिवा को लगभग भूले हुए से चलने लगे। इससे रंजन और शिवा भी उनसे कुछ दूर हटकर हाथ में हाथ डाले उनके पीछे-पीछे हो लिए।

३३

शिवा ने स्नेहलता का जो रुग्ण रूप देखा था, उसमें तथ्य था। पिछले कुछ दिनों से निःसंदेह उसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा था। डॉक्टर से परामर्श करने पर भी किसी विशेष रोग का पता नहीं चला। इसलिए रोग शारीरिक से मानसिक अधिक था। ज्यों-ज्यों केस समाप्ति पर आ रहा था और स्नेहलता को विश्वास होता जा रहा था कि उसकी विजय निश्चित है, त्यों-त्यों उसकी तबी-

यत अधिक बिगड़ती जा रही थी। जब औषधियाँ विफल गई, तो डॉक्टर की चिंता बढ़ चली।

“आप कुछ दिन कहीं घूम आयें अथवा किसी आत्मीय को यहाँ बुला लें, तो आपका स्वास्थ्य सुधर सकता है। क्या यह संभव नहीं?” डॉक्टर ने एक दिन स्नेहलता से पूछा।

“यहाँ से जाना तो संभव नहीं। हाँ, किसी आत्मीय को बुलाने का प्रयत्न अवश्य करेंगी।”

उसी दिन उसने चित्रा को पत्र लिखा। सम्बन्धी तो उसके कई थे, पर यथार्थ में वे उसके आत्मीय न बन सके थे। जब वह पत्र लिख रही थी, तो रोहित वहाँ आ पहुँचा।

“किसको पत्र लिख रही हो, ममी?” उसने पूछा।

“तुम्हारी चित्रा जीजी को। उसे यहाँ बुला रही हूँ। बुला लूँ?”

“अवश्य। वे यहाँ कब आयेंगी?” रोहित गद्गद् हो गया।

“यह तो उसकी इच्छा पर निर्भर है। मैंने तो लिखा है, तुरन्त आ जाओ।”

“यह पत्र मुझे ही दीजिएगा। मैं इसे स्वयं डाक में डाल आऊँगा।”

“बहुत अच्छा,” स्नेहलता ने कहा, “नौकर को साथ ले जाना।”

“ले जाऊँगा।” रोहित का उत्साह सँभाले न सँभलता था।

दो ही मिनट के अनन्तर स्नेहलता ने पत्र रोहित को दे दिया। वह उसे लेकर भागता हुआ नौकर को ढूँढ़ने के लिए चल दिया। स्नेहलता सोच में डूबी हुई वहाँ-की-वहाँ बैठी रही। क्या चित्रा उसके बुलावे का मान रखेगी, उसके पास आ जायगी? आशा तो यही है। केवल एक ही बाधा उसकी राह रोकेगी, वह है विपिन तथा उसके साथ हो रहा केस। केस अब समाप्त होने वाला है और इसमें अब किंचित् भी सन्देह नहीं कि विजय उसकी होगी। फिर क्या होगा? पति द्वारा छोड़ी हुई समस्त सम्पत्ति की वह एक-मात्र अधीश्वरी हो जायगी? पर क्या इससे उसे संतोष होगा? जीवन का ध्येय तो यह नहीं। उसकी विजय में जो उत्साह दीखता था, विजय के निकट आने पर वह उसके हाथों से

क्यों निकलता जा रहा है ? उसका स्थान उदासी तथा निराशा क्यों लेती जा रही है ? क्या प्रत्येक विजय में ऐसा ही होता है ? तब मनुष्य लड़ता-भगड़ता क्यों है ? स्वत्वों की रक्षा और आत्माभिमान से मनुष्य को इतना मोह क्यों है ? क्या इससे ऊपर उठकर ही मनुष्य वास्तव में मनुष्य नहीं बनता ? अवश्य बनता होगा । तब उसने यह सब क्यों किया ? क्या माया के आकर्षक जाल में ही वह नहीं फँस गई थी ? तब उस जाल को ही उसे छिन्न-भिन्न करना होगा । तभी वह स्वतंत्र हो सकती है । पर यह कैसे संभव होगा ? उसे क्या करना होगा ? यहाँ पर पहुँचो-पहुँचते उसका मस्तिष्क विचारों की आँधी से डावाँडोल होने लगा । उसने सोचना छोड़ दिया और उदासी की चादर ने पुनः उसको ढाँप लिया ।

दूसरे दिन चित्रा ने किंचित् धड़कते दिल से स्नेहलता का पत्र खोला और उत्सुकता से पढ़ने लगी । स्नेहलता ने लिखा था —“बेटी, मेरा स्वास्थ्य आजकल ठीक नहीं रहता और तुमसे मिलने के लिए मन मचलता है । यदि कहीं मैं यहाँ से कुछ दिनों के लिए भी निरुल सकती, तो भागकर तुम्हारे पास पहुँच जाती; किंतु अभी यह संभव नहीं । इसलिए तुम कुछ दिनों के लिए मेरे पास आकर रहो, यही अनुरोध है । मैंने तुम्हारे लिए कोठी में एक सेट ठीक-ठाक करवा दिया है । आने की सूचना लौटती डाक से देना । बहनजी और डॉक्टर साहब को नमस्कार ।”

पत्र लेकर चित्रा भागी हुई माँ के पास पहुँची । माँ ने उत्सुकता से चित्रा की ओर देखा और किंचित् चिंता-भरे स्वर में पूछा—“क्या बात है बेटी ?”

“शिमला से पत्र आया है ।”

“किसका ? विपिन का ?” माँ ने पूछा ।

“नहीं, उसके पत्र लिखने का समय अभी दूर है, चित्रा बेगरवाही से कहने लगी, “यह पत्र आंटी स्नेहलता ने भेजा है ।”

“क्या लिखा है उन्होंने ?”

“शिमला बुलाया है । यह देखिए उनका पत्र ।” चित्रा ने पत्र माँ के हाथ में पकड़ा दिया ।

माँ उतावली से पत्र पढ़ने लगी । चित्रा ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगी । जब माँ ने पत्र समाप्त कर लिया, तो चित्रा ने पूछा—“अब कहिए ?”

“हो आओ, उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है ।”

“अच्छा ! आज रात की गाड़ी से ही जाऊँगी ।”

“बहुत अच्छा ।” माँ ने अनुमति दी । चित्रा तेजी से अपने कमरे की ओर तैयारी करने के लिए चली गई ।

अगले दिन जब चित्रा शिमला पहुँची, तो स्नेहलता की सूरत देखकर चकित रह गई—“आपको यह क्या हो गया माँ जी ?”

“मुझे ?” स्नेहलता हँसने लगी, ताकि चित्रा चिन्ता-मुक्त हो सके, मैं बिलकुल ठीक हूँ । थोड़ी-बहुत जो उदासी है, वह तुम्हारे निकट होने से दूर हो जायगी ।”

इतने में रोहित भी जीजी की आवाज सुनकर आनन्द-विभोर हो उछलता-कूदता वहाँ पहुँच गया । उच्चकर चित्रा की गोदी में बैठता हुआ वह बोला,—“जीजी, आप आ गई । अब यहीं रहेंगी न ?”

उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए चित्रा ने जबाब दिया—“हाँ कुछ दिन तो रहूँगी ही ।”

“देखो रोहित,” स्नेहलता कहने लगी, “जीजी के नहाने-धोने, खाने-पीने का भी प्रबन्ध करो । जरा नौकर को बुलाओ !”

रोहित भागा गया और दो ही मिनट में नौकर को बुला लाया । नहाने-धोने आदि का सब प्रबन्ध हो चुका था । इसलिए स्नेहलता ने अनुरोध किया कि और कुछ करने से पहले वह नहाने से निपट ले ।

एक घंटे के अनन्तर उन्होंने खाने से भी छुट्टी पा ली, तो चित्रा ने पुनः स्नेहलता के स्वास्थ्य की बात उठाई—“डॉक्टर क्या कहते हैं माँ जी ?”

“वे कहते हैं कि मेरा रोग शारीरिक कम, पर मानसिक अधिक है ।”

“मानसिक ! क्या केस की चिन्ता ने ही तो गड़बड़ नहीं की ? केस ठीक नहीं चल रहा क्या ?”

“केस तो अब समाप्त होने वाला है और उसमें मेरी ही विजय निश्चित है,

किंतु..." स्नेहलता रुकी ।

"किंतु क्या ?" चित्रा ने आग्रह किया ।

"किंतु यही कि विजय के अनन्तर क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर सन्तोष-जनक नहीं मिल रहा ।"

"होगा क्या ?" चित्रा मुस्कराई, "आपके मन में जो निरन्तर चिंता छाई रहती है, वह दूर हो जायगी और आप पूर्णरूपेण स्वस्थ हो जायेंगी ।"

"होना तो यही चाहिए, पर ऐसा होगा, इसमें मुझे सन्देह है । इस केस ने मेरे मन में धन, संसार और अपने जीवन के प्रति वह विरक्ति उत्पन्न कर दी है, जिस पर शायद अब मैं पार न पा सकूंगी । सांसारिक दृष्टि में जो विजय के नाम से घोषित होगी, वही मेरी कटु पराजय होगी, मुझे ऐसे लगता है ।"

"कटु पराजय ?" चित्रा ने आश्चर्य से स्नेहलता की ओर देखा ।

"नहीं समझीं ? जिसे मैं स्वयं ही ठीक तरह से समझ नहीं पा रही हूँ, उसे मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? खैर, छोड़ो इस बात को । मुझे एक बात बताओ !"

"क्या ?"

"यदि मैं विपिन को केस जीतने के अनन्तर भी पुनः वही स्थान दे दूँ, जो केस से पहले मैंने दे रख था, तब ?"

"तब मुझे किंचित् भी आश्चर्य न होगा," चित्रा ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा, "आप-जैसे महान् व्यक्तित्व की स्वामिनी से आशा भी यही की जा सकती है ।"

स्नेहलता के मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गई—"तुम्हें मेरे ऐसा करने पर कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?"

"बिल्कुल नहीं, बल्कि खुशी होगी ।"

स्नेहलता ने संतोष की एक साँस ली—"तो क्या मैं यह आशा करूँ कि तुम भी विपिन को अपने हृदय में वही स्थान दे दोगी, जो भगड़ा छिड़ने से पहले दे रखा था ?"

"मैं ?" चित्रा सोच में डूब गई और कुछ देर कुछ न बोली ।

"हाँ, कहो !" स्नेहलता ने उसे प्रोत्साहित किया ।

“नहीं।” चित्रा ने गंभीरता से सिर हिला दिया।

“यदि वह क्षमा माँग ले तो?”

“वह क्षमा माँगेगा क्या?”

“शायद।”

“तब सोचूंगी, किन्तु ...”

स्नेहलता को थोड़ा ढाढ़स बँधा। वह एक-एक शब्द पर जोर देती हुई बोली—“यदि तुम दोनों का कहीं पुनर्मिलन हो जाय, तो मुझे एक खोया हुआ स्वर्ण-संसार प्राप्त हो सकता है। विपिन के प्रति अपना निश्चय बनाते हुए इस बात को कभी न भूलना।”

“नहीं भूलूंगी,” चित्रा का स्वर और भी गंभीर हो उठा, “विपिन ने जो-कुछ किया है, उसके अनन्तर वह मेरे हृदय के निकट स्थान पा सके इसमें सन्देह है; किन्तु आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। समय आने पर मैं आपके दृष्टिकोण को पूरा महत्त्व दूँगी।”

“धन्यवाद! तब तुम जो भी निश्चय करोगी, मुझे संतोष होगा।”

चित्रा उठ खड़ी हुई।

“कहाँ चलीं?” स्नेहलता ने पूछा।

“जरा बाहर जाऊँगी रोहित के पास। वह शायद लॉन में खेल रहा है।”

चित्रा बाहर चली गई। रोहित लॉन में नहीं था। वह साथ वाली कोठी में कुछ बच्चों के साथ खेल रहा था। किन्तु चित्रा लौटकर कोठी में नहीं गई। वहाँ लॉन में टहलने और सोचने लगी। कहाँ स्नेहलता, कहाँ विपिन और कहाँ वह! मानव-प्रकृति में इतना भेद क्यों? इतना दुःख सहने पर भी, स्नेहलता विमाता होने पर भी, विपिन को क्षमा करने जा रही है! यही नहीं बल्कि उसकी हार्दिक इच्छा है कि चित्रा भी उसे क्षमा कर दे। और विपिन शायद यह केस समाप्त होने पर कोई नया भगड़ा शुरू कर दे। स्नेहलता का पथ तो निश्चित है, उसके मन के भाव व्यक्त होने पर विपिन का पथ भी निश्चित हो जायगा। धन का लालच उसे पुनः स्नेहलता के निकट ले जायगा। वह गड़गड़ाता हुआ उसके पाँव में जा गिरेगा और भी अपने महान

आदर्शों से प्रेरित उसे हृदय से लगा लेगी। परन्तु उसे, चित्रा को क्या करना होगा ? क्या वह विपिन को क्षमा कर सकेगी, उसके द्वारा पूर्णतया उपेक्षित अपने आत्माभिमान को भुला सकेगी ? नहीं। उसके एक-एक रोम ने जवाब दिया। विपिन ने जो-कुछ किया है, क्या उसके कारण चित्रा के हृदय में बसी हुई मूर्ति विकृत होकर आकर्षण-रहित नहीं हो चुकी है ? क्या उस मूर्ति में फिर वही आकर्षण आ सकता है ? कदापि नहीं। तब स्नेहलता द्वारा दी गई शिक्षा की उसे अवहेलना ही करनी होगी। पर अभी से वह कोई निश्चय क्यों कर ले ? अभी बहुत समय है। हो सकता है, विपिन ही अब उसके निकट न न आय। यदि वह नहीं आया, तो समस्या स्वयमेव हल हो जायगी। पर क्या वह चाहेगी कि वह न आय ? इस प्रश्न का उत्तर जान-बूझकर उसने न सोचा और अपने मस्तिष्क को वहीं विश्राम देकर फिर कोटी की ओर चलपड़ी।

३४

अभी एक सप्ताह नहीं हुआ था कि रंजन ने एक दिन दोपहर को कोई बारह बजे के लगभग तेजी से होटल के कमरे में प्रवेश किया। शिवा और विपिन ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा।

“मुझे अभी जाना है !”

“अभी ? कहाँ ?” विपिन ने पूछा।

“दिल्ली। एक बहुत बड़ा केस मिल गया है। कल उसकी पेशी है,” कहते-कहते रंजन ने नौकर को आवाज दी और बोला, “मेरा बिस्तर बाँध दो।”

नौकर बिस्तर बाँधने लगा और वह अपना सूटकेस ठीक करने में व्यस्त हो गया। वह इसी में उलझा हुआ था कि शिवा ने पूछा—“गाड़ी तो कालका से रात को ही मिलेगी, फिर इतनी जल्दी क्यों ?”

“मुझे रास्ते में कुछ काम है।” उसने बिना तिर उठाए ही जवाब दिया।

पाँच-छः मिनट में ही नौकर ने बिस्तर बाँध दिया और पूछा—“कुली लाऊँ ?”

“ले आओ।” रंजन ने सूटकेस का ढकना बन्द करते हुए कहा।

दो ही मिनट में जुली आ गया। सामान उसके हवाले करके उसे मोटर-स्टैंड तक ले जाने का आदेश देकर रंजन ने शिवा और विपिन से अनुमति माँगी। उन्हें नभस्कार करके वह उनको भौंचक्का-सा छोड़कर खटखट करता हुआ कमरे से बाहर चला गया। कुछ देर दोनों भाई-बहन अवाक् रहे, फिर शिवा बोली—“यह रहस्य क्या है, कुछ समझे हो?”

“रहस्य!” विपिन आधा क्षण सोच में डूबा रहा, “हाँ, कुछ रहस्य अवश्य है, किन्तु क्या?”

“यही तो समझ में नहीं आ रहा!”

कुछ देर दोनों चुप रहे, फिर विपिन बोला—“शायद वह सच ही बोल रहा हो।”

“हाँ, हो सकता है।” शिवा का स्वर संदिग्ध था।

ठीक उसी समय होटल के चपरासी ने कमरे में प्रवेश किया।

“क्या बात है?” विपिन ने पूछा।

“आपके लिए टेलीफोन है।” उसने शिवा को संबोधित किया।

शिवा उसके पीछे-पीछे हो ली और टेलीफोन वाले कमरे की ओर भागी। रिसीवर अभी तक नीचे रखा हुआ था। उसने उठाकर उसे कान से लगाते हुए अपना परिचय दिया। दूसरी ओर की आवाज सुनकर वह चकित हुई और बोली—“तुम ? तुम ? तुम कब आई ?”

“आए तो तीन-चार दिन हो गए।” चित्रा ने सूचित किया।

“कहीं झेली नहीं। कहाँ से बोल रही हो?”

“घर से बाहर ही नहीं निकली। तुम्हारे घर से बोल रही हूँ।”

“हमारे घर से !”

चित्रा को ऐसा लगा, मानो शिवा सहसा कुछ समझी न हो। बोली—“हाँ, जो कभी तुम्हारा घर था। कभी मिलो तो?” चित्रा नुस्कराई।

“जब कहो। कहाँ?”

“इधर ही आ जाओ। पर शायद आ न सकोगी। किन्तु अब शायद

भिन्नक जाती रहे ।”

“क्या मतलब ?” शिवा के स्वर में आश्चर्य था ।

“मिलकर बताऊँगी । आज ‘डेविको’ में मेरे साथ चाय पियो । पाँच बजे पहुँच जाना वहाँ ।”

“बहुत अच्छा,” शिवा ने अनुमति दी, “किन्तु . . .” शिवा थोड़ा रुकी । फिर उससे पूछा—“अकेली ?”

“हाँ ।” चित्रा ने निश्चयात्मक स्वर में कहा और रिसीवर रख दिया ।

“किसका फोन था ?” जब शिवा लौटकर आई, तो विपिन ने पूछा ।

“चित्रा का ।”

“चित्रा का ! वह यहीं है ? क्या कहती थी ?”

“हाँ, तीन-चार दिन से इधर है । माँ के यहाँ ठहरी है । आज चाय के लिए ‘डेविको’ में बुलाया है ।”

“माँ के यहाँ ठहरी है !” विपिन के मस्तक पर चिन्ता के बल पड़ गए, “क्यों ?”

शिवा मुस्कराई—“इसलिए कि वे एक-दूसरे को चाहती हैं ।”

“मेरा अभिप्राय यह न था । मैं सोच रहा था कि इन्हीं दिनों उसका आना क्या अर्थहीन है ?”

“इन्हीं दिनों !” शिवा के मुख पर आश्चर्य था ।

“हाँ, जब कि केस का निर्णय होने वाला है ।”

“केस का निर्णय ! भैया, वह यह भी कह रही थी कि मुझे अपने घर जाने में भिन्नक शायद अब न रहे ।”

“भिन्नक न रहे ! केस का निर्णय तो कहीं नहीं हो गया !” विपिन का माथा ठनका—“तभी तो रंजन यहाँ से नहीं भागा !”

“केस के निर्णय का उसको पता लग चुका था, आपका यह विचार है ?”

“हो सकता है ।” विपिन ने कहा ।

“यदि उसके भागने से अंदाज़ा लगाया जाय, तो . . .” शिवा आगे कुछ न कह सकी ।

“तो हम हार गए हैं।” विपिन ने बहन का वाक्य समाप्त किया। उसकी ज़बान किंचित् लड़खड़ा गई और उसके मस्तक पर पसीने की एक-दो बूँदें चमक उठीं।

“यों ही निश्चय पर न उछलो। कहीं से पूरा पता कर लो।”

“कचहरी जाऊँ?”

“हर्ज ही क्या है?”

“यदि हमारी आशंका ठीक निकली, तब वहाँ से लौटना दूभर हो जायगा।” विपिन का स्वर त्रस्त था।

“तब?”

विपिन ने कुछ जवाब न दिया। उठकर चिन्ता-मग्न कमरे में टहलने लगा, फिर सहसा बोला—“तुम चित्रा से पूछ देखो, शायद उसे पता हो।”

“चित्रा से?” शिवा असमंजस में पड़ गई।

बहन का असमंजस देखकर विपिन पुनः बोला—“मैं ही चँवर से फोन द्वारा पूछूँ?”

“चँवर से? वह तो अदालत में होगा।”

“शायद बार-रूम में मिल जाय। पर यदि वे जीते हैं, तो उसके स्वर का तीखा व्यंग्य मैं शायद सुन न सकूँ,” कहता-कहता विपिन फिर कुर्सी पर बैठ गया और अपने मुख को दोनों हाथों से ढाँप लिया। कुछ क्षण वह ज्यों-का-त्यों बैठा रहा, फिर उठ खड़ा हुआ और बोला—“मैं चँवर से पूछता हूँ।”

वह कमरे से बाहर भाग गया, पर दो ही मिनट के अनंतर लौट आया और बोला—“बार-रूम में नहीं हैं। डेढ़ बजे के करीब मिल सकता है।”

“तभी सही।” बहन ने अपने स्वर में सारा साहस समेटकर कहा।

“और चारा ही क्या है?” विपिन ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा। अभी एक भी नहीं बजा था।

थोड़ी देर वे दोनों चुपचाप बैठे रहे, फिर खाने के लिए चले गए। उस दिन दोनों से खाना भी पेट भरकर न खाया गया। दो-दो चार-चार कौर खाकर उठ आए। तब भी डेढ़ बजने में कुछ मिनट बाकी थे। उन मिनटों ने

उन दोनों के लिए घंटों का रूप धारण कर लिया। दोनों बार-बार अपनी-अपनी घड़ी देखने लगे, किन्तु गुड़ियाँ मानो ध्रुव की भाँति अचल हो गई थीं। आखिर जब प्रतीक्षा करते-करते उनके सिर चकरा गए, तो समय हुआ। विपिन और शिवा दोनों टेलीफोन वाले कमरे की ओर भागे। विपिन ने उतावली से बार-रूम का नम्बर डापल किया और नम्बर मिलते ही चँवर के लिए पुकार की। चँवर वहीं था। अपना परिचय देकर उसने विपिन का परिचय पूछा।

“मे विपिन हूँ !”

“आज्ञा कीजिए ?” चँवर ने पूछा।

“हमारे केस का निर्णय क्या हो गया है ?”

“आपको नहीं पता लगा क्या ?” चँवर के स्वर में आश्चर्य था, “श्री रंजन कोई लगभग दो घंटे पहले फैसला सुन गए हैं। मुझे खेद है।”

विपिन का हाथ काँपने लगा और स्वर भी, “तो फैसला हमारे विरुद्ध हुआ है ?”

“हाँ !”

विपिन के पाँव के नीचे से जमीन खिसक गई। रिसीवर को उल्टा-सीधा फेंककर वह कमरे से बाहर की ओर भागा। अपनी गहन के मुँह पर उड़ती हुई हवाइयाँ भी उसे न दीखीं। लगभग भागता हुआ वह अपने कमरे में पहुँचा। शिवा, जो सब-कुछ समझ गई, उसके ठीक पीछे थी। दोनों धम् से कुर्सियों पर बैठ गए।

बहुत देर दोनों चुप रहे। फिर विपिन ने उसे सन्नाटे से तोड़ा—“आज शाम को चाय पर जाओगी अब (”

“जाना तो होगा ही, कह जो चुकी हूँ।”

“यदि चित्रा ने मुकदमे की बात छोड़ी, तब ?”

“वह उसे छोड़ेगी ही।” शिवा ने एक दीर्घ निश्वास लिया—“क्या ही अच्छा होता, यदि वह आज मुझे न्योता न देती !”

“और यदि दिया ही था, तो विजय हमारी हुई होती !” विपिन सूखी हँसी हँसा—“क्या होता, इसको छोड़ो; क्या होगा, इसकी चिन्ता करो।”

“वही चिन्ता तो खाये जा रही है।”

“अब क्या होगा भला ?” विपिन ने मानो अपनी बहन से ही नहीं, अपने इर्द-गिर्द छाए हुए वातावरण से भी प्रश्न किया।

“तुम्हीं बताओ !”

“मुझे कहीं पचास रुपये की नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिरना पड़ेगा,” विपिन ने निराशा-भरे स्वर में कहा। फिर ज़रा जोश से बोला—“मैं इसके लिए तैयार हूँ। मुझे अपने लिए पड़तावा नहीं, किन्तु...”

“किन्तु क्या ?”

विपिन ने वात्सल्य से अपनी बहन की ओर देखा, “रंजन को यों भागना नहीं चाहिए था।”

शिवा चौंकी—“क्या सचमुच भाग गया है ?”

“तुम्हें संदेह है ?”

“संदेह ! शायद नहीं। पर उसका यही रूप क्या यथार्थ है, यह भी कौन कह सकता है ?”

विपिन को ऐसा लगा कि शिवा के हृदय में रंजन के प्रति स्नेह की एक रेखा जैसे अभी है। उसी से प्रेरित आशा की एक किरण शायद उसे दिख रही थी। उस रेखा के सिटने उस किरण के ध्वंस होने में ही अब शिवा की भलाई है, उसने सोचा। बोला—“उमका कोई भी रूप यथार्थ नहीं। अतः उसके लिए आसू बहाना उचित नहीं।”

“किन्तु आपको उसमें कई गुण दिखे थे,” शिवा ने अपनी टेक न छोड़ी, “हालाँकि कई लोगों ने आपको चेतावनी दी थी।”

“मुझसे भूल हुई, मैंने धोखा खाया, मैं मानता हूँ।”

“मुकदमा लड़ने में ?”

“नहीं।”

“और किस बात में ?” शिवा का स्वर निराश था।

“रंजन-जैसा वकील चुनने में, उसे अपने इतना निकट स्थान देने में, उसके व्यक्तित्व के झूठे नैतिक स्तर को सत्य समझने में।”

“भैया, आप तो जैसे पलक मारते ही बदल गए !” शिवा ने किंचित् उपहास-भरे स्वर में कहा ।

“पलक मारते ही क्या कभी-कभी पहाड़ नहीं टूट पड़ते ? मनुष्य के हृदय का उलट-फेर समय की परिधि से नहीं, बल्कि घटना के महत्त्व से आँका जाता है । इसलिए तुमसे एक वादा चाहता हूँ ।” विपिन का स्वर गंभीर था ।

“क्या ?”

विपिन का स्वर और भी गंभीर हो उठा, “यह कि तुम्हारे हृदय में रंजन के प्रति जो कोमल भावना है, उसे ध्वस्त कर दो । यदि फिर भी वह तुम्हारी राह में आये, तो उसे पाँव से ठुकरा दो ।”

“अब उसे क्या पड़ी है हमारे निकट आने की ?”

“नक्षत्रों के खेल को कौन जान सकता है ? तुम वादा करो कि तुम वैसा ही करोगी, जैसा मैं चाहता हूँ ।”

शिवा ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया । एकटक अपने भाई की ओर देखती रही । उसके हृदय का उतार-चढ़ाव उसकी साड़ी में से भी साफ दिख रहा था । अपने होठों की फड़कन पर लाख यत्न करने पर भी वह प्रभुत्व न पा रही थी । हाथों की मुठ्ठियाँ पल-पल पर खुल-खुलकर बंद हो रही थीं । विपिन सब-कुछ देख रहा था, किन्तु चुप था, और जब तक शिवा कुछ न बोले, उसने चुप ही रहने का निश्चय किया । काफी देर शिवा अपने अंतस्तल के भावों से लड़ती-झगड़ती रही । आखिर रूँधे हुए गले से बोली—“भैया, वादा न लो, आपके आदेशानुसार चलने का प्रयत्न मैं अवश्य करूँगी । किंतु मानव परिस्थितियों का दास है यह हमें न भूलना चाहिए ।” कहते-कहते शिवा के नेत्र भर आए ।

“धन्यवाद !” विपिन ने कहा, “मे थोड़ा घूम आऊँ ।”

शिवा को ज्यों-का-त्यों छोड़कर विपिन कमरे से बाहर चला गया । भाई के बाहर निकलते ही शिवा के नेत्रों से बड़े-बड़े मोतियों-सदृश्य आँसू ढुलकने लगे । उसने उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया, उन्हें पोंछा भी नहीं । वह बहुत देर वहीं-की-वहीं बैठी रही । अभी शिवा के आँसू सूख भी नहीं पाए थे कि

किसी ने उसका द्वार खटखटाया। उसने अपने आंचल से आंसू पोंछे और उठकर द्वार खोला। सामने रेखा खड़ी थी।

“आओ बहन !” शिवा ने उसका स्वागत किया। उसे अपने साथ कमरे में ले आई। जब दोनों ने कुर्तियाँ सँभाल ली, तो शिवा ने पूछा, “कैसे भूल पड़ीं ?”

“एक संदेश लेकर आई हूँ।”

“किससे ?”

“रंजन से।”

“रंजन से !” शिवा का हृदय धड़कने लगा।

“हाँ ! वह मुझे मोटर-स्टेड पर मिला था। कहता था, आपको शायद पता न हो, अतः मैं खेद के साथ सूचित कर दूँ कि आप कैसे नहीं जीत सके।”

“हमें पता लग गया है।”

“अच्छा ! और कहता था, उसे खेद है कि वह रुक न सका। पर यदि विपिन जी चाहें, तो वह सुप्रीम कोर्ट तक कैसे लड़ने को तैयार है।”

शिवा की आशा बँधी। क्या रंजन को समझने में उन्हें फिर भूल दो नहीं हुई। किन्तु रेखा के अगले वाक्य ने उसे पुनः निराश कर दिया—“पर यह काम तभी हो सकता है, यदि विपिन जी कम-से-कम दस हजार रुपये का प्रबन्ध कर सकें।”

“बीस के बाद दस की ही आशा की जा सकती है।” शिवा ने व्यंग्य से कहा और पूछा—“कुछ और भी कहता था ?”

“स्वयंमेव तो कुछ न कहता था, पर अपनी उत्सुकता शांत करने के लिए मैंने उससे कुछ पूछा था।”

“क्या ?” शिवा की उत्सुकता भी जागृत हो गई।

“सुनना चाहोगी ?” रेखा ने ध्यान से शिवा की ओर देखा।

“अवश्य। साफ-साफ कहो !”

“तो सुन लो। मैंने उससे कहा कि विपिन के हाथ का धन और भविष्य में धनाढ्य होने की आशा के अतिरिक्त भी तुम्हें कोई उधर खींच रहा था। क्या

वह आकर्षण भी जाता रहा ?”

शिवा के गालों पर लज्जा की लाली दौड़ गई। उसे छिपाने के प्रयत्न में वह चुप रही। रेखा कहती चली गई—“कहने लगा, वह आकर्षण भी मुख्यतया स्वर्ण की चमक-दमक द्वारा ही लुभावना था। जब स्वर्ण की आशा ही नहीं रही, तो वह कैसे मनोरंजक रह सकता है ?”

शिवा के हृदय में अभी कुछ क्षण पहले उठने वाला द्वन्द्व छिन्न-भिन्न हो गया। रंजन की स्मृति-रेखाएँ, जो उसके हृदय में थीं, वे मानो किसी वैज्ञानिक पदार्थ द्वारा सदा के लिए मिट गई और अभी जिन आँखों पर प्रभुत्व पाना उसके लिए कठिन हो रहा था, वे स्वयमेव सुख गए। शान्त स्वर में बोली—
“यह सब-कुछ बताने के लिए विशेष रूप से आभारी हूँ।”

रेखा उठ खड़ी हुई—“अब अनुमति दीजिए।”

“कुछ देर तो और बैठतीं !”

“नहीं धन्यवाद ! मुझे अभी एक बिज-गार्डों में पहुँचना है।” रेखा ने नमस्कार किया और तेजी से चली गई।

शिवा जब शाम को चाय के लिए ‘डेविको’ जाने की तैयारी में थी, तो विपिन लौट आया। शिवा बिना किसी भूमिका के बोली—“भैया, आपने आज दोपहर को मुझसे एक वादा माँगा था। मैं वह वादा करती हूँ।”

“क्यों अब क्या हुआ ?” विपिन चकित था।

“अभी सब सुनाती हूँ। तैयारी करते-करते शिवा ने रेखा द्वारा प्रस्तुत की हुई सारी कहानी भाई को सुना दी और फिर ‘डेविको’ के लिए चल दी। विपिन ने किञ्चित् सन्तोष की एक साँस ली और नेत्र मूँदकर एक सोफे पर पड़ गया।

३५

जिस समय क्लार्क होटल में रंजन दिल्ली जाने की सूचना शिवा और विपिन को दे रहा था लगभग उसी समय स्नेहलता और चित्रा उन दोनों भाई-बहनों के भविष्य की चर्चा कर रही थीं ; क्योंकि इससे कुछ ही समय

पूर्व चँवर ने केस जीत जाने की सूचना टेलीफोन द्वारा लता को दे दी थी। सूचना पाकर स्नेहलता के मुख पर छाई हुई उदासीनता की घनी छाया और भी अधिक घनी हो गई थी।

“चँवर का फोन था,” स्नेहलता ने गंभीरता से चित्रा को सूचित किया, “केस हमारे हक में हो गया है।”

चित्रा प्रसन्नता से उछल पड़ी—“बहुत सुन्दर ! मेरी बधाई स्वीकृत हो।”

“बधाई !” स्नेहलता ने किंतु चित्रा के आनन्द में योग नहीं दिया, “अपनी सन्तानों पर विजय प्राप्त करने में क्या धरा है ?”

“तब आप लड़ी क्यों ?”

“इसलिए कि लड़ने के अतिरिक्त चारा ही न था,” स्नेहलता धीरे-धीरे कहने लगी, “यदि मैं लड़ाई से मुख मोड़ती, तो वह अपने स्वर्गस्थित स्वामी के प्रति ही नहीं, अपने प्रति भी अन्याय होता। मैं कायरों की पंक्ति में जा बैठती।”

“कायरों की पंक्ति में ?”

“हाँ और मैं कायरता को सबसे बड़ा अभिशाप मानती हूँ।”

“अब आप क्या करेगी ?” चित्रा के स्वर में आश्चर्य-मिश्रित उत्सुकता थी।

“अब अपनी बिखरी हुई गृहस्थी को पुनः संगठित करूँगी।”

“सो कैसे ?”

“उन दोनों विद्रोहियों का अपने उचित स्थान पर पुनर्स्थापन करके अभी उनके बन्द कमरे खुलवाकर ठीक-ठाक कराऊँगी ; क्योंकि कल तक वे यहाँ पहुँच जायेंगे, ऐसा विश्वास है।”

“यदि वे न आना चाहें, अभी और लड़ना चाहें, तब ?” चित्रा ने फिर पूछा।

स्नेहलता की थकी हुई आँखें आधे क्षण के लिए मुंद गईं, फिर सहसा खुल उठीं और ज्योतिर्मय हो गईं। “तब तो लड़ना ही होगा, किंतु मैं अब इतना थक चुकी हूँ कि लड़ने को जी नहीं चाहता। पर वे अब लड़ेंगे नहीं। अब वे

मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। वे अब अपना पाठ पढ़ चुके हैं,” कहते-कहते स्नेहलता के नेत्र मूंद गये। वह काफी देर यों ही बनी रही। फिर आँखें खोलकर बोली, “मेरा एक काम करोगी, बेटी ?”

“आज्ञा कीजिए !”

“उन दोनों को यहाँ लौट आने का संदेश दे सकोगी क्या ?”

“दोनों को ?” चित्रा एक क्षण के लिए असमंजस में पड़ गई और बोली, “दोनों को नहीं, शिवा को जो चाहो दे दूंगी।”

“उसे ही सही। विपिन के संदेशवाहक का काम वही कर देगी। उसे कह देना कि तुम्हारी माँ की आज्ञा है कि दोनों तुरन्त घर लौट आओ। खेल बहुत खेल चुके, अब आकर काम-काज सँभालो और……”

“और क्या ?” चित्रा, जो मन्त्रमुग्ध सी स्नेहलता का संदेश सुन रही थी, के मुँह से सहसा निकला।

“उसे यह भी कह देना कि तुम्हारी माँ की दृष्टि में आज भी तुम दोन का वही स्थान हैं, जो रोहित का है और इस जीवन के अन्तिम दिवस तक, जो अब शीघ्र ही आने वाला है, उसके मन में भेद-भाव नहीं आयगा।” अपने स्वर की वेदना छिपाने के विफल प्रयत्न में स्नेहलता मुस्कराई।

“इतनी उदास न बनो, चित्रा ने स्नेह-सने स्वर में कहा—“और यदि उन दोनों को आने में कोई आपत्ति हो, तब ?”

“तब शिवा से कह देना कि विपिन मुझसे टेलीफोन द्वारा बात करे।”

“मैं अभी शिवा को टेलीफोन करके ‘डेविको’ में चाय का निमन्त्रण देती हूँ।” चित्रा उठने लगी।

किन्तु स्नेहलता ने उसे रोक दिया और बैठने का संकेत करते हुए कहा—“एक बात पूछूँ ? पहले भी पूछ चुकी हूँ।”

क्या बात है, चित्रा तुरन्त समझ गई, बोली—“पूछिए !”

“किससे डरती हो, विपिन से या अपने-आपसे ?”

चित्रा ने एकाएक कुछ जवाब नहीं दिया। वह सोच में डूबी रही, फिर बोली—“दोनों से।”

“तब तो आशा की एक लकीर बाकी है।” स्नेहलता के मुख पर किंचित प्रसन्नता खेल उठी।

“एक लकीर ? शायद हो। पर इस ओर से पूर्णरूपेण निराश होने के लिए भी आपको सदा उद्यत रहना चाहिए।”

“समय बड़ी-बड़ी निराशाओं को आशा में परिणत कर देता है, यह न भूलना।”

चित्रा मुस्कराई—“नहीं भूलूंगी। किंतु समय बड़ी-बड़ी आशाओं के सुन-हले महलों को राख के ढेर भी बना देता है, यह भी तो स्मरण रखना होगा। इसलिए मुझे एक विशेष प्रार्थना करनी है।”

“क्या ?”

“यदि वे दोनों कल लौट आयें, तो मुझे छुट्टी दे दी जाय।”

“क्या ऊब गई हो ?”

“नहीं,” चित्रा हँसने लगी और फिर बोली, “पर एक छत के नीचे अब मैं आपके लाइले पुत्र के साथ न रह सकूंगी। अच्छा, मैं ज़रा शिवा को टेलीफोन कर आऊँ !” चित्रा उठी और तेजी से टेलीफोन वाले कमरे की ओर चली गई, जिसका उल्लेख पिछले परिच्छेद में आ चुका है।

शाम को जब चित्रा डेविको-रेस्तराँ की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी, तो शिवा ने उसे पीछे से जा पकड़ा। दोनों बाँह-में-बाँह डाले रेस्तराँ के बड़े हॉल में पहुँचीं। हाल के एक कोने में एक तिपाई खाली पड़ी थी। दोनों उसी की ओर चली गईं। जब उन्होंने अपनी-अपनी कुर्तियाँ सँभाल लीं, तो बंरा आ पहुँचा। चित्रा ने चाय का आर्डर देकर शिवा की ओर देखा।

“अब कहो ?” शिवा ने पूछा।

“एक सन्देश लाई हूँ।”

किससे ?”

“तुम्हारी माँ से।”

शिवा उत्सुक हो उठी और ज़रा तेजी से पूछने लगी—“क्या कहती हैं।”

“उनकी आज्ञा है कि तुम दोनों अब तुरन्त घर लौट आओ ?”

“घर लौट चले, किंतु...”

“किंतु क्या ?”

“क्या उन्हें यह नहीं मालूम कि हम मुकदमा हार चुके हैं ?”

“मालूम है, तभी तो बुला भेजा है; क्योंकि अब उस खेल से आपको छुट्टी मिल चुकी है।”

“खेल ?” शिवा आश्चर्य-चकित रह गई, “यह मां भी कैसी रहस्यमयी है, यह समझ में नहीं आता।”

“और उन्होंने यह भी कहला भेजा है कि आज भी उनकी दृष्टि में तुम, रोहित और विपिन एक बराबर हैं।”

इतने में चाय आ गई। चित्रा उसे बनाने में कुछ व्यस्त हो गई। कुछ ही क्षणों में उसने दोनों प्याले बनाये और एक प्याला शिवा की ओर बढ़ा दिया।

फिर मिठाइयों और नमकीन पदार्थों की प्लेटें उसकी ओर बढ़ाती हुई कहने लगी—“अब मेरी बात बात का जबाब दो। मां की आज्ञा मानोगी ?”

अपने प्याले में चीनी हिलाती हुई शिवा बोली—“भैया से पूछकर बता सकती हूँ।”

“तो अभी टेलीफोन द्वारा पूछ लो।”

“जाते हुए रास्ते में पूछकर तुम्हें बता दूंगी।”

“रास्ते में ! तो तुम चाहती हो कि मैं सड़क पर खड़ी खाक छानती रहूँ ?”

“तो तुम होटल के अन्दर नहीं चलोगी क्या ?” शिवा ने आश्चर्य प्रदर्शित किया।

“नहीं।”

“क्यों ?”

“इस विषय में फिर कभी बात करेंगे,” चित्रा ने निश्चयात्मक स्वर में कहा, “तुम अभी चाय पीकर यहीं से टेलीफोन करो। यदि तुम्हारे भाई को कोई आपत्ति हो, तो उसे कहो कि मां को टेलीफोन करे।”

शिवा के लिए और कोई चारा ही न रहा। चाय पीकर टेलीफोन करने

चल पड़ी। चित्रा ज्यों-की-त्यों अपनी कुर्सी पर बंठी रही। एक ही मिनट में शिवा को विपिन मिल गया।

“माँ केस जीत गई हैं, यह उन्हें पता चल गया है”, शिवा ने भाई को सूचित किया, “और उन्होंने चित्रा के द्वारा एक सन्देश भेजा है।”

“क्या ?” विपिन के स्वर में उत्सुकता थी।

“घर लौट जाने की आज्ञा हुई है।” शिवा ने पूरा सन्देश सुना दिया और यह भी भाई को हृदयंगम करा दिया कि उनके प्रति माँ की दृष्टि में कोई दोष नहीं आया।

“तब ?” विपिन मानो अपने-आपसे पूछ रहा हो और फिर बोला—“सोच कर जवाब दूँगा।”

“सोच चुको, तो सीधे माँ को टेलीफोन कर देना !”

“माँ को ?”

“हाँ, यही उनकी आज्ञा है।”

“बहुत अच्छा। पर तुम कब लौट रही हो ?”

“थोड़ी देर में। क्यों ?”

“तुम्हारे आने पर ही अगला पग उठाऊँगा।”

शिवा ने रिसीवर रख दिया और चित्रा के पास लौट गई। चित्रा ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा।

“भैया स्वयं माँ को टेलीफोन करेंगे,” शिवा ने कहा।

“क्या मानने के मूड में है ?”

“आशा तो यही है। मेरी प्रतीक्षा में है।”

“तो चलो,” चित्रा उठ खड़ी हुई। इस बीच में वह बिल चुका चुकी थी।

वे दोनों तेजी से घर की ओर लौट चलीं। जब क्लार्क होटल के पास पहुँचीं, तो शिवा ने फिर चित्रा से अन्दर चलने का अनुरोध किया, पर वह न मानी।

“तो आशा है, कल घर पर तो मिलाप होगा ही ?”

“कौन जाने ? लो नमस्कार !” चित्रा ने मुस्कराकर कहा और तेजी से आगे को बढ़ चली ।

शिवा दो-चार सेकंड उसकी ओर देखती रही, फिर धीरे-धीरे होटल के अन्दर घुस गई । विपिन कमरे में बेचैनी से टहल रहा था । शिवा को देखकर उसे किंचित् संतोष हुआ ।

“आ ही गई । अच्छा किया । बैठ जाओ !”

जब शिवा बैठ गई, तो विपिन फिर कहने लगा—“अब तुम्हीं बताओ, क्या करना होगा ? चित्रा की क्या सम्मति थी ?”

“उसने कोई सम्मति नहीं दी, केवल आदेश दिया था ।”

“तुम क्या कहती हो ?”

“मैं तो समझती हूँ कि हमें . . .”

विपिन ने बहन को आगे नहीं बढ़ने दिया—“हमें लौट जाना चाहिए, किंतु मैं तुम्हारे साथ सहमत होना चाहते हुए भी सहमत होना उचित नहीं समझता ।”

“उचित नहीं समझते ?”

“हाँ !”

“तब क्या करोगे ? ऊँची अदालत में जाने की इच्छा है ?” शिवा के स्वर में व्यंग्य छिपा हुआ था ।

“अदालत में ? नहीं, किंतु अब किस मुंह से माँ के निकट जा सकते हैं, तुम्हीं कहो ?”

“माँ-बेटे का भेद-भाव कितने दिन चल सकता है और माँ के चरणों में सिर रखने में लज्जा ही क्या है ?”

किन्तु विपिन के मन में तब भी विद्रोह की एक रेखा उत्पन्न हुई—
“भावुकता की चाशनी में कटुता को न लपेटो !”

“तो जो करना है तुम स्वयं कर लो,” शिवा ने मानो हार मानते हुए कहा ।

विपिन ने कुछ जवाब नहीं दिया । वह कमरे में टहलने लगा और सोचने

लगा। उसका स्वार्थ तो यही कहता था कि माँ का अनुरोध मान लो, किन्तु आत्माभिमान उसकी राह रोकता था। यदि वह अब पुनः माँ के पास लौट जाय, तो लोग अवश्य उसका हँसी उड़ायेंगे; पर उसकी उसे चिन्ता न थी। किसी अर्द्ध-सत्य पर निर्मित आदर्श की आड़ में वह उन पर पार पा लेगा। माँ की दृष्टि एक छिपा हुआ व्यंग्य, एक छिपा हुआ दंश शायद हो; पर वह स्वयमेव दूर हो जायगा। उसे यह सत्र-कुछ चिंतित नहीं कर रहा था। उसे चिंतित कर रहा था अपनी दृष्टि में वह रूप प्राप्त कर सकेगा, जो माँ के साथ लड़ने से पहले उसका था। शायद नहीं। तब ? पर क्या माँ से दूर रहने से उसे वह रूप मिल जायगा ? कदाचित्। क्या माँ के पास वापस जाने से वह अपनी ही दृष्टि में और अधिक नहीं गिर जायगा ? संभव है। तब ? वह निश्चय कुछ भी नहीं कर पाता था। थककर एक कुर्सी पर बैठ गया और आँखें मूंद लीं।

शिवा कुछ क्षण उसकी ओर देखती रही। फिर स्नेह-सने स्वर में बोली—
“भैया !”

“क्या ?” विपिन ने नेत्र खोले।

“यदि मेरी बात मानो, तो सोच-विचार को छोड़ो। माँ को टेलीफोन तो करो। देखो, वे क्या कहती हैं।”

डूबते को तिनके का सहारा मिला। विपिन उठ खड़ा हुआ और टेलीफोन करने चल पड़ा। शिवा उसके पीछे हो ली।

स्नेहलता के टेलीफोन की घंटी जब जोर से बज उठी, तो चित्रा घर पहुँच चुकी थी और स्नेहलता के पास ही बैठी थी।

“विपिन का फोन होगा।”

“तो आओ सुने, क्या कहता है। स्नेहलता चित्रा को साथ लेकर टेलीफोन वाले कमरे की ओर चली गई।

टेलीफोन विपिन का ही था।

“माँ जी,” विपिन ने नमस्कार के अनंतर कहना आरंभ किया, “मुझे आपका संदेश मिल गया है, किन्तु मैं सोच रहा हूँ...”

“जो तुम सोच रहे हो, मैं जानती हूँ,” स्नेहलता का स्वर मधुर था, “कभी-कभी बड़े हुए पगों का पीछे लौटाना आगे बढ़ने से अधिक गौरवमय होता है, यह तो मानते हो ?”

“मानता हूँ,” विपिन ने फिर शंका उपस्थित की, “किन्तु आत्माभिमान की भी तो एक माँग होती है।”

“आत्माभिमान की माँग में एक अद्भुत आकर्षण है, मुझे मान्य है; किन्तु कर्तव्य बड़ा है या आत्माभिमान ?”

“कर्तव्य !” विपिन ने जवाब दिया।

“और माँ की आज्ञा-पालन करना एक महान् कर्तव्य है, इससे इन्कार करोगे ?”

“नहीं,” विपिन के मुँह से मानो फिसल पड़ा।

“तो अपने आत्माभिमान को हृदय के कोनों में दबाकर उस कर्तव्य का पालन करो। कल शिवा को लेकर यहाँ पहुँच जाओ।” विपिन ने कुछ जवाब न दिया, स्नेहलता फिर बोली—“बोलते क्यों नहीं ? क्या कर्तव्य से मुँह छिपाते हो ?”

“नहीं !” विपिन और कुछ न कह सका।

“तो कल प्रातः मैं तुम दोनों की प्रतीक्षा पलक बिछाए हुए करूँगी। धन्यवाद !” लता का स्वर थोड़ा भारी हो उठा।

३६

अगले दिन शिवा और विपिन घर लौट गए। उनके आने के पूर्व ही स्नेहलता के तीव्र अनुरोध एवं अनुनय-विनय की नम्रतापूर्वक अवहेलना करके चित्रा वहाँ से जा चुकी थी। शिवा और विपिन माँ का स्वास्थ्य देखकर निःसंदेह चकित रह गए। उसका रंग हल्दी-सा पीला था, मानो रक्त का एक बिन्दु भी शरीर में न रहा हो, चेहरे पर भय उपजाने वाली उदासीनता छाई हुई थी। दोनों के मन में अपने प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई।

“माँ जी, यह आपको हो क्या गया है ?” विपिन तथा शिवा ने एक साथ

पूछा । उनके स्वर में सच्ची सहानुभूति थी ।

“अब तुम दोनों आ गए हो, मेरी सारी चिंता जाती रही है ।” लता ने अपने स्वास्थ्य की बात को मानो छिपाया ।

“माँ जी”, अब की बार विपिन अकेला बोला, “जो मेने भूल की है, मैं मानता हूँ, अक्षम्य है; पर उसके लिए जो भी प्रायश्चित्त आप निश्चित करें, मैं करूँगा !”

“उसकी भूलें ही तो मनुष्य के जीवन का पथ-पदर्शन करती हैं । इसलिए मुझे तुम्हारी भूल के लिए किंचित् भी दुःख नहीं, यह विश्वास मानो । हाँ, प्रायश्चित्त तुम्हें अवश्य करना होगा ।”

“बतलाइए !” विपिन ने खुश होकर पूछा ।

“सारी जायदाद के प्रबंध के अतिरिक्त अब अपने छोटे भाई की देख-रेख भी तुम्हें ही करनी होगी । कर सकोगे ?”

“जो आपकी आज्ञा होगी, वह सब-कुछ कर सकूँगा । पर आप अपने परामर्श से तो वंचित नहीं करोगी ?”

“मेरा परामर्श ? शायद अब तुमको बहुत दिन न मिल सके । मेरा स्वास्थ्य ही नहीं बिगड़ गया है, बल्कि जीने की इच्छा भी जाती रही है ।”

“ऐसी बातें न करो, माँ जी !” शिवा ने भरे हुए गले से कहा ।

“कर्त्तव्य की बेड़ियों से बँधी जब तक मैं तुम्हारे साथ केस लड़ती रही, तब तक तो ठीक; पर ज्यों ही मुझे अपनी जीत निश्चित दिखी, तो संसार के प्रति मेरे रोम-रोम में एक उदासीनता समा गई । मेरी बाहरी विजय ही मेरे अंतस्तल की सबसे बड़ी पराजय बन गई है, इसलिए अब अधिक जी न सकूँगी ।”

“हमारी न सही, हम तो ठहरे कुस्तान, पर रोहित की ममता का तो कुछ ध्यान करो !” विपिन ने प्रभावित वाणी से कहा ।

“ममता के बंधन अब मुझे न बाँध सकेंगे ।” स्नेहलता का गला भी भर आया, किन्तु एक क्षण में ही वह अपने ऊपर प्रभुत्व पा गई—“मैं भी आते ही क्या कहानी ले बैठी ! जाओ, तुम दोनों नहा-धो तो लो । फिर बातें होंगी ।” वे दोनों उठकर चले गए ।

उस दिन के अनंतर दोनों भाई-बहन माँ की सेवा-सुश्रूषा में लग गए। बड़े-से-बड़े डॉक्टरों द्वारा उसके रोग का निदान करवाया गया, किन्तु डॉक्टरों की पकड़ में कुछ भी नहीं आता था। कोई भी औषधि फलप्रद न होती थी।

कुछ दिनों बाद एक दिन स्नेहलता रिक्शा में बैठकर चैवर के दफ्तर में गई और लगभग दो घंटे में लौटी। इससे दो ही दिन के अनंतर उसकी तबीयत सहसा बहुत बिगड़ गई। विपिन ने दौड़-धूप करके कई डॉक्टर एकत्रित कर लिए। रोगी तीव्रता से 'सिक' कर रहा है, सभी डॉक्टरों ने कहा और इंजेक्शनों द्वारा पुनः प्राण संचार करने का प्रयत्न करके तथा अपनी-अपनी फीस लेकर चले गए। तब स्नेहलता ने विपिन को बुलवा भेजा। शिवा पहले से ही वहाँ थी।

“कहो, माँ जी ?” विपिन ने पूछा।

“जरा रोहित को भी बुला लाओ, बेटा !” स्नेहलता ने क्षीण आवाज़ में कहा।

दो ही मिनट में रोहित की अँगुली पकड़े हुए विपिन ने पुनः प्रवेश किया। माँ ने उन दोनों को तथा शिवा को, जो कुछ दूर कुर्सी पर बैठी थी, संकेत द्वारा अपने निकट आने के लिए कहा। जब तीनों उसकी चारपाई के निकट आ गए, तो उसने रोहित का दायाँ हाथ अपने हाथ में लेकर विपिन के दाएँ में पकड़ा दिया और अपने स्वर में दृढ़ता भरकर बोली—“मेरे हृदय का यह अंतिम टुकड़ा अब तुम्हारे हवाले है। इसे यत्न से रखना। यह भी तुम्हें निराश नहीं करेगा, ऐसा विश्वास है। क्यों रोहित ?”

रोहित ने कुछ जवाब न दिया। वह नन्हा बालक कह ही क्या सकता था। शिवा और विपिन के नेत्रों से अविरल अश्रु-धाराएँ बह रही थीं। उन्हें देखकर रोहित आश्चर्य-चकित-सा हुआ घबरा रहा था, मानो पूछना चाहता हो कि तुम रो क्यों रहे हो ? किन्तु उन दोनों के मुख से भी कुछ नहीं निकला। विपिन ने उठाकर रोहित को छाती से चिपटा लिया। स्नेहलता को ऐसा लगा कि जो-कुछ वह चाहती थी, उसे मिल गया। वह फिर बोली—“मेरी

वसीयत चँवर के यहाँ है, देख लेना। आशा है, तुम सबको उसमें अन्याय नहीं दीखेगा।”

“माँ जी ...” शिवा ने कुछ कहना चाहा, पर कुछ कह न सकी। भावों के उद्रेक ने उसकी जिह्वा पर मानो मुहर लगा दी।

स्नेहलता की आवाज़ अब पहले से अधिक क्षीण हो चली, पर उसकी आवाज़ बंद न हुई—“विपिन, एक बात और तुमसे कहना चाहती हूँ।”

“आज्ञा कीजिए, माँ जी !” रुँधे हुए गले से विपिन ने कहा।

“चित्रा को पाने का पूरा प्रयत्न करना। अपने आत्माभिमान को बलिदान करके भी यदि तुम उसको प्राप्त कर सको, तो मेरी आत्मा को संतोष होगा। यह न भूलना !”

“बहुत अच्छा।”

स्नेहलता ने तब तीनों को अपने बिलकुल निकट आने के लिए कहा। तीनों के सिर पर उसने प्यार से हाथ फेरा। ज़रा उचककर उनके मस्तक चूमे और फिर आँखें मूंद लीं।

विपिन कुछ क्षण माँ की ओर देखता रहा, फिर शिवा को वहाँ छोड़ और रोहित को छाती से चिपटाए धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया; पर पाँच ही मिनट बाद रोहित को बाहर छोड़कर लौट आया। इससे कुछ ही समय के अनन्तर इन्जेक्शनों का प्रभाव जाता रहा और स्नेहलता के प्राण छटपटाने लगे। विपिन ने फिर डॉक्टरों को इकट्ठा किया, पर इस बार उसका कोई भी प्रयत्न कारगर न हुआ। सब के देखते-देखते स्नेहलता के प्राण-पखेरू उड़ गए।

ठीक उसी समय उनके टेलीफोन की घंटी जोर से बज उठी। नौकर ने कमरे में प्रवेश किया और शिवा की ओर देखकर बोला—“आपके लिए टेलीफोन है।”

शिवा आँसू पोंछती हुई तेजी से टेलीफोन वाले कमरे की ओर गई। फोन चित्रा का था। उसका स्वर बहुत घबराया हुआ था। इससे पहले कि शिवा कुछ कहे, उसने पूछा—“माँ तो ठीक है ?”

“ठीक कहाँ !” शिवा फूट पड़ी, “वे उस पार चली गई !”

“कब ?” चित्रा का स्वर काँपने लगा ।

“अभी थोड़ी देर पहले ।” शिवा ने सूचित किया ।

“तभी !” शिवा का स्वर आश्चर्य-चकित था ।

“कुर्सी पर बैठे-बैठे मुझे सहसा झपकी आ गई”, चित्रा टूटे स्वर में कहती खली गई, “तब मुझे स्पष्ट दीखा कि माँ ने कमरे में प्रवेश किया । उन्होंने हिम की भाँति श्वेत साड़ी पहन रखी थी । होठों पर मुस्कान थी । उन्होंने आगे बढ़कर मेरे सिर पर हाथ फेर, मेरा मस्तक सूँघा और फिर बिलीन हो गई ।”

शिवा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । बोली—“ठीक ऐसी ही विदा हम तीनों से उन्होंने ली । वे कितनी महान् थीं, हम न जान सके ।”

“तब मैं हड़बड़ाकर उठ बैठी । कमरे के चारों ओर देखा और भागकर तुम्हारे लिए कॉल बुक की । मैं अभी आ रही हूँ ।”

“अभी ?”

“हाँ, अपनी गाड़ी में । रात भीगने तक अवश्य पहुँच जाऊँगी । मेरी प्रतीक्षा करना । मुझे दर्शनों से वंचित न करना ।”

“बहुत अच्छा ।” शिवा ने कहा और रिसीवर रखकर आँसुओं से भरा मुख लिए विपिन के पास पहुँची ।

“चित्रा का फोन था,” उसने कहा, “दिल्ली से यहाँ के लिए चल पड़ी है, माँ के अन्तिम दर्शन के लिए ।”

“उसने खूब समय पर फोन किया ।”

“हाँ, माँ का सूक्ष्म शरीर उससे मिलने जो गया था ।” शिवा ने कहा और सारी बातचीत सुना दी ।

“माँ को चित्रा से स्नेह भी अद्भुत था । इसलिए चित्रा से मिले बगैर माँ कैसे जा सकती थीं । वैसे जो कुछ है, हमारे शास्त्रों के अनुसार तो ठीक है ही, आधुनिक विज्ञान-संगत भी है ।”

“अच्छा !” शिवा के स्वर में आश्चर्य था ।

“इतनी निर्मल और महान् आत्मा के साथ मैंने जो झगड़ा किया है, उसके

पश्चात्ताप से हृदय प्रज्वलित है। उसका क्या दण्ड मिलेगा ?” कहते-कहते विपिन के नेत्र, जिनमें से पहले आँसू भी नहीं सूख पाए थे, पुनः छलक उठे।

३७

लता के दाह-संस्कार से अगले दिन ही चित्रा दिल्ली लौट गई। इस बीच में उसकी विपिन के साथ कोई विशेष बातचीत न हो सकी। उन दिनों घर का वातावरण ही ऐसा था कि माँ के गुण-गान के अतिरिक्त किसी को कुछ न सूझता था। दस-बारह दिन बीत जाने के अनन्तर भी विपिन निरुत्साह-सा बना बैठा था। तब एक दिन चँवर ने उसके कर्तव्य की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया।

“आप आज अवश्य आयें”, उसने टेलीफोन पर सूचना दी, “अपनी माँ की वसीयत भी देख लें और बाकी काम-काज भी समझ लें।”

“बहुत अच्छा !” विपिन ने स्वीकृति दी—“मैं आज शाम को पहुँचूँगा।”

जब शाम को विपिन चँवर के दफ्तर में पहुँचा, तो सबसे पहले उसने वसीयत निकाली और उसे विपिन की ओर बढ़ाते हुए कहा—“लीजिए पढ़िए ! इतनी न्यायप्रिय देवी मैंने जीवन-भर में नहीं देखी।”

विपिन ने वसीयत हाथ में ले ली और उसे पढ़ने लगा। लगभग दस मिनट में उसने उसे पढ़ लिया। उसके अनुसार अन्य खर्च के अतिरिक्त एक लाख रुपये की भेंट विवाह के समय शिवा को लता की ओर से देने का आदेश था। एक लाख रुपया चित्रा के लिए था और उसे आदेश था कि जिन गाँव के बच्चों की देख-रेख लता किया करती थी, वैसे ही चित्रा को उन्हें सँभालना होगा। बाकी सारी जायदाद विपिन तथा रोहित को बराबर के दो भागों में बाँट दी गई थी, और बड़ा होने तक रोहित के अभिभावक चँवर तथा विपिन नियत किये गए थे। वसीयत पढ़कर विपिन ने चँवर की ओर देखा—“जो-कुछ मैंने किया, उसके अतिरिक्त भी माँ को मुझ पर इतना विश्वास था, यह देखकर मैं चकित और नतमस्तक हूँ।”

“उन्हें समस्त मानवता पर विश्वास था, आप तो उनके बेटे थे।” चँवर

ने कहा और बाकी काम-काज भी विपिन को समझा दिया ।

विपिन जब शाम को घर लौटा, तो उसमें एक नवीन उत्साह आ गया था । इसलिए अब उसने चित्रा के यहाँ जाने का निश्चय किया ।

“मैं कल दिल्ली जाना चाहता हूँ,” उसने शिवा से, जो रोहित के साथ एक बच्चों की कुछ सचित्र पुस्तकों में उलझी हुई थी, कहा ।

“हो आओ !” शिवा ने भाई की ओर स्नेह से देखा, “भगवान् आपको सफलता दें ।”

विपिन मुस्कराया—“आशा तो नहीं, पर प्रयत्न तो करता ही होगा ।”

“एक बात न भूलना, भैया !”

“क्या ?”

“यदि कहीं उदीयमान वकील फिर आपको मिल जाय, तो उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में न आ जाना ।”

विपिन आत्म-विश्वास से बोला—“इसकी चिन्ता न करो । वैसे वह मेरी राह अब नहीं काटेगा ।”

तीसरे दिन जब वह दिल्ली के स्टेशन पर उतरा, तो आकाश पर कुछ दो-चार बादलों के टुकड़े इधर-उधर दौड़ रहे थे । स्टेशन से बाहर निकलकर उसने चित्रा को अपने दिल्ली पहुँचने की सूचना दी और उससे मिलने की इच्छा प्रकट की ।

“अभी आ जाओ !” चित्रा का स्वर किंचित् मधुर था ।

“बहुत अच्छा ।” विपिन को कुछ ढाढ़स बँधा ।

विपिन ने स्टेशन के निकट के एक होटल में अपना सामान रखा और एक किराए की टैक्सी लेकर चित्रा की कोठी में जा पहुँचा । जब वह टैक्सी से उतरकर कोठी में घुस रहा था, तो आकाश पूर्णतया मेघाच्छादित हो चुका था ।

चित्रा अपने ड्राइङ्ग-रूम में विपिन की प्रतीक्षा में बैठी थी । साथ में रेखा थी । चित्रा ने शुष्क मुस्कान तथा रेखा ने ‘हलो’ द्वारा विपिन का स्वागत किया । विपिन उनके निकट पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया ।

“कहो, कैसे आए हो ?” चित्रा ने ऐसे पूछा, मानो कुछ जानती ही न हो ।

“यों ही चला आया,” फिर रेखा को संबोधित करता हुआ बोला, “आप तो ठीक हैं ?”

“बिलकुल !” रेखा के होठों पर व्यंग्य था, “कल आपके पुराने वकील मिले थे।”

“कौन, रंजन ?” विपिन को थोड़ी उत्सुकता हुई।

“हाँ, आपकी मित्रता के गुण-गान कर रहे थे।” रेखा ने होठों पर बल दिया—“और शिवा की प्रशंसा भी की।”

“शायद पुनः हमें कृतकृत्य करने के लिए इच्छुक हों।” विपिन के स्वर में भी व्यंग्य घुस आया।

“इच्छा तो निःसंदेह उनकी यही थी, पर मैंने उन्हें ठिकाने बिठा दिया है। अब शायद आपके निकट न आयें।”

“धन्यवाद !” विपिन मुस्कराया, “यदि फिर कभी हमारी चर्चा चले, तो उन्हें कह दीजिएगा कि कभी-कभी श्रमृत भी विष बन सकता है।”

“कह दूँगी।”

रेखा ने कलाई पर बँधी हुई घड़ी की ओर देखा और उठ खड़ी हुई।

“चल दीं क्या ?” चित्रा ने पूछा।

“हाँ, जरूरी काम है। शाम को फिर मिलूँगी।” रेखा मुस्कराई और बाहर चली गई।

“अब बताओ !” चित्रा बोली।

“क्या बताऊँ ?” विपिन मानो एक-एक शब्द को तोलने लगा, “यही समझ में नहीं आता। किसी ने मेरे लिए एक अद्भुत स्वप्न की सृष्टि की थी। सीधी राह पकड़ने पर वह स्वप्न पूर्ण सिद्ध हो सकता था, पर मैं राह से भटक गया। अब स्वप्न-ल्लंघन से यह पूछने आया हूँ कि क्या मैं अपना खोया हुआ स्थान प्राप्त कर सकता हूँ ?”

“केवल पूछने आए हो ?” चित्रा का स्वर गंभीर था।

विपिन ने अपनी जिह्वा काट ली। शब्दों के चुनाव में उससे भूल हो गई है, उसे पता लग गया—“और यदि स्वप्न-ल्लंघन का सुभाव किंचित् भी अपने

प्रति पाऊँ, तो घुटने टेककर यह प्रार्थना करने आया हूँ कि मेरा स्वप्न मुझे लौटा दो।”

विपिन ने ध्यान से चित्रा की ओर देखा। उसे ऐसा लगा कि चित्रा प्रभावित हो गई है चित्रा बोली—“यदि स्वप्न-स्रष्टा के लाख प्रयत्न भी उस स्वप्न की सृष्टि पुनः न कर सकें, तब ?”

“तब उससे बड़ा दुर्भाग्य मेरे लिए क्या हो सकता है ?”

“क्या केवल तुम्हारे लिए दुर्भाग्य होगा ?” चित्रा ने माते अपने-आपसे पूछा और कहती चली गई, “स्वप्न भावों के पक्षी हैं। भावों की पकड़ में आ जायें तो ठीक; पर यदि उनसे छूठ जायें, तो किसी के लिए कुछ नहीं हो सकता।”

विपिन डरा—“जिनके प्रति मैंने भटककर अपराध किया था, उन्होंने तो मुझे क्षमा कर दिया है, यह तो न भूलो !”

“मुझे याद है,” ऐसे लगा कि चित्रा अपने-आपसे तर्क कर रही हो, “पर वे थीं महान् और मैं हूँ ‘अहम्’ से ओत-प्रोत एक क्षुद्र नारी ? अपने-आपको कैसे समझाऊँ ? हृदय पर अंकित मूर्ति की कुरूपता में सौंदर्य कैसे लाऊँ ?”

चित्रा उठकर कमरे में टहलने लगी और विपिन धड़कते दिल से उसकी ओर देखने लगा। चित्रा के मन का गहरा सोच और उसका असमंजस दोनों उसके मस्तक के बल उसके अर्ध-निमीलित नेत्रों से स्पष्ट थे। एक-दो क्षणों में ही उसके जीवन का एक नया अध्याय खुलने जा रहा है, विपिन के मन में यह विचार सहसा काँध गया। वह अध्याय क्या अविरल सुख की धारा प्रवाहित करेगा अथवा उसमें अन्तहीन विरह तथा दुःख समाया होगा ? क्या उसका जीवन, उन दोनों का जीवन, एक अभिशाप बनेगा अथवा वरदान ? विपिन यह सोच रहा था और चित्रा के मुख पर बनने-बिगड़ने वाले भावों का ध्यान पूर्वक अध्ययन कर रहा था। विपिन के लिए एक-एक क्षण दूभर हो रहा था। उसे लग रहा था, मानो चित्रा को किसी निश्चय पर पहुँचने के लिए अनन्त काल लगेगा। उसकी जिह्वा पर लगी हुई मुहर खोलने के लिए लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसलिए चित्रा सहसा पुनः अपने स्थान पर आ बैठी,

तो विपिन आश्चर्य-चकित रह गया ।

चित्रा सिर हिलाती हुई बोली—“विपिन, मुझे खेद है कि मैं बिगड़ी हुई बात अब न बना सकूंगी । उड़े हुए पक्षी की फड़फड़ाहट अवश्य सुनाई देती है, पर वह बेरी पट्टूच से दूर, बहुत दूर, जा चुका है । इसलिए”

“इसलिए क्या ?” विपिन का हृदय उछलने लगा ।

“यही कि हम दोनों अब एक राह के पथिक न बन सकेंगे । अतः हमें एक-दूसरे को भूलना होगा ।”

विपिन का मुख एक क्षण के लिए विकृत हो गया । फिर अपने ऊपर प्रभुत्व पाने का प्रयत्न करता हुआ वह उठा और प्रवाहित स्वर में बोला—“तुम्हारी राह का काँटा न बनूँगा, किंतु तुम्हें भूलने की प्रतिज्ञा न कर सकूँगा । लो नमस्कार !” विपिन झुंह मोड़कर तेजी से कमरे से बाहर चला गया ।

“सुनो तो !” चित्रा ने किञ्चित् क्षीण आवाज में कहा, किन्तु विपिन ने कुछ नहीं सुना । चित्रा के शब्द कोठी के बरामदे को रौंदते हुए विलायती जूतों की खट्-खट में समा गए ।

विपिन के बाहर निकलते ही चित्रा के संयम के बांध टूट गए । उसके नेत्रों से आंसुओं की धाराएँ बहने लगीं ।

